<u>उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में आधुनिकता बोध</u>

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-¯Ö²Ö¬Ö)

2010

प्रस्तुतकर्ता

संदीप विश्वनाथराव रणभिरकर
(Enrollment No.05HHPH03)

विभागाध्यक्ष
प्रो.रवि रंजन
हिन्दी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
Æ¤¸Ö²ÖÖ¤ - 500 046

निर्देशक
सच्चिदानन्द चतुर्वेदी
हिन्दी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
Æ¤¸Ö²ÖÖ¤ - 500 046

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना 1-4

प्रथम अध्याय : आधुनिकता चिंतन के क्षितिज से 5-50

1.1 आधुनिक और आधुनिकता
1.2 आधुनिकीकरण
१.२.१ औद्योगीकरण
१.२.२ नगरीकरण
१.२.३ तकनीकीकरण
1.3 आधुनिकता¾ÖÖ¤
1.4 आधुनिकता बोध
1.5 उत्तरआधुनिकता
1.6 आधुनिकता का स्वरूप
1.7 वर्तमान आधुनिकता का प्रारंभ
1.8 भारत में आधुनिकता
1.9 आधुनिकता और साहित्य
1.10 आधुनिकता बोध: अर्थ एवं प्रकृति
1.11 †Ö¬Öनिकता बोध के कारक तत्व
१.११.१ महानगरों की सभ्यता का विकास
१.११.२ दो महायुद्धों का परिणाम
१.११.३ वर्तमान परिस्थितियाँ और युवा पीढ़ी
1.11.4 ×¾Ö–ान का प्रभाव
१.११.५ मानव व्यक्तित्व के संबंध में विभिन्न धारणाओं का विकास
१.११.६ यांत्रिक सभ्यता और व्यापक सांस्कृतिक संकट
ÃÖ¤³Ö ÃÖ“Öß

द्वितीय अध्याय : उषा प्रियंवदा की रचनात्मक चेतना का विकास 51-89

2.1 जन्म, बचपन एवं पारिवारिक परिवेश
2.2 शिक्षा एवं वर्तमान स्थिति
2.3 वैवाहिक जीवन
2.4 रचनात्मक प्रेरणा
2.5 हिन्दी कहानी में प्रवेश
2.6 विविध कहानी आन्दोलन और उषा प्रियंवदा

2.7 उषा प्रियंवदा की रचनाएँ
२.७.१ कहानी - संग्रह
२.७.१.१ फिर बसन्त आया
2.7.1.2 ×ज़न्दगी और गुलाब के फूल
२.७.१.३ एक कोई दूसरा
२.७.१.४ कितना बड़ा -ÖŠ
२.४.१.५ मेरी प्रिय कहानियाँ
२.७.१.६ शून्य तथा अन्य रचनाएँ
२.७.२ उपन्यास साहित्य
२.७.२.१ पचपन खम्भे लाल दीवारें
२.७.२.२ रुकोगी नहीं राधिका
२.७.२.३ शेष यात्रा
2.7.2.4 †ŸÖ¾Ö¿Öß
२.७.२.५ भया कबीर उदास
ÃÖ¤³Ö ÃÖ"Öß

तृतीय अध्याय : उषा प्रियंवदा की कहानियों में आधुनिकता बोध 90-140
3.1 पारिवारिक विघटन और मध्यवर्गीय बोध
3.2 दाम्पत्यगत दूरियों की ईमानदार स्वीकृति
3.3 अर्थकेन्द्रित समाज व्यवस्था की क्रूर मानसिकता
3.4 आधुनिक और प्राचीन मूल्यों से जू-ाती आज की नारी
3.5 अकेलेपन एवम् अजनबीपन का एहसÖÖÃÖ
3.6 नारी मुक्ति का स्वर
3.7 प्रेम में मोहभंग की स्थिति
3.8 निर्बाध यौन-जीवन की स्वीकृति
3.9 वैयक्तिकता का आग्रह
3.10 विवाह के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण
ÃÖ¤³Ö ÃÖ"Öß

चतुर्थ अध्याय : उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में आधुनिकता बोध 141-206
4.1 नारी अस्तित्व का मौलिक अन्वेषण
4.2 भौतिक युग के स्वार्थावरण से ´Ö×>ŸÖÖ ×¸¿ŸÖÖ
4.3 अकेलापन और अजनबीपन
4.4 ¯Ö×ŸÖ-पत्नी संबंध के बदलते आयाम

4.5 काम-सम्बधों का स्वच्छंद चित्रण
4.6 योग्य जीवनसाथी के चयन की स्वतंत्रता
4.7 घुटन, संत्रास, निराशा, शून्यता आदि का बÖ¬Ö
4.8 प्रवासी जीवन में संघर्ष और मोहभंग की स्थिति
4.9 इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स तथा देश - विदेश का कल्चरल शॉक
4.10 कैरियर चेतना
ÃÖ¤³Ö ÃÖ“Öß
पंचम अध्याय : उषा प्रियंवदा की शिल्पगत आधुनिकत֟Ö 207-269
5.1 उषा प्रियंवदा की कहानियों का शिल्प-विधान
५.१.१ भाषागत नवीन प्रयोग
५.१.२ बिम्ब विधान
५.१.२.१ शब्दगत बिम्ब
५.१.२.२ रूपगत बिम्ब
५.१.२.३ स्पर्शगत बिम्ब
५.१.२.४ गंधगत बिम्ब
५.१.२.५ रंगगत बिम्ब
५.१.३ प्रतीक विधान
५.१.४ शैलीगत नवीनता
५.१.५ पात्रों का शील-निरूपण
५.१.५.१ लेखिका द्वारा पात्र-चित्रण
5.1.5.2 ¯ÖÖ¡Ö «Ö¸Ö †ÖŸ´Ö - चित्रण
५.१.५.३ एक पात्र द्वारा अन्य पात्र का चरित्रÖ - चित्रण
५.१.५.४ रेखाचित्र द्वारा पात्र - चित्रण
5.1.5.5 ÃÖ¾ÖÖ¤Ö «Ö¸Ö ¯ÖÖ¡Ö - चित्रण
५.१.५.६ सूक्ष्म भाव - भंगिमाओं द्वारा पात्र - चित्रण
5.1.5.7 ¯Ö¡Ö - ¿Ö»Öß «Ö¸Ö ¯ÖÖ¡Ö - चित्रण
५.१.६ अन्य विशेषताएँ
5.2 ˆÂÖı प्रियंवदा के उपन्यासों का शिल्प-विधान
५.२.१ भाषागत नवीनता
५.२.२ प्रतीक विधान
5.2.3 ×²Ö´²Ö-योजना
५.२.३.१ रूपगत बिम्ब
५.२.३.२ शब्दगत बिम्ब
५.२.३.३ स्पर्शगत बिम्ब

५.२.३.४ रंगगत बिम्ब

5.२.३.५ गंधगत बिम्ब

५.२.४ शैलीगत विविधता

५.२.४.१ आत्मकथात्मक शैली

५.२.४.२ विश्लेषणात्मक शैली

५.२.४.३ वर्णनात्मक शैली

5.2.4.4 ¯Ö¾Ö¤ßÛ¯ÖŸÖ ¿Ö»Öß

5.2.4.5 ¯Ö¡Ö ¿Ö»Öß

५.२.४.६ स्वप्न शैली

5.2.4.7 डायरी शैली

५.२.५ पात्रों का शील - निरूपण

५.२.५.१ लेखिका द्वारा पात्र - चित्रण

5.2.5.2 ¯ÖÖ¡Ö «Ö¸Ö †ÖŸ´Ö - चित्रण

५.२.५.३ एक पात्र द्वारा अन्य पात्र का चरित्र - चित्रण

५.२.५.४ सूक्ष्म भाव - भंगिमाओं द्वारा पात्र - चित्रण

5.2.5.5 ÃÖ¾ÖÖ¤Ö «Ö¸Ö ¯ÖÖ¡Ö - चित्रण

५.२.५.६ रेखाचित्र द्वारा पात्र - चित्रण

ÃÖ¤³Ö ÃÖ“Öß

^¯ÖÃÖÓÆÖ¸ **270-275**

संदर्भ ग्रंथ सूची **276-282**

प्रस्तावना

पश्चिमी देशों के अनेक प्रगतिशील चिन्तकों के सत्प्रयासों के कारण ही विश्व में स्त्री को पुरुष की अधीनस्थता की स्थिति से बाहर निकलने का अवसर प्राप्त हुआ। जॉन स्टुअर्ट मिल और सीमोन दी बोउवार के क्रांतिपूर्ण 'नारी-Ã¾ÖÖŸÖत्र्य' संबंधी साहित्य एवं चिन्तन ने, पीड़ित तथा शोषित नारी को पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था की अनेक विसंगतियों से लड़ने का बल प्रदान किया। सीमोन दी बोउवार की 'नारी पैदा नहीं होती, बना दß •ÖÖŸÖß Æ' - आवाज़ की गूँज ने साहित्य में नारीवादी चिन्तन को जन्म दिया। द्वितीय महायुद्धोत्तर समाज में नारीवादी चेतना, इसी गूँज की अनुगूँज बनकर, समूचे विश्व-साहित्य में प्रकट हुई। भारतीय परिवेश में नारी शोषण, अनादि काल से परम्परा के रूप में विद्यमान रहा है। इस शोषण, अत्याचार और उत्पीड़न से मुक्ति की आकांक्षा का उदय ही नारीवादी चेतना बनकर भारतीय साहित्य में प्रकारान्तर से उदित हुई।

स्वातंत्र्योत्तर काल में एक महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि आधुनिक शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन के कारण भारतीय नारियों में नवजागरण आया और वे अपने अस्तित्व एवम् अधिकार के प्रति सजग हुईं। नारी जागरण की इस नयी चेतना ने स्त्री को कार्य करने के अनेक नये क्षितिज भी प्रस्तुत किए। आधुनिक शिक्षा के कारण उसने कुछ हद तक आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता की माँग की। जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी में आने लगी। कहा जा सकता है कि साहित्य के क्षेत्र में भी वह पुरुष से पीछे नहीं रही। स्वतंत्रता-पूर्व साहित्य में जहाँ केवल एक-दो स्थापित महिला साहित्यकार हुआ करती थीं, वहाँ स्वतंत्रता के पश्चात् ऐसी अनेकों महिला साहित्यकारों के नाम उभरकर सामने आए, जो पुरुष साहित्यकारों की तुलना में मात्रा या गुण किसी भी दृष्टि से पीछे नहीं दिखाई देती हैं। स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में साहित्य की हर विधा में पुरुष साहित्यकार के साथ-साथ महिला साहित्यकारों का योगदान भी विशेष महत्वपूर्ण ¸ÆÖ Æ |

महिला लेखन की यह अन्यतम उपलब्धि है कि उसने एक ओर नारी ह्रदय को विविध कोणों से परखकर ईमानदार अभिव्यक्ति प्रदान की और दूसरी ओर नारी को परम्परा पोषित मान्यताओं के पाश से मुक्त करके 'मानवी' के रूप में प्रतिष्ठित किया। भारतीय आदर्शों में ¸“Öß-बसी सती नारी के स्थान पर उस नारी का चेहरा सामने आया, जिसे अपनी महत्ता और

अस्मिता पर गर्व था। महिला लेखन पुरुष की बँधी-बँधाई, पूर्वाग्रह से संचित दृष्टि को त्यागकर नारी को व्यक्ति रूप में देखने का पक्षधर है जहाँ पुरुष सापेक्ष भूमिकाओं की सीमित परिधि से मुक्त होकर एक विशुद्ध नारी के रूप में उसकी पहचान संभव हो। वह नारी जिसके मन में अपनी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक दुर्बलताओं के प्रति दया का भाव नहीं उपजता; देह, संस्कार, संवेदना और विवेक किसी भी स्तर पर वह अपना मूल्यांकन परम्परागत पुरूष निर्मित प्रतिमानों के आधार पर नहीं करती।

आधुनिक महिला कथाकारों की सुदीर्घ पंक्ति में जिनका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है, उनमें उषा प्रियंवदा प्रमुख हैं। अंग्रेज़ी तथा हिंदी की बहुश्रुतता तथा देश-विदेश का अनुभव उनकी अपनी निजी निधि है। एक जागरूक महिला होने के कारण सामाजिक तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में समाज के बदलते-बिगड़ते-संवरते अनेक रूपों से वे पूर्णतया अभि-Ö Æ |

आधुनिकता के प्रति विशेष आकर्षण होने के कारण लेखिका अपने समसामयिक युग-बोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में रखकर उसे पूरी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास करती हैं। इनका कथा-साहित्य सामान्यत: सामाजिक तथा प्रमुख रूप से पारिवारिक जीवन से संबंधित है। मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन के यथार्थ एवम् उसकी समस्याओं को लेखिका ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। उनके कथा-साहित्य में शहरी परिवारों के बड़े ही अनुभूति प्रवण चित्र हैं और आधुनिक जीवन की उदासी, अकेलापन, ऊब, घुटन, संत्रास, अजनबीपन आदि का अंकन करने में उन्होंने अत्यंत गहरे यथार्थबोध का परिचय दिया है। उनकी नायिकाएँ कहीं भी आँसू बहाते हुए अपने नसीब को नहीं कोसतीं, अपितु अपने स्वतंत्र अस्तित्व के निर्माण के लिए निरंतर संघर्षरत हैं। उनका साहित्य पारिवारिक एवं सामाजिक भूमिकाएँ निभाता हुआ परंपरा और रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास करता है।

†त: उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में आधुनिकता एवम् आधुनिक युग-बोध का चित्रण प्रमुख रूप में हुआ है। जिस पर प्रकाश डालना इस शोध प्रबंध का उद्देश्य है।

अध्ययन एवम् विश्लेषण की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय है - 'आधुनिकता चिंतन के क्षितिज से' | ‡ÃÖ´Ö आधुनिकता बोध के रूपायन के विभिन्न तत्वों का विस्तृत प्रतिपादन हुआ है। यह ³ÖÓ ÃÖ¯ÖÂ™ किया गया है कि आधुनिकता बोध स्वाधीनता परवर्ती संदर्भ से एकदम उभरी हुई संवेदना नहीं

बल्कि इसका एक लम्बा इतिहास है। यह मनुष्य के समग्र विकास के साथ विकसित वह संवेदना Æ ×•ÖÃÖ´Ö आधुनिक मनुष्य का तमाम यथार्थ अनुगुंजित है।

द्वितीय अध्याय है- 'उषा प्रियंवदा की रचनात्मक चेतना का विकास'। इस अध्याय के अंतर्गत उषा प्रियंवदा का जन्म, बचपन, शिक्षा, वैवाहिक जीवन तथा उनकी वर्तमान स्थिति को विवेचित कर उनके व्यक्तित्व पर एक दृष्टिक्षेप किया गया है। साथ ही हिंदी कहानी में उषा प्रियंवदा का प्रवेश, विविध कहानी आन्दोलनों में उनकी भूमिका और उनकी सृजनात्मक प्रेरणा आदि का विवेचन भी किया गया है। अंतत: उनके कहानी एवम् उपन्यास साहित्य का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है।

तृतीय अध्याय है - 'उषा प्रियंवदा की कहानियों में आधुनिकता बोध'। इस अध्याय में उषा प्रियंवदा की कहानियों में प्रतिफलित आधुनिकता बोध को विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत विवेचित करने का प्रयास किया गया है। 'उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में आधुनिकता बोध' नामक चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में व्यक्त आधुनिक मानव जीवन की वास्तविकता एवं विभिन्न समस्याओं का समग्र विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

पंचम अध्याय है - 'उषा प्रियंवदा की शिल्पगत आधुनिकता'। इस अध्याय के अंतर्गत उषा प्रियंवदा की कहानियों एवम् उपन्यासों के शिल्प में आए परिवर्तन की ओर इशारा किया गया है। जीवन के नये अनुभवों एवम् संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए परम्परागत ×¿Ö»¯Ö-×¾Ö×¬Ö †समर्थ है। अत: लेखिका ने नवीन शिल्प-विधि का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। उषा प्रियंवदा की इस शिल्पगत आधुनिकता पर विचार करना ही इस अध्याय का उद्देश्य रहा है।

विषय चयन से लेकर इस शोध प्रबंध को अंतिम रूप देने में मु-ने मेरे शोध निर्देशक आ.गुरुवर्य डॉ.सच्चिदानंद चतुर्वेदी जी के अक्षय -ान भण्डार और विषय में विशेष योग्यता से उचित मार्गदर्शन मिला। यह मेरा परम सौभाग्य है कि मु-ने डॉ.चतुर्वेदी जी जैसे विषय के -ÖÖŸÖÖ एवं सतत प्रेरणा देने वाले निर्देशक की देख-रेख में शोध-कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। गुरूवर्य ने अपने अत्यधिक व्यस्त क्षणों में भी मेरी छोटी-”Ö™ी शंकाओं का निरसन कर कार्य की दुरूहता को सहज बना दिया। उनका स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन ही सदैव मेरा सम्बल रहा। मेरी गलतियों एवं त्रुटियों को तर्कबद्धता से सुधारकर मु-ने कार्योन्मुख बनाने में उन्होंने पूर्ण योगदान दिया। अत: उनके प्रति कृत-ता प्रकट करना मानो उनकी कृपा का मूल्य निर्धारण करने की

ढिठाई करना है। अत: उनको हार्दिक आभार की औपचारिकता के बजाय उनको अपना सतत् प्रणाम निवेदित करता हूँ।

हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ.रवि रंजन तथा विभाग के अन्य विद्वान - प्रो. सुवास कुमार, प्रो.शशि मुदिराज, डॉ.श्याम राव, डॉ.भीम सिंह आदि से भी मु-
काफी सहायता एवं प्रोत्साहन मिला है, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

मुख्य रूप से मैं अपने पूजनीय माता, पिता एवं काका जी का आभारी हूँ। केवल आभार व्यक्त करके मैं मुक्त नहीं हो सकता, उनके प्रति नतमस्तक हूँ। आज तक मैं जो कुछ कर पाया हूँ, उन्हीं के प्रोत्साहन एवं विश्वास का प्रसाद है। सहधर्मिणी अपर्णा का भी पूरा सहयोग मु-ने प्राप्त हुआ। इस शोध कार्य को सफलतापूर्वक साकार रूप देने में मेरे परिवार का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इसके अतिरिक्त मेरे मित्रों - साईनाथ चपळे, डॉ.मनोहर चपळे, प्रा.साईनाथ शाहू, सतीश गोविंदवार, अमित वट्टमवार, शशिकांत आकुलवार, अमोल मुक्कावार, ॅ.†¸¤ बोधनकर, प्रा.अशोक भोसीकर, प्रा.बालाजी श्रीगिरे, डॉ.जहिरोद्दिन पठाण, प्रा.कल्याण पाटील, प्रा.प्रभाकर जाधव, प्रा.सुधाकर कासरलावाड, प्रा.पटाईत, प्रा.-ानेश्वर चिट्टमपल्ले, प्रा.माधव ¤¿शेट्टे, प्रा.प्रकाश शिंदे, प्रा.सुदर्शन क्षेत्री, प्रा.श्रीराम गव्हाणे, चंदु खंदारे, अविनाश, राम रेड्डी आदि के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर मेरी सहायता की। साथ ही ला.ब.शा. महाविद्यालय, धर्माबाद के प्रधानाचार्य डॉ.डी.आर.मोरे महोदय का भी विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने सदैव मेरा मार्गदर्शन किया और शोध-कार्य के लिए प्रोत्साहन दिया। ^¯धानाचार्य प्रा.थोटे, प्रा.आप्रतवाड, प्रा.मिरकुटे, डॉ.गोविंद यम्मलवाड आदि का भी मैं आभारी हूँ। साई पाटील ने बड़ी निष्ठा एवं लगन के साथ इस प्रबंध का टंकन किया, अत: मैं उनके प्रति भी आभारी हू।

अंत में उन सभी लेखकों, विद्वानों, सुधीजनों का जिनके लेखन से सहायक सामग्री लिए बिना इस शोध प्रबंध का संपन्न होना असंभव था, आभार व्यक्त करता हूँ।

संदीप विश्वनाथराव रणभिरकर

प्रथम अध्याय

आधुनिकता : चिंतन के क्षितिज से

प्रथम अध्याय

आधुनिकता : चिंतन के क्षितिज से

मनुष्य स्वभावत: विकास की प्रक्रिया में लगा रहता है और साथ-साथ बदली हुई या अचानक आ गई विपरीत परिस्थिति से मुकाबला करता है, और मूल प्रावृत्तिक क्षमता से अपने को अनुकूलित भी करता जाता है। पहले विकास की गति धीमी रहती थी किन्तु जैसे-जैसे मनुष्य में सर्वतोन्मुखी जागरूकता बढ़ती गÖ‡, -ान-×¾Ö-ान-मनोवि-ान की नई-नई खोजें सहयोग देती गईं, वैसे-वैसे विकास की रफ्तार तेज़ होती गई।

औद्योगिक क्रांति के बाद एक युगांतरकारी परिवर्तन घटित हुआ और वह एक तेज़ प्रकाश लेकर हमारे सामने आया, हम विकास के नए-नए आयामों को अपने सामने खुलते हुए देखने लगे। यह विकास समाज ही नहीं, व्यक्ति के जीवन में भी लक्षित होने लगा। यं¡Ö×¾Ö×•Ö की विकासगति इतनी त्वरित हो उठी कि लगा कि मनुष्य प्रकृति पर पूर्णरूप से काबिज़ हो जाएगा और अपने को एक महामानव में बदला हुआ देखेगा। भौतिक संसाधनों को प्राप्त करने की होड़ लग गई। प्रतिस्पर्धा सभी क्षेत्रों में पनपने लगी। 'नया' के प्रति एक गहरा और अंधा आकर्षण भी जाग उठा। अर्थ, संस्कृति, कला, समाज, उद्योग, फिल्म या जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'नया' ही महत्वपूर्ण हो उठा। 'नयÖ' का अर्थ 'आधुनिक' माना जाने लगा।

यह आधुनिकता विभिन्न प्रभावों से उत्पन्न एक चेतना है जिसको निरन्तरता के अंतर्गत रखा जा सकता है। समय की गति में कहीं कोई विराम नहीं है। आज हम जिस क्षण का अनुभव कर रहे हैं, उसका बीज अतीत के क्षण में छिपा रहता है और प्रत्येक युग का समाज अपने समय की आधुनिक स्थिति और प्रवृति से जू-ाता रहा है। इस तरह आगत विगत को चुनौती देता रहा Æ, †ÝÖßÝा की कल में सा-ेदारी रहती है और आनेवाला कल आज से संबल प्राप्त करता है। अत: प्रत्येक युग अपने युग में आधुनिक रहता है। क्योंकि हर युग में नयी-नयी समस्याओं का जन्म होता रहा है और उसके समाधान के लिए नये रास्तों का अन्वेषण होता रहा है। बौध्दकाल आज प्राचीन हो गया परन्तु निश्चित रूप से अपने युग में वह आधुनिक रहा होगा। कबीर, तुलसी, प्रेमचंद और प्रसाद आज पुराने कहे जायेंगे पर निश्चित रूप से अपने समय में वे आधुनिक थे। निश्चित है कि कबीर तुलसी की तुलना में अधिक आधुनिक थे, क्योंकि तुलसी की

अपेक्षा कबीर में आधुनिक-बोध अधिक था l कबीर अपना विचार (बोध) जितनी निर्भीकता के साथ प्रस्तुत करते थे तुलसी नहीं कर सकते थे l

¾ÖÖÃÝÖ¾Ö ´Ö ‘आधुनिकता का स्वभाव चतुर-“Ö“Ö»Ö-कस्तूरी मृग की भाँति है l आधुनिकता का स्वरूप जो कल था, वह आज हो, जो आज है वह कल भी हो यह दावा नहीं किया जा सकता l कल की तुलना में आज को नया मानने जैसी स्थिति आधुनिकता के साथ नहीं है l अत: आधुनिकता का स्वरूप शाश्वत रूप से परिवर्तनशील है l’[1]

†Ödhुनिकता कोई निरपेक्ष धारणा या निरंकुश सिध्दांत नहीं है l यह गतिशील आधुनिक स्थिति है जिसका स्वभाव ठहरना नहीं, निरंतर बदलना है l काल धारणा से मुक्त यह कोई सनातन क्रिया नहीं आधुनिक युग की गतिशील प्रक्रिया है l आधुनिकता इसी प्रक्रिया से बनी मानसिकता है l इसमें मानव स्थितियों का यथार्थ है तो संघर्ष और विद्रोह का संकल्प भी है, आत्मनिष्ठता है तो सामाजिक यथार्थ भी है l इस मनोदृष्टि ने आधुनिक तथा समकालीन रचना के बोध और संवेदना की एक अलग पहचान बनायी है और इसे एक अद्वितीय विशिष्टता दी है l

स्पष्ट है कि आधुनिकता वर्तमान के -ररोखे से अतीत को निहारने और भविष्य को संवारने का विवेकशील रवैया है l किन्तु इसके संबंध में अंतिम रूप से कुछ तय कर पाना, निर्णय देना या निष्कर्ष निकालना कठिन है l इसके नित्य क्रियाशील और गतिमान रूप को पकड़ पाना आसान नहीं l इसकी सतत गतिशीलता इसे मायावी बना देती है l एक विशेष प्रेक्ष्य-बिन्दु से देखने पर लग सकता है कि इसे पा लिया पर दूसरे क्षण, किसी अन्य कोण से देखने पर इसकी एक सर्वथा भिन्न तस्वीर सामने आ सकती है l असल में, इस गति को पकड़कर यानी इस गति के समानान्तर चल कर ही इस तक पहुँचा जा सकता है l इसके लिए ज़रूरी है कि आधुनिकता के प्रति एक खुला दृष्टिकोण अपनाया जाए l

आधुनिक, आधुनिकता, आधुनिकीकरण, आधुनिकतावाद, आधुनिकता-²ÖÖ¤Ö ŸÖ£ÖÖ उत्तरआधुनिकता आदि के पारस्परिक संबंधों की छान-बीन के बिना आधुनिकता की अवधारणा को नहीं सम-ा जा सकता l यह एक मूलभूत शर्त है कि इन धारणाओं के अंत:संब-ÖÖ †Ö¸ उनकी अंतर्धाराओं को प्रासंगिकता के आधार बिंदुओं पर परखा जाए l कहीं इन सब धारणाओं की अंतर्धाराओं में एक मूल तत्व विद्यमान है l वह मूलतत्व जो इन्हें विशेषण के रूप में नहीं बल्कि संं-ा के रूप में स्थापित करता है l

1.1 आधुनिक और आधुनिकता :

'आधुनिक' शब्द सर्वप्रथम हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। अवधारणात्मक स्तर पर 'आधुनिक' में निहित आशयों व अर्थों की परतें खोलने से पूर्व '†ाधुनिक' शब्द की व्युत्पत्ति व अर्थ का बोध उपयोगी होगा।

'आधुनिक' शब्द संस्कृत के '†a' धातु से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है '†Ö•Ö' | †ŸÖ: 'आधुनिक' - '†a', '†••Ö' ÃÖ-ाओं के मूल से बना विशेषण शब्द है जो व्याकरण के अनुसार 'इक्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ हुआ - आजकल का, वर्तमान समय का। यह समय-सापेक्ष शब्द है, या समय से आगे का, क्योंकि कल से आज हम नए हैं। एक तरह से पुरान ÃÖ ×¾Ö¸Ö¬Ö ÆüÖ 'आधुनिक' शब्द का अर्थ है।

'आधुनिक' शब्द अंग्रेज़ी के 'मॉडर्न' का पर्याय है। वेबस्टर के शब्द कोश के अनुसार आधुनिक (मॉडर्न) का अर्थ है - "कला क्षेत्र में एक आन्दोलन या शैलीविशेष, जिसका लक्षण है-परम्परागत शास्त्रीय रुपों और अभिव्यक्ति-प्रणाली से विच्छेद अथवा प्रयोग, निर्भीकता और सर्जनात्मक मौलिकता पर बल और आधुनिक विषयों पर विचार करने का प्रयास।"[2]

आधुनिक शब्द के उपर्युक्त अर्थ में निम्नलिखित प्रवृत्तियों का संकेत मिलता है -

१) परम्परागत मूल्यों से विच्छेद की भावना,

२) अभिव्यक्ति प्रणाली की नवीनता,

३) रचना के क्षेत्र में मौलिकता,

४) काव्य या साहित्य में नये विषयों का समावेश,

५) माध्यम और विषय के क्षेत्र में प्रयोग।

डॉ.नगेन्द्र 'आधुनिक' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में करते हैं - मध्यकाल से भिन्न, नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण। मध्यकाल अपने अवरोध, जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एकरस था। विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया से उसे पुन: गत्यात्मक बनाया गया। (नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण)-धर्म, दर्शन, साहित्य, कला आदि सभी के प्रति नवीन दृष्टिकोण को अपनाया गया।[3] मध्यकाल में व्यक्ति में परलोक की ललक इतनी अधिक थी कि उसमें इस लोक की, अपने परिवेश की सुध तक नहीं थी। आधुनिक समय में व्यक्ति अपने पर्यावरण के प्रति अधिक सतर्क हो गया। 'आधुनिक' शब्द मध्यकालीनता से एकदम अलग होने की सूचना

¤ÿÖÖ Æü | "आधुनिक एक दृष्टि है जो वै-ानिक अविष्कारों तथा प्रौद्योगीकरण का अनिवार्य परिणाम है।"[4]

'आधुनिक' की अन्तश्चेतना व उसके आयाम का भरा-पूरा मानस-साक्षात्कार करने के लिए उसे दो शब्दों से अलगाकर या उभार कर भी देखा जा सकता है या देखना उपयोगी हो सकता है - समसामयिक (Contemporary) और वर्तमान (Present)। 'समसामयिक' †Ö¸ 'वर्तमान' का काल विस्तार आधुनिक की अपेक्षा कम है। उदाहरणार्थ, '†Ö¬Öãनिक युग' ´Ö हम भारतेन्दु से लेकर आज तक के काल-विस्तार को समाहित करते हैं। 'आधुनिक युग' ´Ö कितने ही समसामयिक व वर्तमान समाये हुए हैं। 'आधुनिक' में जो विस्तार व गहराई है वह ´ÖÖ¡Ö 'समसामयिक' या मात्र 'वर्तमान' में नहीं।

हिन्दी साहित्य में 'आधुनिक' शब्द को तीन अर्थों में ग्रहण किया गया-

१) समय सापेक्ष,

२) नये का वाचक,

३) विशिष्ट दृष्टिकोण।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'आधुनिक' शब्द का प्रयोग कालवाची अर्थ में किया है। जो अंग्रेज़ी 'मॉडर्न' शब्द का पर्याय है। और इसी अर्थ में आधुनिक काल का नामकरण किया गया Æü |

इस तरह आधुनिक अपने मूल रूप में काल सापेक्ष-²ÖÖ¬Ö Æüी है। जो कुछ अब या अभी 'Ö×™ÿÖ ÆüÖê ¸üÆüÖ Æü ¾ÖÆü 'आधुनिक' है। राजनीति, समाज-संगठन, आचार-व्यवहार, वेश-³ÖÂÖÖ आदि के क्षेत्र में अभी जो क्रिया, प्रक्रिया चल रही है, वे सभी आधुनिक कही जा सकती हैं| क्योंकि पुरानेपन से उनमें जो अनोखापन होता है, वह अत्यंत स्थूल होकर, हमारी इन्द्रियों को तत्काल आकर्षित करता है। इसलिए उन क्रियाओं को 'आधुनिक' की सं-ा दी जा सकती है।

'आधुनिक' विशेषण शब्द में हिन्दी का 'ŸÖÖ' प्रत्यय लगाने से 'आधुनिकता' भाववाचक ÃÖÓ-ा बनती है जिसका अर्थ होगा- आधुनिक होने का भाव या स्थिति, आधुनिक ¾ÖÃŸÖã†Öë, स्थितियों, गतिविधियों, परिवेश व माहौल को समेटे हुए गुणधर्म या भाव की संग्रथित,समंजित, समुच्चयित स्थिति, भावना या अवस्था। 'आधुनिकता' के लिए 'आधुनिक' ही आधार प्रदान करता है। '†ाधुनिक' से होकर ही 'आधुनिकता' में प्रवेश किया जा सकता है।

बृहत् हिन्दी कोश में आधुनिकता का अर्थ बताया गया है, “आधुनिक होने का भाव एक ऐसा दृष्टिकोण है जो मनुष्य की नियति को पूर्व परम्परा से सम्बध्द न मानकर नये युग की स्थितियों के अनुसार परिभाषित करे ।”[5]

साहित्य के क्षेत्र में आधुनिकता एक बड़ा विचारोत्तेजक एवं विवादग्रस्त विषय है। अनेक लेखकों और विचारकों ने भिन्न-×³Ö®Ö ¥ष्टियों से आधुनिकता की व्याख्या की है ; आधुनिकता के लक्षणों और विशेषताओं का उद्घाटन किया है। प्राय: आधुनिकता को ऐतिहासिक चेतना से जोड़कर उसका विश्लेषण किया जाता है। आधुनिक और आधुनिकता के संबंध में प्राप्त प्रमुख मतों का संक्षिप्त उल्लेख, इस प्रसंग में उपयोगी होगा।

डॉ.सूर्यप्रकाश विद्यालंकार लिखते हैं - “आधुनिकता की सं-ाा आधुनिक विशेषण से बनी है, यह विशेषण मानव के संदर्भ में दो दिशाओं की ओर इंगित करता है। भौतिक परिवेश जो अनिवार्यत: देशकालगत होता है और मानसिक परिवेश जो परिवेश के प्रति प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है।”[6]

डॉ.नगेन्द्र के अनुसार, “†Ö-Ö×नक -ाान-×¾Ö-ाान और टेक्नॉलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय स्थितियों का नया गैररोमांटिक और अमिथकीय साक्षात्कार आधुनिकता है।”[7]

लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार, आधुनिकता एक यथार्थवादी मानव-सापेक्ष जीवन-¥ÛÂ™ Æ, •ÖÖ ¾Ö-ाानिक है, विश्लेषण-परीक्षण उसकी विधि है, आत्म-साक्षात्कार हेतु प्रयोग उसका माध्यम है तथा आधुनिकता द्वारा ही मानव स्वाभिमान के औचित्य और समसामयिकता का निर्वाह ÃÖ³Ö¾Ö Æ । आधुनिकता अतीत की रूढ़ियों का त्याग कर वर्तमान और समसामयिकता को नये रूप में प्रस्तुत करती है।[8]

मनुष्य की जीवन-पध्दति; युग-संदर्भ और मूल्यों का घनिष्ठ संबंध होता है। मूल्यों का विकास जीवन-पध्दति के अंतर्गत होता है। इस दृष्टि से नित्यानंद तिवारी के शब्दों में, “...आधुनिकता सबसे पहले एक जीवन-पध्दति है, जिसका विकास इतिहास की विभिन्न शक्तियों के दबाव के कारण हुआ है।”[9] †ाधुनिक होने का अर्थ समयहीन होना नहीं है क्योंकि “.....इतिहास की अनेक शक्तियों के दबाव के कारण एक प्रक्रिया की निश्चित परिणति के फलस्वरूप जीवन-पध्दति भी युग-संदर्भ के बीच ही महत्व पाती है और इसीलिए आधुनिकता युग-संदर्भ से कटकर समयहीनता की भावना नहीं हो सकती।”[10]

आधुनिकता और अतीत में अविच्छिन्न संबंध स्थापित करते हुए डॉ.जगदीश गुप्त ने यह प्रतिपादित किया है कि "....†ाधुनिकता के मूल में मानववादी विचारधारा निहित है ।"[11] आधुनिकता की अतीत निरपेक्ष व्याख्या मनुष्य के लिए मंगलदायी सिध्द नहीं हो सकती। जीवन को दायित्वपूर्ण सार्थकता प्रदान करने के लिए आधुनिक दृष्टि का होना नितांत संगत एवं अपेक्षित है।

आधुनिकता केवल समसामयिकता और 'नव्यता' नहीं है, अपितु वह एक प्रक्रिया है, जो दीर्घकालीन सांस्कृतिक विकास से जुड़ी हुई है। "वस्तुत: आधुनिकता ¯Ö×¸¾ÖÛŸÖÖŸÖÖ ³ÖÖ¾Ö-बोध की वह स्थिति है, जिसका प्रादुर्भाव यांत्रिक तथा वै-ाानिक विकासक्रम के वर्तमान बिन्दु पर आकर Æ†Ö Æ |"[12] युगेश्वर आधुनिकता को "इतिहास की विशिष्ट प्रक्रिया और स्थिति"[13] मानत Æ | आधुनिकता परिवेश समसामयिकता की चेतना, आत्म-सजगता और आत्मचेतना से अभिन्न है |[14]

केदारनाथ अग्रवाल की दृष्टि में 'आधुनिकता कालबध्द चेतना है ।' उसका एक रूप विघटनात्मक तथा दूसरा रूप संघटनात्मक होता है। जहाँ आधुनिकता जीवन के स्वीकृत मूल्यों पर प्रहार करती है, कुंठाओं को जन्म देती है। आधुनिकता का संघटनात्मक स्वरूप जीवन को संश्लिष्ट रूप प्रदान करता है। आधुनिकता के दूसरे रूप का प्रतिफल अदम्य शक्ति है। इस प्रकार आधुनिकता अस्वीकृति और स्वीकृति, समस्या और समाधान दोनों है ।[15]

आधुनिकता 'कÖ»Ö²Ö¬¤-चेतना' न होकर विशेष नयी परिस्थितियों की उपज है । आधुनिक दृष्टि रचनाकार की आत्म-सजगता की परिचायक है तथा उसे वर्तमान संदर्भो से जोड़ती है। अपनी परिस्थिति और परिवेश से सम्पृक्ति का भाव ही रचनाकार की अनुभूति को प्रामाणिक बनाने में सक्षम है। आधुनिकता में परंपरा और ऐतिहासिक चेतना का निषेध नहीं है |[16]

डॉ.देवराज के अनुसार 'जीवन और जगत के यथार्थ' का स्वीकार - भाव आधुनिक दृष्टि की खास पहचान है। आधुनिक दृष्टि मनुष्य को नितांत स्वतंत्र अस्तित्व एवं गौरव प्रदान करती है और यह मानती है कि मनुष्य स्वयं अपनी नियति का निर्णायक और निर्माता है। आधुनिक दृष्टि में गहरी संलग्नता का भाव होता है इसीलिए आधुनिक होने का अर्थ है, अपने समय का साथ देनेवाला, सामजिक रुचिवाला होना। आधुनिक होने के लिए अतीत को अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है ।[17]

सामान्यत: आधुनिकता का अर्थ, आर्थिक क्षेत्र में औद्योगीकरण, राजनीति के क्षेत्र में जनतंत्र और समाजशास्त्र में मानव-न्याय के साथ लगाया जा सकता है। मध्यकाल तक इन धारणाओं का नामों-निशान तक नहीं था। आधुनिक काल में परिवर्तन के साथ ही औद्योगीकरण, जनतंत्र और मानव-न्याय व्यक्ति-समाज में जड पकडने लगे। जिससे मनुष्य अतिरिक्त सजग हो गया। गंगाप्रसाद विमल ने आधुनिकता को एक अतिरिक्त सजगता कहा है।[18] इस तरह विद्वानों ने आधुनिकता के अर्थ को अनेक रूपों में व्याख्यायित किया है। संक्षेप में उपर्युक्त मतों से निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं :

१) आधुनिकता प्राचीन और अभिनव में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती है। सिध्द है कि परम्परा से उसे बिल्कुल अलग नहीं किया जा सकता।

२) आधुनिकता एक वै-ानिक मनोवृत्ति है।

३) उसमें बौध्दिकता का समावेश होता है।

४) आधुनिकता विखण्डन के कारण उपजती है।

५) साहित्य में आधुनिक मनोवृत्ति एक क्रांतिकारी कदम है।

6) †ÖÖ´Ö-चेतनता उसकी खास पहचान है।

७) अभिनव वर्तमान से उसका घनिष्ठ संबंध है।

८) आधुनिकता वि-ान से अनुशासित होती है, अर्थात् उसमें विश्लेषण और परीक्षण के बाद चुनाव करने की प्रवृत्ति अंतर्निहित रहती है।

९) आधुनिक होने का अर्थ है अनुशासित रहना, अर्थात् अपने धर्म और कर्तव्य के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण ईमानदारी बरतना।

१०) परम्परा का एक जीवंत पक्ष भी होता है। आज जो नवीन है, वह भी कल परम्परा का रूप धारण करेगा। इस परम्परा की श्रृंखला में सतत् जागरुकता से व्यक्ति की ऐतिहासिक चेतना समृध्द होती है।

1.2. आधुनिकीकरण :

परम्परागत समाज के व्यतीत होकर, विकसित तथा आर्थिक दृष्टि से समृध्द देश का निर्माण आधुनिकीकरण की प्रक्रिया है जो समसामयिक दुनिया में घटती है। इस तरह जब एक

परम्परागत समाज का आधुनिक समाज में संक्रमण होता है तब चेतना में भी रूपांतर होता है। एक विश्वदृष्टिकोण और एक जीवन-दृष्टिकोण समान रूप से विकसित होते हैं। इन दृष्टिकोणों को इतिहास - दार्शनिक एवं समाजशास्त्री संस्कृति के प्रतीकों तथा विचारधारा या विचारदर्शन के रूपों द्वारा उन्मीलित करते हैं। इसलिए आधुनिकीकरण की तकनीकी प्रक्रिया के साथ-ÃÖÖ£Ö 'आधुनिकता' ŸÖ£ÖÖ 'आधुनिक' भी अभ्युदित होते हैं। आधुनिकीकरण के आधार के बिना आधुनिकता एवम् आधुनिक की चर्चा गोरखधंधा होती है।[19]

"…आधुनिकता विचारों की एक अभिवृत्ति है, जिसका सूचक विवेकवाद, धर्म-निरपेक्षता, उदारवाद और व्यक्तिवाद है।"[20] "…आधुनिकीकरण परिवर्तन की एक प्रक्रिया Æ।"[21] जिसका -ुकाव आर्थिक मूल्यों की व्यवस्था की ओर होता है। आधुनिकीकरण का घनिष्ठ संबंध समाज के प्राविधिक और आर्थिक विकास से होता है। आधुनिक युग में विकास के मापदण्ड हैं - आर्थिक मूल्य तथा आर्थिक मूल्यों के आधार पर समाज में उत्पन्न होनेवाले गुणात्मक और संख्यात्मक परिवर्तन। इस प्रकार "विकास वस्तुत: आधुनिकीकरण का कारण और कार्य दोनों है।"[22] प्रत्येक युग में और प्रत्येक समाज में विकास की एक दिशा होती है, इसलिए आधुनिकीकरण के स्तर में भिन्नता भी होती है। इसके अतिरिक्त दृष्टिकोणों एवं मनोवृत्तियों में भी होनेवाले परिवर्तनों की प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहा जाता है।

आधुनिकता और आधुनिकीकरण में अंतर है, कुछ लोग इस को सम-ने में गलती करते Æ, "आधुनिकता वि-ान जनित बुध्दि या मनोवृत्ति को कहते हैं जो तर्काश्रित होती है, आधुनिकीकरण विशेष अर्थों में नगर विकास, औद्योगिक-तकनीकी उन्नति की प्रक्रिया को कहते Æ।"[23] स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया है और उसका आधार औद्योगिक क्रांति है, "औद्योगिक क्रांति के कारण औद्योगीकरण की प्रक्रिया शुरु हुई। इस प्रक्रिया में यंत्रीकरण का महत्वपूर्ण स्थान है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया के साथ स्वभावत: नगरीकरण की प्रक्रिया शुरु होती है। इन दोनों प्रक्रियाओं को समग्र रूप से आधुनिकीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है।"[24]

आधुनिक बनने के लिए आधुनिकीकरण से हो कर गुज़रना होगा। वास्तव में आधुनिकता की तरह ही आधुनिकीकरण की कोई निश्चित परिभाषा देना मुश्किल है। इसे भी गतिशील प्रक्रिया ही कहा जा सकता है।

रामधारी सिंह दिनकर आधुनिकीकरण को सम-ÖÖŸÖ हुए कहते हैं कि "आधुनिकता बुध्दिवादी मनोवृत्ति को कहते हैं। आधुनिकीकरण का अर्थ उद्योग, समृध्दि, सैन्यबल, साक्षरता

और अवकाशहीनता, जितने भी अविकसित देश हैं वे आधुनिक नहीं आधुनिकीकरण की अ ़ लोभ से देख रहे हैं । इस तरह युरोप में पहले आधुनिकता आयी थी । आधुनिकीकरण बाद में प्रकट हुआ । यानी पहले बुध्दिवादी दृष्टिकोण की प्रधानता हुई । वि-ाान उसके बाद बढ़ा, यानि युरोप का मन पहले बदला और शरीर बाद में । अर्थात् मन बदलना आधुनिकता है और शरीर बदलना आधुनिकीकरण । जैसा कि हमने पहले कहा आधुनिकीकरण का संबंध समाज के आर्थिक ढाँचे से होता है जिसमें औद्योगीकरण, यंत्रीकरण, वै-ाानिकीकरण से है ।"[25]

धनंजय वर्मा के अनुसार-"आज आधुनिकीकरण का अर्थ साधारणत: आर्थिक प्रगति और औद्योगिक उन्नति माना जाता है ।"[26]

आधुनिकता की प्राप्ति के बिना आधुनिकीकरण संभव नहीं है । आधुनिकीकरण के कारण उत्पादन क्षेत्र में, मानवीय व्यवहार में परिवर्तन आना आवश्यक है । औद्योगीकरण, यन्त्रीकरण और वै-ाानिकीकरण आधुनिकीकरण के आधार हैं । आगे चलकर हम इस प ़ विस्तार से विवेचन विश्लेषण करेंगे । क्योंकि "आधुनिक प्रक्रिया की गतिमानता का प्रतिफलन तत्व आधुनिकता है । जिसे आधुनिकीकरण से उत्पन्न एवं बोधात्मक सत्ता के रूप में भी देखा जा सकता है ।"[27]

†ाधुनिक काल में आधुनिकीकरण की अवधारणा का केन्द्रबिन्दु है-समस्त मानवीय गतिविधियों के केन्द्र में मनुष्य की स्थापना । नए -ाान का मानव-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस्तेमाल करना । आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और रचनात्मकता को जन्म देता है । नये विचारों और नई शैलियों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है । स्पष्टवादिता के लिए समर्थ बनाता है ।[28] आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से मनुष्य अपनी परम्परागत जीवन पध्दति से मुक्त होकर अधिक संकुल, तांत्रिक, तेज़ गति से चलने वाली पध्दतियों की ओर जाते हैं । इस प्रक्रिया के कारण समाज , संस्कृति तथा व्यक्तित्व में आमूलाग्र परिवर्तन हुए हैं । अत: आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया को समग्रत: सम-ाने के लिए इसके आधार औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा तकनीकीकरण आदि पर भी संक्षेप में विचार करना आवश्यक है ।

१.२.१. औद्योगीकरण :

आधुनिकता के लिए आधुनिकीकरण का पहला और प्रमुख आधार औद्योगीकरण है। पहिए का आविष्कार करना, मानवेतर शक्ति के माध्यम से गतिशील बनाना, पवन चक्की, बिजली, बैटरी आदि आविष्कार औद्योगीकरण के आरंभिक चरण कहे जा सकते हैं। औद्योगीकरण का आरंभ इंग्लैंड में हुआ। धीरे-धीरे पूरा विश्व इसकी चपेट में आ गया। हस्त तथा कुटीर उद्योगों की जगह मशीनों ने ले ली। पदार्थों का उत्पादन फैक्ट्रियों में होने लगा| कृषि के क्षेत्र में बीज बोने तथा फसल काटने के लिए लोहे के हल और मशीनों का उपयोग किया जाने लगा। जिसके कारण फसल में काफी वृध्दि हुई। छोटे किसान इन साधनों को जुटाने में †ÃÖ´ÖÖ£Ö £Ö ÝÖथा वे अपनी खेती-बाड़ी छोड़ कर नगरों में निवास करने लगे। विषम आर्थिक परिस्थितियों के कारण गाँवों के किसान शहरी मजदूरों में परिवर्तित होने लगे। फैक्ट्रियों में मजदूरों का शोषण होने लगा।

औद्योगीकरण के कारण सामाजिक जीवन काफी प्रभावित हुआ और व्यक्ति के जीवन में मशीनों की भूमिका अधिक बढ़ गई। औद्योगीकरण के प्रसार से कृषिव्यवस्था का सामन्ती रूप पूँजीवाद के रूप में परिवर्तित होने लगा।

औद्योगीकरण के कारण उत्पादन में गुणात्मक वृध्दि हुई तथा औद्योगिक देशों की प्रगति आकाश को छूने लगी। फ्रांस, बेल्जियम, जर्मनी आदि देशों ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जो इंग्लैंड को भी एक तरह से चुनौती दे रहे थे। १८०० ई.में अमेरिका में औद्योगीकरण का आरंभ हुआ १८०० ई. के बाद अमेरिका ने सर्वश्रेष्ठ औद्योगिक राष्ट्र का रूप ले लिया।

आधुनिक युग की इस औद्योगिक क्रांति ने और वै-ानिक प्रगति ने कवि की ही नहीं साधारण मनुष्य की संवेदना में भी परिवर्तन कर दिया है। इसी औद्योगीकरण ने आधुनिकीकरण को गति प्रदान की। आधुनिकता में औद्योगीकरण के साथ ही नगरीकरण भी निहित है।

१.२.२ नगरीकरण :

औद्योगीकरण के अंतर्गत ही नगरीकरण भी आता है क्योंकि “औद्योगिक सभ्यता की बुनियाद ‘¿ÖÆü¸ü’ या ‘नगर’ हैं। जिस क्षेत्र की जनसंख्या अधिक होती थी, उसे नगर के रूप में स्वीकार किया जाता था। पाश्चात्य देशों में ‘नगर’ व्यवसाय का केन्द्र था, भारत में व्यवसाय

और संचार सुविधाओं से युक्त स्थल नगर कहे जाते थे । हर औद्योगिक नगर का एक राजनीतिक महत्व होता है । मुख्यत: नगर उद्योग-व्यवसाय और सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र होता है ।[29]

नगरों में गाँव से कहीं अधिक सुख-ÃÖx¾Öधाओं को जुटाया जा सकता है । कृषि-परिवहन की सुलभता एवं प्रगति के अनेक साधन यहाँ उपलब्ध हैं । महानगरों के, नए व्यापारिक केन्द्रों में परिवर्तित होने से विकास की अनेक संभावनाएँ बढ़ गई हैं । एक ओर जहाँ कारखानों-फैक्ट्रियों के जाल बिछाए गए हैं, दूसरी ओर वाणिज्यिक-व्यापारिक विकास ने सीमित अन्तर्देश एवं संरक्षण क्षेत्र की समस्याओं को प्राय: समाप्त-सा कर दिया है । नगर की चकाचौंध से कृषक जीवन काफी प्रभावित हुआ और इस की ओर खिंचता चला गया । परिणामत: गाँव सीमित होते चले गये और नगर ने महानगर में बदलते-²Ö¤»ÖŸÖ †ÖÃÖ-पास की बस्तियों को भी अपने में समेट लिया । इससे परस्पर विभेद एवं विशिष्टता समाप्त हो गई, उँच-नीच के वर्गीय भाव छूट गए, दूसरी ओर सहानुभूति, सा-नेदारी, बिरादरीपन और भावुक लगाव आदि को पूरी तरह समाप्त कर दिया । आलस्य और अवकाश के लिए कोई स्थान नहीं रहा । व्यक्ति-व्यक्ति से दूर होता चला गया ।

इस नगरीय जीवन की निर्मम होड़ से निर्दयी-स्वार्थमुखी दृष्टि, व्यक्तियों में अलगाव, उपेक्षा, कटाव और दुराव की भावना भर गई है । आधुनिकीकरण के तीसरे प्रभाव के रूप में तकनीकीकरण को देखना होगा ।

१.२.३ तकनीकीकरण :

औद्योगिक क्रांति ने मानव को अनेक रूपों में प्रभावित किया । सुख-सुविधा की प्राप्ति के लिए मनुष्य ने अपने यंत्र का अविष्कार किया था । जो समय के साथ तकनीकी में परिवर्तित हो गया । तकनीकी विकास में गुणात्मक वृध्दि ने मनुष्य को भी यांत्रिक बना दिया है । दस साल पहले जो चीज़ बनाई गई वह आज नहीं है । तकनीकी प्रयोगों से उसका रूप आकार ही बदल दिया जा रहा है । दिन-²Ö-दिन तकनीकी सुविधा बढ़ती जा रही है । विकास के नाम पर यंत्र व्यक्ति पर शासन कर रहा है ।

दो विश्वयुध्दों की त्रासदी, भारतीय उपमहाद्वीपों में आधुनिकतम शस्त्रों का उपयोग और उससे उत्पन्न एक त्रासद उपस्थिति, चाहे एक समान न हो, फिर भी इससे पूरी मानवीय जाति और मनुष्य की नियति प्रभावित हुई है।

गंगाप्रसाद विमल लिखÖÿÖ Æü, "तकनीक वास्तव में आधुनिकता की संस्कृति है। तकनीकी विकास का महत्वपूर्ण पक्ष सामाजिक परिवर्तन में एक समृध्दिपरक और सार्थक भूमिका अदा करना है। वह एक प्रकार से परिवर्तन का एजेंट है। समग्र संसार में तकनीकी विकास को इसीलिए स्वीकारा गया है कि यह जन-सामान्य के जीवन स्तर को उँचा उठाने के लिए प्रयत्नशील यंत्रानुशासन है।"[30]

१.३. आधुनिकतावाद :

साहित्य और सिध्दांत के क्षेत्र में आधुनिकता और आधुनिकतावाद शब्द की अनेक परिभाषाओं और व्याख्याओं से ऐसी भ्रमपूर्ण स्थिति का सृजन हुआ है कि जिसमें सृजन और सिध्दांत लगभग भ्रामकता के पर्याय बन गए हैं। ऐसे सृजन और विमर्श का भटकना अप्रत्याशित नहीं लगता। इसका कारण यह है कि दोनों शब्दों का परिवेश एक है। आधुनिकता और आधुनिकतावाद संबंधी अवधारणा का संदर्भ सुनिश्चित न होने के कारण दोनों को एक करके देखा जाता रहा है और दोनों को सामान्य संदर्भ और अर्थ में प्रयोग किया जाता रहा है। ऐसी स्थिति में कभी किसी को 'मूल्य', कभी 'x¾Öx¬Ö', कभी '3ÖÖ¾Ö²ÖÖ¬Ö', कभी 'प्रक्रिया', कभी साहित्य कलागत 'प्रयोग', कभी 'आंदोलन' और कभी 'xÃÖ¬¤ÖÿÖ' मान लिया गया। इसलिए साहित्य, सिध्दांत, आलोचना, समीक्षा और शोध के क्षेत्र में समस्याएँ भी पैदा हुईं और इनकी स्थिति अव्याख्येय बनी रही। जबकि 'आधुनिकÿÖÖ' एक व्यापक अर्थ और प्रकृति को और 'आधुनिकतावाद' साहित्य कलागत आंदोलन की अवधारणात्मक अर्थ, प्रकृति और सिध्दांत को द्योतित करता है। इस तरह पश्चिम में आधुनिकता का आरंभ -ानोदय से और आधुनिकतावाद का आरंभ स्वच्छंदतावाद के बाद से होता है। हिंदी में आधुनिकता का आरंभ हिंदी नवजागरण से और आधुनिकतावाद का आरंभ प्रयोगवाद से होता है।

आधुनिकतावाद या मॉडर्निज़्म (Modernism) से तात्पर्य है ऐसा कोई आन्दोलन जो आज के या वर्तमान मानव मन के आवेगों की अभिव्यक्ति के उद्देश्य से चला हो। '‡•´Ö' ÃÖ

वाद का बोध होता है। २० वीं शताब्दी के अंत में कला के क्षेत्र में एक आन्दोलन चला, जिसने नए सांस्कृतिक मूल्यों का सूत्रपात किया। वास्तव में आधुनिकतावाद का विकास प्राचीनवाद (Classicism) के विरोध में हुआ है। आधुनिकतावाद प्रयोगों पर ज़ोर देता है। उसका उद्देश्य सतही दिखावे के पीछे जो आंतरिक सत्य है उसकी खोज करना है।

मॉडर्निज़्म का उद्भव फ्रांस में हुआ था। यह साहित्यिक कला के क्षेत्र में आन्दोलन था। वहाँ से ये स्पेन पहुँचा और फिर क्रम से इंग्लैंड एवं अमेरिका में।[31] आधुनिकतावादियों में जॉयस (Joyce), यीट्स (Yeats), प्रौस्ट (Proust) और काफ़्का (Kafka) आदि का नाम साहित्यिक क्षेत्र में उल्लेखनीय है। कविता में इलियट (Eliot) तथा पौंड (Pound) का नाम लिया जाता Æ।

"इतिहास से कट कर खड़े होने की कोशिश ही आधुनिकतावाद है।"[32] एक आन्दोलन या प्रवृत्ति के लिए आधुनिकतावाद शब्द का प्रयोग किया जाता है, कलात्मक अभिव्यक्तियाँ जैसे ललितकला, नृत्य, संगीत तथा साहित्यिक कृतियों और सिध्दांतों के संदर्भ में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। समाज में होनेवाले अनेक परिवर्तन विशेष रूप से साहित्य,राजनीति, आर्थिक क्षेत्रों के अनेक परिवर्तन, चिन्तन, तत्वकला और साहित्य में नये प्रयोगों के कारण बने। इसलिए साहित्य एवं कलाओं में आधुनिकतावाद एक महत्वपूर्ण आन्दोलन बन गया। नई संवेदना, अभिव्यंजना के नये रूपों से साहित्य में नवीन शैली तथा प्रवृत्ति सामने आने लगी, जैसे कि प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता आदि आधुनिकतावाद के ही चरण माने जाते हैं। कुछ आलोचक प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग-अलग प्रवृत्ति के रूप में देखते हैं। कुछ का कहना है कि प्रयोगवाद और नयी कविता दो अलग-अलग प्रवृत्तियाँ नहीं बल्कि एक ही प्रवृत्ति का विस्तार है। इस तरह हिन्दी साहित्य जगत में आधुनिकतावाद का जन्म १९४० के आस-पास या द्वितीय विश्वयुध्द के अंत में उत्पन्न नवीन संवेदना और नवीन चिंतन दृष्टि के साथ हुआ।

भारत में आधुनिकतावाद १९५० के बाद चर्चा का विषय बना। अमेरिका में यीट्स की कृतियों तथा युरोप के अस्तित्ववादी चिंतन के लेखकों ज्याँ पाल सार्त्र, अल्बेयर कामू, सेम्यूल बेकेट तथा युनीज अयोनेस्को का प्रभाव हिन्दी आलोचना लेखन पर दिखाई देता है।

१.४. आधुनिकता-²ÖÖ¬Ö :

अपने समग्र इतिहास में दुनिया जिस रफ़्तार से बदलती आयी थी, उससे कई तेज़ी के साथ वह पिछले सौ वर्षों में बदली है। और इस परिवर्तन का सबसे प्रत्यक्ष एवं दर्शनीय प्रमाण नगरों की संख्या, महत्व और उनके आकार का विकास है। नगर पहले भी होते थे, किन्तु उस समय नगरों और ग्रामों की नैतिकता और संस्कृति एक थी। लेकिन पिछले सौ वर्षों में नगरों के भीतर से अनेक महानगर उत्पन्न हो गये और वर्तमान सभ्यता की जो भी विशिष्टताएँ हैं, ये महानगर उनके प्रमुख केन्द्र हो गये। अब महानगरों की सभ्यता और शहरों तथा देहातों की सभ्यता के बीच काफी चौड़ी दरार पड़ गयी है। आधुनिकता-बोध इन्हीं महानगरों में बसनेवाले ´ानीषियों का दृष्टिबोध है, जो ग्रामों और छोटे शहरों में रहनेवालों की सम-ा में कठिनाई से †ÖÜÖ Æ |

आधुनिकता एक बोध-संवेदना के रूप में अभिहित की जाती है, आधुनिकता-²ÖÖ¬Ö कहलाती है। ‘²ÖÖ¬Ö’ यानी ‘ÃÖÖÃÖ’ इसका संबंध विमर्श शक्ति से होता है। जो विवेक या बुध्दि के द्वारा स्थिर
किया जाता है।

प्राचीन अथवा मध्यकालीन से भिन्न, वर्तमान से संपृक्तबोध जो आधुनिक संवेदना से •Ö›Ö Æ†Ö Æ, आधुनिकता-बोध है। मध्यकालीन संवेदना, मध्यकालीन संस्कारों अनुशासनों, रूढ़ियों से युक्त तथा समकालीन परिवेश से बंधी हुई थी। आधुनिक युग में प्रौद्योगीकरण और तकनीक के आधार पर व्यक्ति ने जो सपने सँजोये थे, वे ठोस रूप न लेकर मृगमरीचिका सिध्द हुए। आधुनिक व्यवस्था का स्थाई रूप निराशाजनक सिध्द हुआ। व्यक्ति तकनीकी व्यवस्था का अंग बन कर रह गया। परिणामस्वरुप उसका अपना व्यक्तित्व, उसकी अपनी पहचान खो गई। उस खोई हुई पहचान और खोए हुए व्यक्तित्व की खोज-प्रक्रिया का नाम आधुनिकता है। और इसका एहसास आधुनिकता-बोध है। रमेशकुन्तल मेघ के अनुसार, “Æ´ÖÖ¸ü †ाधुनिकता-बोध की अधिकांश संरचना विदेशों की अस्तित्ववादी सौंदर्यानुभूति और नव्यालोचनावादी साहित्यिक अनुभव से हुई है।”[33]

आधुनिकता-बोध जिसे कहा जाता है, वह मूल्यों के विघटन से उत्पन्न एक ¥ÛÂ™ü Æ जिसमें घबराहट, निराशा, शंका, संत्रास एवम् असुरक्षा का भाव है। जो महानगरीय सभ्यता से अधिक संबध्द है, क्योंकि तकनीकी विकास से नयी-नयी चीज़ों का निर्माण किया गया। “मनुष्य का जीवन औद्योगिक जीवन में परिणत हो गया। इस औद्योगिक जीवन में न केवल

परम्परागत परिवारों के रूप को बदला है, अपितु कहीं-कहीं उसे तोड़ा भी है। मनुष्य के जीवन को नये रूप में जीने की ओर प्रेरित भी किया है। तकनीकी विकास संपन्न जीवन मध्यकालीन जीवन से नितांत भिन्न है।"[34] यह सब आधुनिकता-बोध की देन है। आधुनिकता-²ÖÖ¬Ö ¯Ö¸ विस्तार से चर्चा आगे की जाएगी।

1.5 ˆ¢Ö¸-आधुनिकता :

आधुनिकता आधुनिकतावाद की संस्कृति का अध्ययन है तो उत्तर-आधुनिकता उत्तर आधुनिकतावाद की संस्कृति का अध्ययन है। वास्तव में उत्तर-आधुनिकता, आधुनिकता के बाद का समय है। आधुनिकता से मोहभंग के बाद दिया गया नाम, उत्तर आधुनिकता है। २०वीं शताब्दी में अनेक क्षेत्रों में कई परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों के मूल में कई सिध्दांत तथा विचारधाराएँ, पध्दतियाँ मौजूद हैं। लेकिन यह सिध्दांत या पध्दतियाँ सबकुछ नहीं है। मनुष्य के जीवन में होनेवाले कई परिवर्तन मौलिक एवं महत्वपूर्ण होते हैं। उत्तर-आधुनिकता के संबंध में एक मान्यता यह है कि २०वीं शताब्दी के पूर्वार्ध्द में होने वाले अनेक परिवर्तन तथा सिध्दांत २०वीं शताब्दी के उत्तरार्ध्द में आकर संदेहास्पद हो गये, जिससे आधुनिकता से मोहभंग हो गया और उत्तर आधुनिकता का उद्भव हुआ। दूसरी मान्यता के अनुसार उत्तर-आधुनिकता आधुनिकता के बीच पैदा हुआ वह क्षण है जहाँ आधुनिकता थम जाती है। जनसंचार माध्यमों, सूचना-टेक्नॉलॉजी, आनन्दलिप्सा, उपभोक्तावाद, आक्रामक भौतिकवाद, आर्थिक और सांस्कृतिक सार्वभौमिकता के कारण जो परिवर्तन हुए, वे आधुनिकता के ही नए दौर को प्रतिबिंबित करते हैं। जिसे उत्तर-आधुनिकता का नाम दिया गया है। इस तरह यह कोई आध्यात्मिक चीज़ नहीं ठोस पूँजीवादी अवस्था है। जैसा कि फ्रेडरिक जेम्सन ने "¾Ö¬¤ ¯Ö•Öß¾ÖÖ¤ का सांस्कृतिक तर्क कहा है।"[35]

सॉम्यूर के विचारों को पल्लवित-पुष्पित करते हुए रोलां बार्थ ने १९६८ में अपना प्रसिध्द लेख लिखा '¤ ›£Ö †Ö±ú ¤ †Ö£Ö¸' (रचनाकार का अंत), जिसने कला के क्षेत्र में उत्तर-आधुनिकता की विधिवत शुरुवात की। विचारधारा का अंत, इतिहास का अंत, कलाकार का अंत ! भारत तक इस चिन्तन को आने में पन्द्रह-बीस साल लगे।

^¢Ö¸-आधुनिकता एक संश्लेषण सिध्दांत है। यह एक महत्वपूर्ण बहुविषय शैक्षणिक विकास है। अनेक उत्तर-आधुनिक सिध्दांतवेत्ताओं ने अनेक रुपों में उत्तर-आधुनिकता को व्याख्यायित और परिभाषित किया है। जिसमें केलनर, हार्वे, ल्योटार्ड, बोगार्ड, फ्रेडरिक जेम्सन आदि मुख्य हैं। जैसेकि केलनर के अनुसार '^¢Ö¸-आधुनिकता का कोई एकीकृत सामाजिक सिध्दांत हो ऐसा नहीं है, फिर भी उत्तर-आधुनिकता के एकाधिक विभिन्न सिध्दांतों का ÃÖ´ÖÖ¾Ö¿Ö अधिक है।' उत्तर आधुनिकता के दर्शन, कला, वास्तुकला, साहित्य, फिल्म सामाजिक सिध्दांतों के क्षेत्र में होते हैं। रिट्रिजर कहते हैं कि उत्तर-आधुनिकता के सामाजिक सिध्दांत का संबंध ^¢Ö¸-आधुनिक समाज के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। अधिकांश सिध्दान्तवेत्ता इस तथ्य से सहमत नहीं है कि उत्तर-आधुनिक समाज को निर्माण करनेवाले तत्व कौनसे हैं ? जब उत्तर-आधुनिकता समाज के निर्माण के संबंध में सहमत नहीं है, तब ऐसे समाज के निर्माण का सिध्दांत किस प्रकार बनाया जा सकता है।

अत: स्पष्ट है कि उत्तर- आधुनिकता को पूर्णरूप से व्याख्यायित करना या उसके संबंध में अंतिम रूप से कुछ कहना मुश्किल है। क्योंकि इसके संबंध में काफी विवाद हैं। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उत्तर आधुनिकता आधुनिकता का परिणाम है और उत्तर-आधुनिकता की जो छवि बनती है वह आधुनिकता से नितान्त भिन्न है।

वैश्वीकरण, स्त्री-विमर्श, नारीवाद, दलित-प्रश्न, उत्तर-संरचनावाद, नवमार्क्सवाद, नवव्यवहÖ¸¾ÖÖ¤, ¾Ö¬Ö ¯Ö•Öß¾ÖÖ¤ †Ö×¤ ÃÖ³Öß ^¢Ö¸-आधुनिकता के अंतर्गत ही आते हैं। उत्तर आधुनिकता के दो पहलू हमारे सामने हैं, एक जिसमें हम देखते हैं कि उत्तर-आधुनिकता एक ऐसी विचारधारा है जो भविष्य के बारे में सिध्दांत बनाने का ऐसा प्रयास है जो दर्शन, साहित्य, कला,शिल्पकला आदि से बहुत कुछ ग्रहण कर अपने निश्चित संदर्भ में वस्तुओं को व्यवस्थित करता है। इस सिध्दांत का अविर्भाव विकसित पूँजीवादी देशों की जीवन पध्दति से जुड़ा हुआ है। जो आधुनिक समाज के तथ्य और सिध्दान्तों को ध्वस्त करता है। यह सिध्दांत अभी पूर्ण रूप से हमारे सामने नहीं है, अभी अपने बनने की प्रक्रिया में है। यह उत्तर आधुनिक विश्लेषण का एक पहलू है। इसका दूसरा पहलू पूर्णत: आलोचनात्मक है, कुछ विचारकों का कहना है कि अभी जब भविष्य का समाज बना ही नहीं है तो उस पर आधारित उत्तर-आधुनिकतावाद का सिध्दांत किस तरह बन पाएगा। उनका कहना है कि उत्तर-आधुनिकता एक अराजकता है जो समाज के सदस्यों को बेलगाम छोड़ देती है- जिसके मन में जो जैसा आए वैसा करें। इस समाज

में औद्योगिक उत्पादन उपभोक्तावाद से जुड़ जाता है। मानवीय मूल्य और मानक ताक पर रख ×¤‹ •ÖÖŸÖ Æ †Ö¸ ˆ¢Ö¸-आधुनिकता का रोड-¸Ö»Ö¸ ˆÃÖ ¸Ö¤ŸÖÖ “Ö»ÖÖ •ÖÖŸÖÖ Æ |

इतना तो कहा जा सकता है कि उत्तर-आधुनिकता वह चिंतन एवं लेखन है जो आधुनिकता के बाद विकसित हुआ है। समय के साथ आधुनिकता का रूप बदला, मनुष्य के विचार बदले, संस्कृति, समाज एवं देश बदलती परिस्थितियों से प्रभावित होते रहे। आधुनिक चिंतन एवं दृष्टिकोण में भी गुणात्मक रूप से नवीनता आई। एक तरह से देखा जाए तो द्वितीय विश्वयुध्द के बाद समाज नये सिरे से बनने लगा तब आधुनिकता निरंतर चलने वाली प्रवाहमान चिंतनधारा है। जो १३वीं १४वीं शताब्दी के मूल स्वरूप में परिवर्तन लाती हुई कालांतर में आधुनिक बनी, इसके बाद मानवीय चेतना बदली, बदलती गई और इस तरह आधुनिक, आधुनिकता, आधुनिकीकरण, आधुनिकतावाद, आधुनिकŸÖÖ-²ÖÖ¬Ö †Ö¸ ˆ¢Ö¸-आधुनिकता के ¯Ö ´Ö ¯Öx¸¾Öx ŸÖŸÖ ÆÖŸÖß ¸Æß |

१.६ आधुनिकता का स्वरूप :

आधुनिक तथा आधुनिकता के स्वरूप के संबंध में मत-भिन्नता पाई जाती है। काल-सापेक्ष दृष्टि में हर युग अपने अतीत की अपेक्षा आधुनिक माना जा सकता है। परन्तु यह आधुनिक का नितांत कामचलाऊ अर्थ है। दूसरा मत विचार-Ãāपेक्षता पर बल देता है। “आधुनिकता परिवर्तित भाव-बोध की वह स्थिति है, जिसका प्रादुर्भाव यांत्रिक तथा वै-ाानिक विकास-क्रम के वर्तमान-बिन्दु पर आकर हुआ है।”[36] इसमें संदेह नहीं, वि-ाान के संघÖÖŸÖ ÃÖ आधुनिकता का संक्रमण समाज में तेजी से होने लगा। परन्तु वह वै-ाानिक विकास और उसकी यांत्रिकता में सीमित नहीं कही जा सकती। “‡×ŸÖÆÖÃÖ-वाद के चिंतन में ‘आधुनिक’ एक बौध्दिक ग्रहण है। ‘आधुनिक’ होना केवल आधुनिक मनुष्य का ही एकाधिकार नहीं है। लगभग सभी कालों में आधुनिक मनुष्य (अर्जुन, कौटिल्य, कबीर) भी हुए हैं और इसके पहले भी आधुनिक युगों की कौंध हुई है। (वैशाली के गणराज्य के दिन, समुद्रगुप्त के युग की निर्माण अवधि, संतों का जन-जागरण)”[37] इसलिए आधुनिकता का संबंध वि-ाान की उत्क्रांति से नहीं, मानवी विवेक से है “•Ö²Ö-जब पवित्र चेतना की आस्था को तार्किक चेतना के विवेक ने अपदस्थ किया है, तब-तब आधुनिकता की ¯ÖÏ»Ö×´Ö»ÖÖÆ™ Æ‡ Æ |”[38] “इतिहास से कटकर अथवा

इतिहास को नकार कर आधुनिकता की कल्पना नहीं की जा सकती। आधुनिक मनुष्य का जन्म उस समय हुआ जब वह अपने देशकाल के प्रति-अपने युग और इतिहास के प्रति प्रबुध्द हुआ।"[39]

अत: आधुनिकता को इतिहास की सापेक्षता में ग्रहण किया जा सकता है। अतीत की समकक्षता एवं सापेक्षता में आधुनिकता की व्याख्या स्वाभाविक और उचित है। ऐसा करने में आधुनिकता की कोई निरपेक्ष विशेषताएँ हैं तो वे इस सापेक्ष व्याख्या से तिरोहित नहीं हो जाएँगी, वरन उनको आकलित करने में अंतत: यह सहायक ही सिध्द होंगी। [40] मनुष्य वर्तमान में अतीत के संस्कार और अनागत की कल्पना के साथ ही जीता है। अत: भूत से उच्छिन्न और भविष्यत से पराङ्मुख आधुनिकता की धारणा वाग्विलास मात्र है।[41]

अपने देश-काल के प्रति (युग और इतिहास के प्रति) प्रबुध्दता से ही आधुनिक मनुष्य का जन्म हो गया। उसमें कल्पना और आदर्श का आकर्षण कम हो गया, जीवन-दृष्टि व्यावहारिक एवं यथार्थपरक होने लगी। भावुकता के स्थान पर विवेक का नियंत्रण बढ़ने लगा। वि-ाान के वर्तमान प्रभाव के कारण सामान्य दृष्टिकोण क्रमश: बौध्दिक, वै-ाानिक होने लगा। आधुनिकता में विवेकयुक्त वै-ाानिक दृष्टिकोण का तत्व विद्यमान है। "†Ÿा: आधुनिकता का स्वरूप काल-सापेक्षता तथा विचार-सापेक्षता दोनों की सहायता से सम-ाा जा सकता है। 'आधुनिक' का अर्थ व्यापक और गत्यात्मक ही मानना चाहिए। युगबोध, परम्परा संशोधन, जीवन के वैविध्य की स्पृहा- अपने पर्यावरण के माध्यम से आत्मसिध्दि, विकास की आकांक्षा आदि ही उसके सही लक्षण हैं।"[42]

अपनी गत्यात्मकता में आधुनिकता एक प्रक्रिया है जिसके मूल में प्रश्नचिन्ह की निरंतरता या चिरंतन ×•Ö–ÖÖÃÖÖ ÆÖŸÖß Æ |[43] इसलिए वह एक जीवन-दृष्टि या मूल्य-¥ÛÂ™ Æ | "किसी हद तक समय-सापेक्ष होने पर भी आधुनिकता सबसे पहले एक मूल्य-¥ÛÂ™ Æ †ŸÖ: ˆÃÖ´Ö मत का महत्व है।"[44] यह मूल्य-¥ÛÂ™ ×¾Ö¾Öकपूर्ण दृष्टिकोण से उपजती है, जिसमें आत्म-साध्य की महत्ता है। आत्म-साध्य की यह मूल्यदृष्टि वै-ाानिक युग की विश्लेषण-परीक्षण की पध्दति के अनुकूल है। अत: आधुनिकता का कोई निर्धारित स्वरूप नहीं है| "आधुनिकता एक मनोवृत्ति है जो स्थितियों में प्रतिफलित होती है। विकसनशील संस्कृति के तत्वों के अनुरूप अपने आप को परिष्कृत करते चलना ही आधुनिकता का प्रथम लक्षण है। इस दृष्टि से वह एक गत्यात्मक सत्य और भविष्य में प्रक्षिप्त दृष्टि है।"[45] इस प्रकार आधुनिकता स्वयं मूल्य नहीं है।

वह हमें मूल्यों के प्रति सचेत करती है। इसलिए आधुनिकता को केवल वर्तमानता और सामयिकता में बध्द नहीं किया जा सकता। "प्रत्येक युग में आधुनिकता के सूचक उपकरण ×3ÖÖ®Ö-भिन्न रहे हैं। जो पहले आधुनिक था वह आज नहीं है और जो इस समय आधुनिक है, वह शायद आगे न रह सके। दृष्टि में आधुनिकता का यह विकास भविष्य की संभावनाओं को ध्यान में रखकर होता है। इसलिए समसामयिक और आधुनिक में बराबर अंतर बना रहता है।"[46]

आधुनिकता में उपलब्ध -ाान को पुनर्परीक्षित तथा पुन:शोधित करने की निरंतर प्रक्रिया "Ö»ÖÝÖß Æ | ‡ÃÖ×»Ö‹ "आधुनिकता एक अन्वेषण भी है जो हमें मिथक(myth) से यथार्थता (Reality) की यात्रा का बहिर्बोध भी सम-ÖÖÝÖÖ Æ |"[47]

मानवी जीवन अपूर्ण है। उसका अधूरापन कल्पना तथा आदर्श से भरने की चेष्टा मध्ययुग करता था। परन्तु आधुनिक मानवी जीवन की पीड़ा उसकी यथार्थता में स्वीकार करके उसको व्यक्त करती है। अत: मानवी पीड़ा का आधुनिकता से गहरा संबंध है। "वर्तमान †ाधुनिकता तब तक मात्र सं-ाा है, आयात की एक स्थिति मात्र है जब तक वर्तमान को उसके सारे संदर्भों उसकी समूची ऐतिहासिकता की 'घनीभूत वेदना' में देखकर ही शब्दबध्द किया जाए।"[48] सच्चा आधुनिक मनुष्य वह है, जो रूढ़िग्रस्त चेतना से मुक्त, मानव-मूल्यों के रूप में स्वातंत्र्य के प्रति सजग, अपने भीतर अनारोपित सामाजिक दायित्व का स्वयं अनुभव करने वाला, समाज को समस्त मानवता के हित में परिवर्तित करके नया रूप देने के लिए कृत-संकल्प, कुटिल स्वार्थ-भावना से विरत, मानव-मात्र के प्रति स्वाभाविक सहज अनुभूति से संयुक्त, संकीर्णताओं और कृत्रिम विभाजनों के प्रति लोभ अनुभव करनेवाला, प्रत्येक मनुष्य को जन्मत: समान मानने वाला, मानव व्यक्तित्व को उपेक्षित, निरर्थक और नगण्य सिध्द करनेवाली किसी भी दैवी शक्ति या राजनीतिक सत्ता के आगे न -ाुकने वाला, मनुष्य की अंतरंग वृत्ति के प्रति †ÖÃ£Öावान, प्रत्येक व्यक्ति के स्वाभिमान के प्रति सजग, दृढ़ एवं संगठित अंत:करण संयुक्त, सक्रिय किन्तु अपीड़क, सत्यनिष्ठ तथा विवेकशील होगा।[49]

इस प्रकार आधुनिकता में विवेकशील संस्कृति, मुक्त चेतना, मत तथा निर्णय की अनेकता की स्वीकृति, विविध क्षेत्रों के अनुभवों की स्वयंसिध्दता, धर्म निरपेक्ष नैतिकता, व्यक्ति के निजी जीवन का आदर अभिप्रेत है। जीर्ण-पुरातनता का त्याग, पुरातन का संशोधन-पुनर्मूल्यांकन, वैचित्र्य तथा नवीनता के प्रति आकर्षण उसके अंग हैं। व्यावहारिकता, यथार्थता,

विवेकशीलता,दृष्टिकोण की वै-ानिकता उसकी विशेषताएँ हैं और युग-²ÖÖ-Ö, ¯Ö¸´¯Ö¸Ö-संशोधन, जीवन के वैविध्य स्पृहा, विकास की आकांक्षा उसके लक्षण हैं ।[50] और उनकी तीन शर्तें हैं - एक इतिहास बोध, दूसरी इहलोक में ही कल्याण होने की आस्था और तीसरी व्यक्तिगत कल्याण की जगह सामूहिक कल्याण की एषणा ।[51]

क´Ö»Öश्वर ने आधुनिकता के अंतर्गत निम्न धारणायें समाविष्ट मानी हैं -

"स्वतंत्रता की कामना, प्रजातंत्रवाद, तटस्थता, शांतिपरकता, समाजवाद और सहिष्णुता, जाति-धर्म निरपेक्षता, समानता, स्त्री-पुरुष संबंधों का नया संतुलन, स्वतंत्र इकाई के रूप में स्त्री की स्वीकृति, पारिवारिक विघटन, नई पीढ़ी के व्यक्ति की केन्द्रिय व्यक्ति के रूप में स्थापना, धर्मवादी संस्थाओं का परित्याग, चरित्रनायकों की अनुपस्थिति, साधारण जन की स्वीकृति, निर्णय की स्वतंत्रता, धर्म आचरण की जगह व्यक्तिमूलक नैतिकता का उदय, एक-¤ÃÖ¸ के जीवन में हस्तक्षेप की अनुपस्थिति, तर्कसम्मत निष्कर्षों की स्वीकृति, पुरातन का संशोधन, पुनर्मूल्यांकन और साहसपूर्ण परित्याग, अप्राकृतिक मृत्यु के प्रति प्रतिवाद, वर्तमान की स्वीकृति और अपनी नवनिर्मित सामाजिक, राजनीतिक संस्थाओं के प्रति 'कन्सर्न', अपने समय की विकट वास्तविकता को स्वीकार करने का साहस, किसी भी तरह के अंधानुकरण के प्रति विराग, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय परिवर्तनों के प्रति सतत जागरूकता और सांस्कृतिक इकाई के रूप में मनुष्य की प्रतिष्ठा ।"[52]

१.७ वर्तमान आधुनिकता का प्रारंभ :

¯Ö¦Æ¾Öà-सोलहवीं शती में योरोप में वि-ान का अभूतपूर्व उत्थान हुआ, जिससे एक बारगी समस्त पुराने विश्वास हिल उठे । पदार्थ की सत्यता प्रमाणित होने से धर्म-‡À¾Ö¸Ö×¤ आस्थाएँ उठ गई और मनुष्य शरीर तथा उसके परिवेश-प्रकृति और समाज की प्रधानता हो गई। व्यक्ति के पक्ष में धर्म-ईश्वराधिष्ठित मूल्यों का कोई मूल्य नहीं रहा और उनके स्थान पर नीति-निरपेक्ष स्वतंत्रता, व्यक्तिवाद, सुखवाद, भोगवाद, उपयोगवाद नये मूल्य बन गए । मानवी बुध्दि की महत्ता स्वीकार की गई । भौतिक क्षेत्र में मार्क्सवाद, पूँजीवाद, मानवतावाद और ¯Ö•ÖÖŸÖ¡Ö ´ूल्य बन गए । आर्थिक क्षेत्र में वि-ान की उन्नति के फलस्वरूप औद्योगीकरण स्वीकार किया गया । परन्तु पूँजीवादी विचारधारा उसकी स्वतंत्र व्यवस्था पर, तो मार्क्सवादी

विचारधारा उसके राष्ट्रीयकरण पर ज़ोर देती थी। इन मूल्यों में विविधता थी तो विरोध भी था। प्रत्येक मूल्य एकांतिक था, इसलिए उनमें परस्पर संघर्ष था। परन्तु इस वैचारिक संघर्ष में ही उदारतावादी ऐतिहासिक दृष्टिकोण तथा रिनेसाँ(पुनर्जागरण या प्रबोध-युग) का जन्म हो गया।

"रिनेसाँ में देवताओं को अपदस्थ करके मनुष्य की प्रतिष्ठा हुई। यह मनुष्य एक परिपूर्ण (Perfect) मनुष्य एवं अति अमानवीय (Superhuman) मनुष्य था। इस मनुष्य की स¾ÖÁÖÂŠ ^¯Ö»ÖÛ²Ö -Ö´Ö-निरपेक्ष विचार-स्वातंत्र्य मानी गई। ऐसा 'मनुष्य' और उसका ऐसा '^®ÖŸÖ' -ान विकसित होकर मानवतावाद में परिष्कृत हुआ। अब पवित्र सत्य के बजाय तर्कशीलपूर्ण सत्य मनुष्य के संबंधों के निष्कर्ष बने। फलत: मानवीय इतिहास-रचना की इहलौकिक बहिर्मुखी और सौंदर्यतात्विक जीवन-दृष्टि का विकास हुआ, जिसके मूल में मानवतावादी चिंतन था।"[53] रिनेसाँ में मनुष्य की चिंतनात्मक प्र-ÖÖ, प्रयोगशक्ति और विचार-स्वातंत्र्य को आंदोलित होना ¯Ö›Ö | -Ö´Ö-निरपेक्ष संस्कृति की नींव पड़ी, जिसके फलस्वरुप नगर-संस्कृति और राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। औद्योगीकरण की उन्नति के कारण व्यापार की वृध्दि हुई और पूँजीवादी वर्ग का उदय हुआ। रिनेसाँ की प्रमुख उपलब्धियों में- मनुष्य सृष्टि का केन्द्र बना, यथार्थोन्मुख आदर्शवादी ऐतिहासिक दृष्टि का विकास हुआ और धर्म-निरपेक्ष मानवतावाद की स्थापना हुई। और इस प्रकार रिनेसाँ के साथ आधुनिक युग का प्रारंभ हुआ।

१८वीं शताब्दी में इंग्लैड की औद्योगिक क्रांति तथा फ्रांस की प्रजातांत्रिक बूर्ज्वा क्रांति हुई और रिनेसाँ-युग ढह गया। आधुनिक युग वर्तमान युग में परिवर्तित हुआ। आधुनिकता के इस द्वितीय चरण में मनुष्य का स्थान व्यक्ति ने ले लिया। रिनेसाँ में मनुष्यों की समानता की स्वीकृति थी, परन्तु वर्तमान-युग में प्राकृतिक और स्वतंत्र मनुष्य की कल्पना स्वीकृत हुई। मनुष्यों की असमानता को स्वाभाविक माना गया। इस प्रकार व्यक्तिवाद का उदय हो गया। इसी व्यक्तिवाद का विकास पूँजीवाद में हो गया। पूँजीवाद ने पुराने सामंतवाद तथा रूढ़िप्रिय धर्म का अंत कर दिया। मुक्त व्यापार और मुक्त पूँजी से साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद राजनीतिक क्षेत्र में आ गया और व्यक्ति के पक्ष में स्वच्छंदतावाद आ गया। इस तथ्य का ^¤‘ाटन हुआ कि सर्वसाधारण ही इतिहास का निर्माता होता है। मानवी इतिहास की रोमांटिक और जीवनचक्र परक व्याख्याएँ प्रस्तुत की गईं।

रिनेसाँ में परिपूर्ण और अति अमानवीय मानव की जो परिकल्पना की थी वह कोई ¾Ö-ानिक परिकल्पना नहीं थी। वि-ान के द्वारा प्रकृति पर विजय पाने में मनुष्य को जो प्रारंभिक

अभूतपूर्व सफलता मिली थी उसी में मनुष्य की सर्वशक्ति मानवता की परिकल्पना उभ¸ß £Öß | परन्तु द्वितीय चरण में वि-ाान की सहायता से यंत्र और टेक्नॉलॉजी का विकास हुआ, जिसके फलस्वरूप औद्योगीकरण और शस्त्रास्त्रों की निर्मिति हुई। औद्योगीकरण से आर्थिक गुलामी और शस्त्रास्त्रों से राजनीतिक गुलामी लादी जाने लगी। युध्द, रक्तपात,शोषण और गुलामी से रिनेसाँ का सर्वसमर्थ महामानव लघु और भयभीत मानव बन गया। औद्योगीकरण और नगरीकरण से परिवार और समाज बिखरने लगा और मूल्यों का विघटन होने लगा। मानवी संस्कृति की उन्नति पर प्रश्नचिन्ह लग गया और बुध्दिविरोधीनी विचारधाराएँ पनपने लगीं। अब तक वि-ाान मानता था कि प्रकृति में एक सुनिश्चित गति है। परन्तु सापेक्षितता-×ÃÖ¬¤ÖÝÖ और क्वांटम फिजिक्स ने प्रकृति को अनिश्चित घोषित किया। इससे अव्यवस्था, अनिर्णय और शंकालुता से लघु मानव भर गया। वै-ाानिक विकास से सामान्य मूल्य अस्थिर हो ही गए, साथ Æß ÃÖÖ£Ö ×¾Ö-ाान के मूलाधार भी अस्थिर हो उठे। परिणामस्वरूप फ्रायडवाद, डार्विनवाद, वर्गसाँ का जिजीविषावाद और अतित्ववाद आदि विचारधाराएँ उभरीं। सामाजिक दृष्टि से मनुष्य अकेला बन गया, उसका व्यक्तित्व संकट में पड़ गया।

द्वितीय महायुध्द तक यह संदेहात्मक स्थिति गहरी बनती गई और द्वितीय महायुध्द ने मानव-जीवन को एक बार फिर -ाक-ाोर डाला। टेक्नॉलॉजी का अभूतपूर्व विकास हो गया। यंत्र और औद्योगिक समाज ने व्यक्ति, समाज , मनुष्य और प्रकृति को ही तोड़ डाला। युध्द, सैनिकीशक्ति संगठन, पूँजीवादी तथा समाजवादी व्यवस्था का द्वंद्व-मानवी टूटन को असह्य बनाने लगी। प्रजातंत्र, स्वतंत्रता, समाजवाद, राष्ट्रीयता और अंतर्राष्ट्रीयतÖ ÃÖ²Ö ³Ö´Ö ´ÖÖ¡Ö प्रतीत होने लगे। वि-ाान द्वारा निर्मित गति से प्रादेशिक सीमाएँ टूट गईं, वि-ाान द्वारा उपस्थित विनाश से मानव सृष्टि के संपूर्ण संहार का भय छा गया। मानवप्राणी क्षुद्र बन गया। जैविक धरातल पर मनोविश्लेषणशास्त्र के सिध्दांतों से मनुष्य में चेतना प्रवाह की निरंतरता सिध्द हो गई और भावनात्मक तथा वैचारिक प्रत्ययों का बिखराव हो गया। परिणामस्वरूप आदर्श ध्वस्त हो गए, तर्क और बुध्दि का खण्डन किया गया और वर्तमान क्षण की महत्ता बढ़ गई। चिंता और अनवरत चिंताग्रस्तता से समसामयिक युग ग्रस्त बन गया और मनुष्य का अस्तित्व अरक्षित हो गया।

१.८ भारत में आधुनिकता :

3Öारत में आधुनिकता का संक्रमण विदेशी शासन के कारण होने लगा। "लम्बी किन्तु ह्रासगत सांस्कृतिक परम्परावाली एक वृध्द विश्रृंखल, वर्तमान दैन्य और भविष्यत् अनिश्चित के कारण अतीतोन्मुख जर्जर जाति को एक मिश्र संस्कृति और तरुण परम्परावाली किन्तु समृध्द जाति की आत्मविश्वासभरी भविष्योन्मुखता ने उसका सच्चा रूप उघाड़कर दिखा दिया। इस मार्मिक आघात से भारतीय समाज तिलमिला उठा, साथ ही उसे एक नई दृष्टि मिली, अपने ही संबंध में उसमें एक नया और तीव्र जि-ÖÖÑÖÖ-भाव उत्पन्न हुआ। यह जि-ाासा भी लौकिक थी और इसके उत्तर भी लौकिक ही हो सकते थे।"[54] अंग्रेज़ों के भारत आने पर भारतीय चिंतन को नई दिशा मिली। यह नई दिशा ईसाई धर्म के कारण नहीं, बल्कि अंग्रेज़ों द्वारा लाई गई ×¾Ö-ाान-प्रेरित जीवन-¥ÛÂ™ü ÃÖ ×´Ö»Ößü £Öß | "भारतीय चिंतन को पश्चिम की ओर खींचनेवाला ÃÖ²ÖÃÖ ÃÖ¿ÖŒÖŸÖ ÃÖ¡Ö ‡ÃÖÖ‡ धर्म नहीं था। सबसे गहरा प्रभाव वै-ाानिक दृष्टि ने और सामाजिक जीवन-दर्शन, कला, संस्कृति और अध्ययन में उस दृष्टि के विविध रूपों ने डाला है।"[55] धर्म के क्षेत्र में भारत को ईसाई धर्म से लेने योग्य शायद कुछ नहीं था। परन्तु अंग्रेज़ जो वि-ाान ले आए थे, उससे भारतीय चिंतन बड़ा प्रभावित हुआ। "गांधीजी को छोड़कर आधुनिक भारत के सभी प्रमुख चिंतकों को वि-ाान का, उसके सैध्दांतिक तथा तकनीकी दोनों पक्षों का, बड़ा आकर्षण रहा Æ |"[56] ×¾Ö-ाान के प्रति यह आकर्षण होते हुए भी भारतीय चिंतकों ने पश्चिमी भौतिकवाद की तीव्र निंदा की है। उच्चतर -ाान और मानवीय कल्याण के साधन के रूप ´Ö ŸÖÖ ×¾Ö-ाान का स्वागत किया परन्तु अपने मूलभूत आदर्शवादी दृष्टिकोण का त्याग नहीं किया।[57]

पश्चिम में जो बौध्दिक आंदोलन हुए, वे सब धर्म के विरोध में हुए और धर्म तथा बौध्दिक आंदोलनों में तीव्र संघर्ष हुआ। परन्तु भारत में यह बात देखी नहीं जाती। यहाँ वि-ाान के कारण जो प्रबुध्दता आ गई उसमें धर्म का विरोध नहीं पाया जाता। इसका कारण परम्परा को देखने की भारतीय दृष्टि है। "यदि हम अपने युग के प्रमुख चिंतकों के योगदान को उसकी समग्रता में देखें, तो हम यह कहने को बाध्य होंगे कि उन्होंने परम्परा की व्याख्या किसी अविनाशी तत्व के रूप में नहीं, बल्कि ऐसे तत्व के रूप में की है जिसका नवीनतम अनुभव के आधार पर निरंतर मूल्यांकन करते रहना आवश्यक है।"[58] यहाँ के चिंतकों ने आधुनिक युग में भी धर्म को अत्यधिक महत्व दिया है। राजा राममोहन राय से लेकर डॉ.राधाकृष्णन तक सभी मानते रहे कि भारत का कोई भी बौध्दिक पुनरुत्थान धर्म से हटकर बहुत दूर तक नहीं जा

सकेगा ।[59] इसलिए पश्चिम में बौध्दिक क्रांतियाँ आम तौर पर धर्म के विरोध में हुई हैं। पर ³ÖÖ¸त में आधुनिक प्रबुध्दता का प्रत्येक पक्ष और उसे अभिव्यक्त करनेवाला प्रत्येक आन्दोलन धार्मिक पुनर्निर्माण के द्वारा समाज को फिर से प्राणवान बनाने के विचार पर आधारित रहा Æ ।[60]

‡ÃÖ×»Ö‹ ³ÖÖ¸ŸÖ ´Ö नवोत्थान का जो आन्दोलन निर्माण हुआ उसका लक्ष्य अपनी परम्परा और अपने विश्वासों का त्याग नहीं था, बल्कि पश्चिम की वै-ııानिक विशिष्टताओं के साथ उनका सामंजस्य बिठाना था ।[61] अब तक धर्म अपने आप में ही पूर्ण सम-ıı जाता था। अब उसकी जाँच सामाजिकता की कसौटी पर की जाने लगी। वेदान्त का ही आधार लेकर जीवनोन्मुखता, संसार की सत्यता, शूद्रों के लिए गौरव-मार्ग, नारी की मुक्ति और श्रेष्ठता तथÖ ×¾ÖÀ¾Ö-मानवता की व्याख्याएँ की गईं। "आर्य समाज और बह्म समाज दोनों उभय क्षेत्रीय आन्दोलन थे, उनका धार्मिक पक्ष भी नगण्य नहीं था, पर विशेष महत्व उनकी सामाजिक भावना का ही था। उनका धार्मिक आग्रह (¾ÖÆ ²ÖÖŸÖ ²ÖÉ-समाज की अपेक्षा आर्य-समाज के विषय में और अधिक सच है) सुधार द्वारा आत्मरक्षा का था, उनका सामाजिक आग्रह एक स्वस्थतर संगठन का था। दोनों ही क्षेत्रों में रूढ़ि-भार से मुक्ति का प्रयत्न था।"[62]

भारत में आधुनिक युग का प्रारंभ एक दृष्टि से अंग्रेज़ों के यहाँ आने से लेकर- ‡Ã™ इण्डिया कम्पनी से लेकर माना जा सकता है। जिसके फलस्वरूप १९वीं शती के प्रारंभ में यहाँ पुनर्जागरण आ गया। सन १८५७ ई. के बाद आधुनिक भारत की रूपरेखा प्रस्फुटित होने लगी ।[63] और सन १९४७ ई. से लेकर वह समसामयिकता का दावेदार हो गया। "³ÖÖ¸ŸÖ ´Ö रिनेसाँ से लेकर आर्थिक क्रांति तक का कालखंड बहुŸÖ ”Ö™Ö ¸ÆÖ Æ - लगभग डेढ़ सौ वर्षों का। इसलिए इस छोटी अवधि में ही आधुनिक-वर्तमान-समसामयिक तीनों समय घनीभूत हुए हैं ।"[64] पश्चिम में आधुनिकता एक दीर्घकाल में (१५ वीं शताब्दी से) क्रमशः विक×ÃÖŸÖ ÆÖŸÖß Æ‡ पाई जाती है। उसकी तुलना में भारत की आधुनिकता को अपनाने के लिए एक छोटी अवधि ही मिली है। इसलिए यहाँ "१९ वीं शताब्दी के प्रारभं से लेकर २० वीं शताब्दी के मध्यकाल तक का युग उस दीर्घ युग की तुलना में, जिससे प्राचीन चिंतन के लेखकों को उल-ıना पड़ता है, कहीं छोटे होते हुए भी, इतिहास का अत्यंत घटना बहुल और जटिलतापुर्ण युग है। वह ऐसा युग है जिसमें जीवन और चिंतन की गति प्रत्येक दशाब्दि में तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी, जिसमें प्रभावों की विविधता का कोई अंत नहीं।"[65]

इस प्रकार भारत में आधुनिकता का संक्रमण होता आया है। उसे विदेशी प्रभाव मानक¸ टालना संभव नहीं है। यदि वह विदेशी प्रभाव है तो उसका श्रेय केवल पश्चिम को ही नहीं दिया जा सकता। प्रभाव करने वाले के साथ प्रभाव ग्रहण करने वाले की क्षमता भी उसमें होती है। आधुनिकता कोई आयात-निर्यात की वस्तु नहीं है। परंतु आज के युग में अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के प्रभाव से कोई राष्ट्र अछूता नहीं रह सकता। पश्चिम ने अपने परिवेश में उसे पाया है †Ö¸ हम उसे अपने परिवेश में प्राप्त कर रहे हैं।

आधुनिकता आधुनिकीकरण से भिन्न है। इसलिए उद्योग वृध्दि यातायात के द्रुतगामी साधनों की विपुलता, जीवनोपयोगी वस्तुओं की समृध्दि, उत्पादन वृध्दि, सामाजिक जीवन में गति, वेशभूषा में चुस्ती आदि आधुनिकीकरण से संबध्द बातें हैं। इनका आधुनिकता से कोई संबंध नहीं। इनके होते हुए भी कोई समाज अनाधुनिक हो सकता है। और इनके अभाव में भी कोई समाज आधुनिक हो सकता है। क्योंकि वह एक जीवन-¥ÛÂ™ Æ | "पूरा का पूरा समाज आधुनिक नहीं हो पाता, कुछ अग्रणी संवेदना वाले भविष्य-दृष्टा आधुनिकता की ओर उन्मुख रहते हैं। अत: आधुनिकता वर्तमान के संदर्भ में भविष्योन्मुख दृष्टि है।"[66] वह एक जड़ स्थिति न होकर स्वचेतन प्रक्रिया है। "आधुनिकता एक जड़ स्थिति न होकर विकास की स्थिति है। उसकी प्रकृति सदैव गत्यात्मक रहती है। नवीन परिस्थितियों के संदर्भ में अपने आपका संस्कार करना ही आधुनिकता है। संस्कार करने की यह सचेतन प्रक्रिया आरोपित न होकर सहज स्वाभाविक होती है। आधुनिकता की स्थिति में बाह्य प्रभावों का मिश्रण भी रहता है, परंतु यह मिश्रण सजग होते हुए भी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल अधिक होता है। आधुनिकता संस्कृति की ग्रहणशीलता तथा विकासोन्मुखता की परिचायक दृष्टि है, इसीलिए वह समूची जीवन-व्यवस्था को प्रभावित करती है, उसके किन्हीं खण्ड विशेष को नहीं। यह दूसरी बात है कि संस्कृति के किसी विशिष्ट अंश में दूसरे अंश की अपेक्षा आधुनिकता का प्रवेश शीघ्रतर हो •ÖÖ< |"[67]

स्पष्ट है कि भारतीय आधुनिकता को केवल पश्चिमी प्रभाव मानना अनुचित है। वास्तव में भारतीय आधुनिकता पश्चिम की वै-ज्ञानिक विशिष्टताओं के साथ अपनी परंपरा और अपने विश्वासों का सामंजस्य बिठाना है। भारतीय संदर्भ में आधुनिकता को अनेक दृष्टियों में देखा गया है। वस्तुत: भारतीय बुद्धिजीवियों ने अपनी आशाओं, सीमाओं, परंपराओं, आकांक्षाओं के अनुरूप आधुनिकता बोध को पहचानने का प्रयत्न किया है।

१.९ आधुनिकता और साहित्य :

आधुनिकता संस्कार करने की स्वचेतन सहज स्वाभाविक प्रक्रिया होने से प्रत्येक युग पर उसका प्रभाव पड़ता रहता है, जिसके कारण युग-बोध बदलने लगता है। ऐसी अवस्था में साहित्य का मूल्यांकन बदले हुए संदर्भ में होने लगता है। साहित्यकार जब अपने वर्तमान से ˆ»Ö-राने लगता है तब उसे पूर्ववर्ती साहित्य नई परिस्थितियों में अपूर्ण लगता है। प्रत्येक युग की यही कहानी है, पर "आज का लेखक अपेक्षतया अधिक चेतन है और इसीलिए परिस्थिति के प्रभावों को अधिक तेजी से और अधिक मात्रा में ग्रहण करता है।"[68] आधुनिक युग का लेखक आधुनिकता की चुनौती को अपने परिवेश में स्वीकारता है। "आधुनिकता के मूल में प्रश्नचिह्न की निंरतरता है जिसे कवि हर पुराने-नये मूल्य पर लगाने के लिए बाधित हो रहा है। यह निंरतरता वै-ानिक दृष्टि का परिणाम है, और ऐतिहासिकता की देन है।"[69]

×¾Ö-ान और यंत्र के विकास के कारण १९वीं शताब्दी के बाद जीवन की परिस्थितियाँ तेजी से बदलने लगीं। तेजी से बदलते हुए परिवेश के साथ मनुष्य ने अपनी भावनाओं और प्रतिक्रियाओं में भी परिवर्तन अनुभव किया जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य में होने लगी। "प्रत्येक युग अपने समय में आधुनिक युग रहा है, लेकिन शायद कोई भी युग अपने आधुनिक होने के प्रति इतना सचेत नहीं रहा है जितना कि वर्तमान युगÖ।"[70] इसका कारण है संवेदना का परिवर्तन। साहित्य-सृजन के मूल में जो संवेदना होती है जिसे साहित्य-बोध या व्यापक स्तर पर कालबोध का नाम दिया गया है वह वास्तव में सांस्कृतिक-²ÖÖ¬Ö ÆÖ Æ †ौर इसलिए संस्कृति के ÃÖÖ£Ö ²Ö¤»ÖŸÖÖ ¸ÆŸÖÖ Æ।[71] कलाओं में बोध अथवा ग्राह्यता का प्रश्न सदा ही रहा है, पर यह प्रश्न आज के उल-ो हुए जीवन और तेजी से बदलते हुए मान-मूल्यों में और भी कठिन हो उठÖ Æ।

प्रत्येक युग में श्रेष्ठ प्रतिमाएँ नये जीवन-स्पंदनों की आभिव्यक्ति के लिए परम्परा को असमर्थ पाती हैं तब वे स्वयं नये मूल्यों की तलाश करती हैं और उन्हें नये माध्यमों से व्यक्त करने का प्रयास करती हैं। परंतु नई चेतना मनुष्य की शाश्वत भावनाओं का अथवा अनुभूतियों का खण्डन नहीं करती, बल्कि अपरीक्षित अथवा अर्ध्दपरीक्षित पुराने विश्वासों का खण्डन करती है जो पुरानी पीढ़ी ने प्राप्त किए होंगÖ।[72] यदि आधुनिकता को सापेक्षिक मानना ज़रुरी हो तो

उसे देश या काल की अपेक्षा अनुभूति से सम्बध्द करना उचित होगा ।[73] नई पीढ़ी के कवि निराशा और अवसाद को ही आधुनिकता या यथार्थ-बोध के लक्षण मान लेते हैं । डॉ.नगेन्द्र स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि "तथाकथित 'यथार्थ-²ÖÖ-Ö' या 'आधुनिकता' कला का आधार नहीं है ।कहने का अभिप्राय यह है कि युग-बोध को आधुनिकता का लक्षण मानना तो उचित है, किंतु निराशा और अवसाद को ही आज के युग-बोध का लक्षण मान लेना उचित नहीं है ।[74] इसीलिए डॉ.देवराज कहते हैं- "आधुनिकता काव्य का युग है भी और नहीं भी । ..... काव्य-साहित्य अपनी जिन विशेषताओं से अमरत्व का अधिकारी बनता है, उनमें आधुनिकता की गिनती नहीं होती ।"[75] वे आधुनिक कलाकार उसे मानते हैं "जिसका जगद्‌बोध आधुनिक है और जो उस बोध के आलोक में नई मूल्य-चेतना का विकास करने के लिए उत्सुक व तत्पर है ।"[76]

नया -गान या वि-गान कृति की कसौटी नहीं बन सकता । "-गान-×¾Ö-गान कृति क्यों इस तरह है और क्यों इस तरह नहीं है बता सकता है, लेकिन यह क्या-कैसे है यह बताने के काबिल नहीं है । इसमें 'क्यों' सहायक कम और बाधक अधिक बनकर आता है । बल प्राय: 'क्यों' पर दिया जाता रहा है । इस तरह आरोपित कसौटियों को परखा गया है तो मूल्यांकन कृति विशेष से दूर और आलोचक के निकट होता गया है, वस्तुनिष्ठ होने के बजाय आत्मनिष्ठ होता गया है ।"[77] इसलिए डॉ.नगेंद्र आधुनिकता को काव्य के मूल्य के रूप में नहीं, सर्जना की विधि के रूप में स्वीकारत Æ - "आधुनिकता की चेतना जीवन की भाँति साहित्य-सर्जना की विधि का ही अंग है और यह चेतना जितनी प्रच्छन्न तथा अंतर्व्याप्त रहेगी उतनी ही उपयोगी होगी । फिर भी यह विधि ही रहेगी और विधि के रूप में इसका अपना महत्व भी रहेगा, पर सच्चे अर्थ में मूल्य यह नहीं बन सकती ।"[78] डॉ.देवराज उसे रचना को अनुप्राणित करने वाले तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं जो जीवन-दृष्टि का गुण है 'विषय-¾ÖÃŸÖ' का नहीं ।[79] डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी उसे साहित्य को संस्कार देनेवाले तत्व के रूप में देखते हैं - "साहित्य व्यक्ति के माध्यम से निरंतर विकासमान साधारणीभूत मानव-धर्म की आराधना और उपलब्धि है । आधुनिकता उसके प्रतीयमान रूप को स्पर्श करती है, माँजती है, खरोंचती है, उसके अंतर्निहित स्थिर और विकासमान धर्म को नही ।"[80] प्रारंभिक काल से लेकर आज तक कला या साहित्य मानवीयता के बृहत्तर आयामों के शोध में संलग्न है ।

आधुनिकता को प्रक्रिया न मानकर मूल्य मानने की भूल प्राय: की जाती है , जिसके कारण हर समय नये मानदण्ड ढूँढे जाते हैं और कुछ समय बाद वे अधूरे पड़ जाते हैं। "मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद, सापेक्षवाद, -ाानवाद, वि-ाानवाद-ÃÖ²Ö ¾ÖÖ¤ü †¬Ö¸ü जवाब सिध्द हुए हैं। इसलिए इनके पहले या 'नव' जोड़ना पड़ा है या 'नया' नव-´ÖÖŒÃÖ¾ÖÖ¤ü, नव-आस्तित्ववाद, नव-फ्रायडवाद, नव--ाान-×¾Ö-ाानवाद। यही स्थिति साहित्यिक आन्दोलनों की Æü×जनके मूल में आधुनिकता की चुनौती है और यह एक प्रक्रिया है। नव-स्वच्छंदतावाद, नव-यथार्थवाद, नई कविता, नई कहानी, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद आदि आधुनिकता की चुनौती का परिणाम हैं। यदि आधुनिकता को एक प्रक्रिया के रूप में आँका गया होता तो इन परिणामों की शायद आवश्यकता न पड़ती।"[81] अत: आधुनिकता का साहित्य से संबंध है, उसका प्रभाव अनिवार्यत: साहित्य पर होता है। परंतु वह साहित्य में मूल्य प्रक्रिया है मूल्य दृष्टि है।

१.१० आधुनिकता-बोध: अर्थ एवं प्रकृति :

आधुनिकता-बोध को शब्दार्थ के विचार से विवेचित करें तो आधुनिक शब्द 'अधुना' ´Ö 'इक' प्रत्यय के संयोग स्वरूप बना है और अधुना का अर्थ होता है - 'इस समय' | †£ÖÖÝÖ •ÖÖ 'इस समय' है वह आधुनिक है। एक और तरह से कहा जाए तो 'आधुनिकता' शब्द की व्युत्पत्ति आधुनिक शब्द से हुई है जिसको अंग्रेज़ी के मॉडर्न (Modern) शब्द से समीकृत किया जाता है। मॉडर्न (Modern) शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के मोडो (Modo) शब्द से हुई है जिसका अर्थ है-प्रचलन। इस प्रकार जो वर्तमान युग में प्रचलन में है, केवल उसे ही आधुनिक नहीं माना जा सकता क्योंकि 'इस समय' †Ö¸ü 'प्रचलन' ´Ö ³Öß ²ÖÆüÝÖ-सी बातें मध्यकालीन हो सकती हैं।

'²ÖÖ¬Ö' शब्द का अर्थ है-जानना। '²ÖÖ¬Ö' शब्द व्यापक चेतना का वाहक है। इसे हम स्वयं को और अपने परिपार्श्व को सम-ाने तथा उसकी वस्तुस्थिति के मूल्यांकन की शक्ति भी कह सकते हैं।

'आधुनिकता-²ÖÖ¬Ö' को परिभाषित करने के कार्य को प्राय: सभी विद्वानों ने कठिन माना Æü | Æü´Ö ³Öß ‡ÃÖÃÖ ÃÖÆü´ात हैं। फिर भी हम इसे परिभाषित करने का प्रयत्न करेंगे। आधुनिकता-बोध को कुछ विद्वानों ने एक जीवन दृष्टि के रूप में परिभाषित किया है तो कुछ ने

जीवन मूल्य के रूप में । कुछ इसें समय-सापेक्ष मानते हैं तो कुछ इसे जीवंत प्रक्रिया । आधुनिकता-बोध का एक पक्ष जहाँ बिलकुल आत्मपरक और आत्मकेन्द्रित है तो वहीं उसका दूसरा पक्ष समाजोन्मुखी और प्रगतिशीलता का है।

†ŸÖ<¾Ö 'आधुनिकता-²ÖÖ¬Ö' ÃÖ दो प्रधान अर्थ ध्वनित होते हैं । प्रथमत: तो यह कि आधुनिकता एक जीवन दृष्टि है जिसके केन्द्र में मानव है और जिसके कारण यह मानवीय भाव-बोध से संचालित है । द्वितीयत: आधुनिकता एक सामाजिक मूल्य के रूप में सामूहिक मानव मुक्ति का प्रयास है । इस प्रयास में आधुनिकता लोकोत्तर बातों पर बल न देकर एकदम ईहात्मक दृष्टि से किसी विषय या वस्तु या फिर समस्या को अपनाने, सम-ाने और सुल-Öाने का प्रयास है । अपने आवश्यक रूप में आधुनिकता वर्तमान से जुड़ कर भी परम्परा से चली आ रही बातों की बिलकुल विरोधिनी नहीं है । अपितु यह देशकाल व्यापी व्यापक सांस्कृतिक धरोहर एवं ¯Ö¸´¯Ö¸ा के स्रोत से अपनी संजीवनी को ग्रहण करते हुए चलती है । बस, शर्त यह है कि ये बातें व्यष्टि एवं समष्टि के विरोध में न जायें । इसी अर्थ में "आधुनिकता एक प्रश्नाकुल मानसिकता है •ÖÖ Æ¸ ²Ö¬Ößß-बंधायी व्यवस्था या मर्यादा या धारणा को तोड़ती है । इसे चरम निरपेक्ष नहीं माना जा सकता । यह मुख्य रूप से ऐसी मानसिकता है जो किसी एक मूल धारणा या सिध्दांत को स्वीकारने से पूर्व उसे जाँचने-¯Ö>ŸÖÖ»ाने पर बल देती है।"[82]

स्पष्ट है कि आधुनिकता ने मनुष्य को एक तार्किक, संतुलित एवं स्वतंत्र दृष्टि प्रदान की है क्योंकि इसके बिना किसी भी क्षेत्र में विकास संभव नहीं है । इसलिए आधुनिकता समय विशेष की न तो संकुचित दृष्टि है और न ही अराजक मूल्यों की द्योतक ही, बल्कि आधुनिकता वर्तमान के प्रति नहीं, काल के प्रति सजगता है ; यानी खण्ड के प्रति नहीं सम्पूर्ण के प्रति सजगता है। इस संदर्भ में विष्णु प्रभाकर का मानना है कि "वह (अर्थात् आधुनिकता) सिध्दान्तहीनता या अराजकता नहीं है । वह तो सिध्दान्त और व्यवस्था को जड़ होने से बचाती है, निरंतर नया रक्त देकर जीवित रखती है । जि-ाासा और प्रश्नाकुलता के अभाव में मनुष्य किसी भी क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता।"[83]

डॉ.जगदीश गुप्त मानवतावादी जीवन दृष्टि को आधुनिकता का प्रधानाधार मानते हैं। उनके विचार में "आधुनिकता अपने सही अर्थ में उस विवेकपूर्ण दृष्टिकोण से उपजी है , जो व्यक्ति को वास्तविक युगबोध कराने के साथ-साथ अधिक दायित्वशील सक्रिय और मानवीय बनाता है।"[84]

गजानन माधव मुक्तिबोध ने भी आधुनिकता-बोध को मानव मानवीयता एवं मानव मुक्ति से संबध्द करके देखा है। उनकी स्थापना है कि “मैं अपने खुद की ज़िंदगी और दोस्तों की ज़िंदगी के तजुर्बे से बता सकता हूँ कि अन्याय के खिलाफ आवाज़ बुलंद करना ‘आधुनिक ³ÖÖ¾Ö²ÖÖ¬Ö’ के अंतर्गत है। आधुनिक भावबोध के अंतर्गत यह भी है कि मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में हम और भी अधिक दत्तचित्त हों तथा हम वर्तमान परिस्थिति को सुधारें, नैतिक ह्रास को थामें, उत्पीडित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति की उपाय योजना करें।”[85] अतएव सामाजिक संदर्भ में आधुनिकता मूलत; एक मानवतापरक दृष्टि है जिसके केन्द्र में मनुष्य है। मनुष्य को केन्द्र में रखने का अर्थ है मनुष्य के विवेक, उसकी गरिमा, उसकी निर्णय स्वतंत्रता और उसकी सर्जनशीलता के केन्द्र में रखना। इसलिए मनुष्य मात्र की समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता आधुनिकता की सामाजिक अवधारणा का केन्द्रीय आधार है| †ŸÖ: ¾Ö ÃÖÖ¸ß विचारधाराएँ आधुनिक कही जा सकती हैं जो किसी भी व्यक्ति या वर्ग द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति या वर्ग के शोषण, दमन और अवमानना का विरोध करती हैं और एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण अनिवार्य मानती हैं, जिसमें मनुष्यमात्र की स्वतंत्रचेतना और सर्जनहीनता का बहुमुखी विकास ÃÖ³Ö¾Ö ÆÖ |

आ.हजारीप्रसाद द्विवेदी आधुनिकता को एक जीवन-दृष्टि के साथ-साथ प्रक्रिया भी मानते हैं। आधुनिकता की पहचान के लिए उन्होंने तीन लक्षणों को परिमाणित किया है। एक ऐतिहासिक दृष्टि, दूसरा यह कि इसी दुनिया के मनुष्य को सभी प्रकार की नीतियों और पराधीनता से मुक्त करके सुखी बनाने का आग्रह, और तीसरा यह कि व्यक्ति मानव के स्थान पर समष्टि मानव या सम्पूर्ण मानव समाज की कल्याण कामना। आ.द्विवेदी ने आधुनिकता को मूल्यों के नये संदर्भ में देखने की दृष्टि के रूप में परिभाषित किया है। द्विवेदी जी की स्थापना है कि “मनुष्य ने अनुभवों द्वारा जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया है, उन्हें नये संदर्भो में देखने की दृष्टि आधुनिकता है। यह एक गतिशील प्रकिया है।”[86]

बहुत से विद्वानों ने आधुनिकता को एक श्रेष्ठ दृष्टि ही नहीं वरन् मूल्य के रूप में भी परिभाषित करने की चेष्टा की है। उनके अनुसार आधुनिकता व्यक्ति के लिए न सिर्फ़ एक उष्ण जीवन दृष्टि है, बल्कि जीवन मूल्य की भी सूचक है। इसी बात को नेमिचन्द्र जैन ने यों रखा है, “हमारे यहाँ आधुनिक होना फेशनेबुल ही नहीं श्रेष्ठता का सूचक है। निजी संबंध, सामाजिक

जीवन, रीति-रिवाज, राजनैतिक-आर्थिक विचार में, दृष्टि में, अपने को आधुनिक कहना,सम-ाना और दूसरों द्वारा सम-ाा जाना हमें अच्छा लगता है।”[87]

स्पष्ट है कि आधुनिकता की प्रकृति में व्यक्ति और समाज दोनों समाहित हैं। इसलिए आधुनिकता जैसी संश्लिष्ट, विस्तृत एवं विकासशील प्रक्रिया को सम-ाने हेतु हमें इसके प्रति खुली मानसिकता रखनी होगी। यह एक ऐसी दृष्टि है जो अस्तित्व के मूल प्रश्नों तथा सम्पूर्ण मानवीय व्यक्तित्व से गहरे रूप से जुड़ी है। इस दृष्टि के अंतर्गत जहाँ एक तरफ मानव व्यक्तित्व की स्वतंत्रता समाहित है, वहीं दूसरी तरफ सामूहिक मानव मुक्ति की धारणा भी। आधुनिकता की यह अवधारणा एक ओर सामाजिक दर्शन से , सामाजिक यथार्थ से जुड़ती है ÝÖÖ दूसरी ओर अस्तित्व दर्शन से , अस्तित्वगत स्थितियों के यथार्थ से। आधुनिकता के अंतर्गत जिस यथार्थ की स्वीकृति है, उसका स्वरूप सरल नहीं है। विभिन्न विचारधाराएँ इसको सम-ाने में सहायक हो सकती हैं। लेकिन किसी एक विचारधारा या दर्शन के बल पर इसके यथार्थ को पूरा पकड़ना दुष्कर है।

अतएव, आधुनिकता एक निरंतर विकासशील प्रक्रिया है। इसीलिए हम इसे परिभाषित करने की चेष्टा में देशकालबध्द रूप में पुरातन से अलगाकर के देखते हैं और दृष्टि के रूप में ºþ×œ¾ÖÖ×¤ÝÖÖ ÃÖ | ÃÖ¯ÖÂ™ Æ ×क वह एक ऐसी जीवन-दृष्टि है जो मूल्य खोजने में रत है। अत: मूल्यों को उससे अलगाकर नहीं देखा जा सकता क्योंकि उसकी सही पहचान भी तो उसी के कारण संभव है। इसलिए यह कहना उचित होगा कि आधुनिकता-बोध एक निरंतर विकासशील जीवन-दृष्टि एवं प्रक्रिया दोनों है।

१.११ आधुनिकता-बोध के कारक तत्व :

प्राय: विद्वानों ने आधुनिकता को संपूर्ण मानवता द्वारा उपलब्ध -ाान-×¾Ö-ाान तथा इसके बाद आये औद्योगीकरण, शहरीकरण, पूँजीवाद तथा शिक्षा के विस्तार इत्यादि के कारण बदली हुई मनोवृत्ति के रूप में लक्षित किया है। क्योंकि इन्हीं, आधुनिक -ाान-×¾Ö-ाान और टेक्नोलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय स्थितियों का नया गैर रोमांटिक और अमिथकीय साक्षात्कार आधुनिकता है। आधुनिकता का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है कि उसके ऐतिहासिक संदर्भ और प्रकृति को सम-ा लिया जाए। आधुनिक काल अपने -ाान-×¾Ö-ाान और प्रविधियों के

कारण मध्यकाल से अलग हुआ। यह काल औद्योगीकरण, नगरीकरण और बौध्दिकता से सम्बध्द है, जिससे नवीन आशाएँ पल्लवित हुईं। वर्तमान के प्रति सजगता बढ़ने लगी। वर्तमान का यही बोध आधुनिकता-बोध की सं-ाा पाता है। यह आधुनिकता-बोध संवेदना से युक्त है, जो समकालीन परिवेश से सम्पृक्त है, जो प्राचीन एवं मध्यकालीन संस्कारों, अनुशासनों, रूढ़ियों †Ö×¤ ÃÖ मुक्त है। यह आधुनिकता-बोध अपने आप में एक सामाजिक अवधारणा है जिसे व्यष्टि के स्तर पर अवबोधित किया जाता है। इसमें व्यक्तिगत चेतना का समावेश ज़रुर है, साथ ही समष्टिगत चेतना से भी वह असंपृक्त नहीं है। अत: आधुनिकता-बोध के कारक तत्वों को निम्न रूप में देखा जा सकता है -

१.११.१ महानगरों की सभ्यता का विकास :

प्राचीन सामाजिक ढाँचा टूट चुका है, पुराने आदर्श आज के संदर्भ में अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं। अब समाज न देहाती रहा है न शहरी, अब उसका संगठन ही नष्ट हो गया है।[88] कोई ऐसा सूत्र नहीं रह गया है जो जीवन में एकता स्थापित कर सके। गाँव भी अब पहले के गÖाँव नहीं रह गए हैं। उनका आंतरिक रूप और कलेवर भी बहुत तेजी से बदल रहा है। जीवन को भौतिक बनानेवाले साधन, यांत्रिक उपकरण, अब गाँवों में भी उपलब्ध कराये जा रहे हैं। गाँवों का आधुनिकीकरण बड़ी तेजी से हो रहा है। अंग्रेज़ों के संपर्क में आने के कारण भारतवर्ष की प्राचीन कृषि-व्यवस्था में व्यवसायीकरण की प्रवृत्ति पनपनी शुरु हुई तथा नगरों के विकास के साथ, भौतिकता-प्रधानÖ, 'सिटी सिविलिजेशन' का विकास हुआ।

इंग्लैण्ड में भी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध्द में कृषि पर आधारित प्राक्-औद्योगिक †£Ö-व्यवस्था और जीवन प्रणाली की समाप्ति, तथा नगरों के विकास के कारण, पुरान सामाजिक संबंध टूट गये। प्राचीन सत्तावादी आदर्शों की समाप्ति हो गयी। जीवन के केन्द्र में अर्थ की प्रतिष्ठा हो चली, परिणामत: स्पर्धा की भावना का विकास हुआ। यह प्रवृत्ति किसी ¤¿Ö-विशेष तक ही सीमित नहीं रह गयी है, अपितु मनुष्य के सारे संबंध, आज अर्थ से नियोजित होने लगे हैं। स्पर्धा और अर्थ के आचारशास्त्र ने मनुष्य को संकीर्ण और छोटा बना दिया है। आजकल महानगर ही जीवन के केन्द्र बन गए हैं। नगरों और महानगरों में पनपने वाली जीवन-विधि का पूरे समाज पर पभाव पड़ता है, और पड़ रहा है। भारत में ही नहीं, अपितु,

संपूर्ण विश्व में महानगरों का महत्व और प्रभुत्व बढ़ता जा रहा है। वस्तुत: आधुनिक-बोध इन्हीं महानगरों में बसनेवाले मनीषियों का दृष्टि-²ÖÖ¬Ö Æ ।[89]

१.११.२ दो महायुध्दों का परिणाम :

महायुध्दों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि बीसवीं शताब्दी में मानव-सभ्यता एक मोड़ पर खड़ी है- वह शांति और विनाश में से एक चुन सकती है। वर्तमान शताब्दी ने मनुष्य के सामने यदि एक ओर अनंत संभावनाओं का द्वार उन्मुक्त किया है तो दूसरी ओर, मानव-सभ्यता के संपूर्ण विनाश की भूमिका भी रच डाली है। यह युग चुनौतियों और संघर्षों से भरा हुआ है। बीसवीं शताब्दी के दो विश्व-युध्दों ने मानव मात्र को नैतिक चेतना, आचार-विचार जीवन विधि ही क्या, संपूर्ण जीवन को -ाक-ÖÖ¸ü >Ö»ÖÖ Æ । ×¾ÖÀ¾Ö-स्तर पर, समान रूप से जीवन तथा साहित्य, दोनों ही प्रभावित हुए हैं। समस्त परम्परित लोकाचारों की नींव हिल गयी, आदर्शों, मान्यताओं और मूल्यों के महल ढह गये। लारेन्स ने बड़े खुले शब्दों में बहुत पहले घोषित किया था कि १९१५ में पुराना विश्व समाप्त हो गया। १९१५-१६ के जाड़े में पुराने लन्दन का व्यक्तित्व ढेर हो गया । लन्दन शहर एक प्रकार से मर गया। वह शहर जो कभी विश्व का केन्द्र था, नष्ट हो गया और भग्न उमंगों, लालसाओं, आशाओं तथा भय और संत्रास के भँवर के रूप में परिणत हो गया।[90]

प्रथम विश्व युध्द के परिणामस्वरूप, पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी का मतभेद उभर कर सामने आया। नयी पीढ़ी के मन में, पुरानी पीढ़ी के प्रति, सत्ता के प्रति सन्देह घर कर गया। युध्द पर लिखी गयी कविताओं और युध्द से संबंधित संस्मरणों में सेना के पुराने जनरल्स, शासनाध्यक्षों और राजनीति-ों पर बड़े स्पष्ट ढंग से, और निर्भीकता के साथ व्यंग्य किये गये। इस प्रकार, प्राचीन सत्तावादी ढाँचा चरमरा उठा, युग की मनोवृत्ति अनधिनायकीय (एण्टी-Æß रोइक) हो गयी।[91] कहा जा सकता है कि युध्द के भीषण नर-संहार ने मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने और प्रतिष्ठित करने का पाठ पढ़ाया। मनुष्य को गौरव मिला। साहित्य पर भी प्रथम विश्व युध्द का गहरा असर, स्वाभाविक रूप से पड़ा। प्रथम विश्वयुध्द के परिणामस्वरूप, जीवन में, साहित्य में कटु यथार्थ का बोध, आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति, सतही विचारों, सहज मनोभावों के प्रति अरुचि, मोह-भंग तथा निराशा के भाव जागृत हुए वै-ानिक और प्रौद्योगिक प्रगति के कारण, जिस आशावादिता का संचार हुआ था, बहुत शीघ्र उसका रंग उड़ गया। उस

युग में लिखी गयी चिंतन-प्रधान कविता में दुर्व्यवस्था तथा विघटन के स्वर मुख्य रूप से उभरे हैं । टी.एस.इलियट के 'द वेस्ट लैण्ड' (1922) †Ö¸ 'द हालो मेन' (१९२५); तीव्र प्रतिक्रिया के बावजूद युगीन प्रवृत्तियों के द्योतक हैं ।[92]

द्वितीय महायुध्द ने प्रथम महायुध्द के भयंकर परिणामों पर मानो मुहर लगा दी । प्रथम महायुध्द ने निराशा, भय और संदेह का वातावरण निर्मित किया, तमाम आदर्शों एवं मूल्यों की सारहीनता, सभ्यता के प्रतीकों तथा मानव कल्पित आदर्शों का खोखलापन प्रमाणित किया था । द्वितीय महायुध्द के उपरांत इसकी अनुभूति तीव्रतर हुई । प्रथम महायुध्द की ही भाँति, द्वितीय महायुध्द को लेकर इंग्लैण्ड के कवियों ने युध्द-काव्य का सृजन किया । कवियों ने राजनीति-ÖÖ तथा राष्ट्रों के कर्णधारों की अदूरदर्शिता, मदांधता एवं परिणामजन्य भीषण नर-संहार का तीव्र विरोध किया, मासूम नव-युवकों की सुख-शांति छीनने वालों के प्रति तीव्र आक्रोश और घृणा को वाणी दी ।

द्वितीय महायुध्द ने मानव-अस्तित्व पर, मानव-सभ्यता पर बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह लगा दिया । युध्दोत्तर परिस्थितियों ने विकट सांस्कृतिक संकट को जन्म दिया । यह सांस्कृतिक संक™ किसी एक जाति अथवा देश के सामने नहीं है, वरन् यह मनुष्य मात्र की समस्या है - एक ऐसी गहन समस्या जिसकी विराटता के तीखे बोध से विश्व उबर नहीं सका है । इस सांस्कृतिक संकट का सबसे तीखा एहसास युवा पीढ़ी को है । युवा पीढ़ी भी द्वितीय महायुध्दोत्तर परिस्थितियों की ही उपज है । इस पीढ़ी का विश्वास है कि द्वितीय महायुध्द द्वारा ध्वस्त मानवीय संस्कृति को आलोक बनाकर ही बचाया जा सकता है । यही पीढ़ी साहित्य के पुराने बंधनों से मुक्त होने के लिए आकुल है ।[93]

आधुनिक हिन्दी साहित्य के संदर्भ में डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने, द्वितीय महायुध्द के प्रभाव को रेखांकित करते हुए निम्नलिखित महत्वपूर्ण स्थापनाएँ की है ।[94]

१. हिन्दी साहित्य के विश्व साहित्य के समानान्तर प्रगति पथ पर बढ़ने की प्रक्रिया भी द्वितीय महायुध्द के कारण ही जन्म धारण कर सकी ।
२. जो द्वितीय महायुध्दोत्तर स्थिति संसार के साहित्यकारों को प्रताड़ित कर रही है, वही स्थिति हिंदी के साहित्यकारों में बौध्दिक एवं मानसिक उद्वेलन उत्पन्न कर रही है ।

३. द्वितीय महायुध्द ने संसार के सभी देशों में संभ्रम और बेचैनी के युग का प्रवर्तन कर, साहित्य

और कला में ही नहीं, युनिवर्सीटी कैम्पसों में, भीडों में, शहरों में एक ऐसी युवा पीढ़ी को जन्म

दिया जो 'गरिमामय सांस्कृतिक अतीत के परखचे उड़ा देने पर उतारु हैं।'

४. इस युग में; प्रमुख स्वर द्वितीय महायुध्द के बाद उभरी युवा पीढ़ी के साहित्यकारों का ही Ã¾Ö¸

है। यह वह स्वर है, जो मानव की नियति पहचान रहा है।

1.११.३ वर्तमान परिस्थितियाँ और युवा पीढ़ी :

आधुनिक युग में युवा पीढ़ी जिस संभ्रम, अकुलाहट, बेचैनी और तमाम मूल्यों को उलट-पुलट देने का भाव, लेखकों और विचारकों द्वारा लक्षित किया गया है, उसके पीछे विभिन्न परिस्थितियों की एक बड़ी लम्बी शृंखला है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों का यदि विश्लेषण किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। बापू के ¸Ö´Ö-राज्य की कल्पना को साकार करने का भार देश के कर्णधारों के ऊपर पड़ा। देश का संविधान बना जिसमें नागरिकों के मूल अधिकारों की व्यवस्था की गयी। स्वतंत्रता, समता और न्याय के सिध्दान्तों को चरितार्थ करने का संकल्प लिया गया। भारतीय गणतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की गारन्टी प्रदान की गयी। देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कल्याण -राज्य (वेलफेयर स्टेट) की स्थापना का संकल्प लिया गया, समाजवाद को लक्ष्य रुप में Ã¾ीकार किया गया, बीमा और बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, रुपये का अवमूल्यन किया गया, पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सुनियोजित विकास की नीति अपनायी गयी। तस्वीर का एक दूसरा पहलू भी है पुनीत आदर्शों एवं सिध्दांन्तों की आड़ में, संविधान की पवित्रता की शपथ लेनेवालों ने संविधान में परिवर्तन किए। राजनीतिक दलों के नेताओं की पैंतरेबाजी के कारण आज तक किसी सशक्त विरोधी दल का गठन नहीं हो पाया है। गांधी की हत्या के बाद गांधी के सिध्दांतों की हत्या की प्रक्रिया भी लगभग पूरी हो चुकी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ५० वर्षों का इतिहास साक्षी है कि देश में सर्वत्र कमरतोड़ मँहगाई, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार,

नौकरशाही की निरंकुशता, जातीयवाद, प्रान्तीयवाद, वर्णभेद, भाषाभेद, असहिष्णुता, अस्थिरता, चोरबाज़ारी और सामग्रीसंचय का बोलबाला है। देश की समस्त विकास योजनाएँ साधारण जनता की गरीबी और आर्थिक पिछड़ापन दूर करने के लिए लागू की गयीं, परंतु अपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त हो सका है। स्वतंत्रता और विकास-योजनाओं से कुछ थोड़े लोग ही लाभान्वित हुए हैं। साधारण जनता जहाँ की तहाँ है। इसका यह मतलब नहीं है कि विकास कार्यक्रमों से कोई लाभ नहीं हुआ है, परन्तु इतना निश्चित है कि आम आदमी को उसका पूरा भाग नहीं मिला है, उसकी स्थिति में जितना सुधार होना चाहिए था, वह हुआ नहीं। समाज में एक बड़ा वर्ग ऐसा है, जिसने उसे सुख-सुविधाओं से वंचित कर रखा है।

इस परिस्थिति का प्रतिफल यह हुआ कि सामान्य जनता के मन में भी शासन, देश के कर्णधारों, उनकी नीतियों पर से विश्वास उठता जा रहा है। एक विचित्र सी अनास्था सबके मन में समायी हुयी है। आज का बुध्दिजीवी भी, इन तमाम बुराइयों को देख रहा है, वह अनुभव करता है कि उसका दम घुट रहा है, परन्तु, इन बुराइयों का प्रतिकार करने में वह अपने को असफल पाता है। परिस्थितियाँ इतनी विषम हैं कि उसके नियंत्रण के बाहर हैं। परिणामत: वह अपने को सबसे अलग पाता है, वर्तमान व्यवस्था में वह कैसे अपना ताल-मेल बैठा सके यही उसकी समस्या है। परिणाम है जीवन में ऊब और नीरसता।[95] आज की युवा पीढ़ी भी इसी तरह भ्रमजाल में फँसी है। युवा पीढ़ी में जोश है, शक्ति है, प्रतिभा है, कुछ नया करने की उमंग है, परंतु कोई उपयुक्त मार्ग उसे नहीं दीख रहा है कि वह अपनी शक्ति और प्रतिभा का समुचित उपयोग तथा विकास कर सके। उसके सामने कोई लक्ष्य नहीं है, और न ही कोई ठोस आदर्श और योजना। जीवन में कोई स्थिति, कोई भी चीज़ उसे प्रेरणा नहीं दे सकती। किसी भी स्थिति से वह मानसिक सम-गौता करने के लिए तैयार नहीं है। इस दिग्भ्रमित पीढ़ी के लिए, †0̈•ा तक कोई ठोस योजना तैयार नहीं की जा सकी है। विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थाओं में प्रतिवर्ष छात्रों की बढ़ती हुई भीड़ ज्वलन्त प्रमाण है। जनता को दिए गए नारे निस्सार हो चुके हैं। प्रजातंत्र, स्वंतत्रता, समानता, धर्मनिरपेक्षता, न्याय, समाजवाद और गरीबी हटाओ आदि शब्द अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं। अनास्था और अविश्वास का वातावरण-सा पनप रहा है। राष्ट्रव्यापी चरित्र-संकट इसका अनिवार्य परिणाम है। चीन,पाकिस्तान के साथ विगत युध्दों तथा बांग्लादेश के लिए संघर्ष के समय, देश में ज़रुर एक जागृति आयी थी, एक नयी लहर उठती हुई दिखायी पड़ी थी, परंतु उसका कोई स्थायी प्रभाव पड़ा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता

है l यह तो इस देश की सहिष्णु जनता की विशेषता है कि वह संकट की घड़ियों में एकजुट होकर बड़े से बड़ा कष्ट सहर्ष –Ö»Ö »Ö •ÖÖŸÖß Æ |

इन तमाम परिस्थितियों का परिणाम देखने में यह आता है कि आज की अधिकांश नयी पीढ़ी, सारी परम्पराओं, मूल्यों, आदर्शो तथा आचारों को संदेह और घृणा की दृष्टि से देखती है l वह अपना रास्ता ढूँढ़ रही है, अपने को पहचानने का प्रयास कर रही है l इस विघटन ´Ö,^£Ö»Ö-पुथल के वातावरण में, वह अपने लिए किन्हीं ठोस जीवंत आदर्शों का निर्माण करने में लगी है l इस व्यापक असंतोष और अनास्था के युग में आज का नव-युवक पाश्चात्य x¾Ö“ÖÖ¸¬ÖÖ¸Ö†Ö , ¾Ö-गानिक और तकनीकी प्रगति से प्रेरित और प्रभावित हो रहा है l डॉ वार्ष्णेय के शब्दों में, आज का नव-युवक इतिहास का सबसे बडा मूर्तिभंजक है l पश्चिम की x¾Ö“ÖÖ¸¬ÖÖ¸Ö †Ö¸ ¾Ö-गानिक तकनीकी प्रगति ने उसकी भावनाओं को प्रश्रय दिया है l वह विद्रोह और विप्लव की परम्परागत क्रांति में विश्वास करने लगा है l[96] आज का हिन्दी साहित्य इन्हीं परिस्थितियों और मन:स्थिति की देन है |[97]

दो महायुध्दों ने विश्वस्तर पर मनुष्य की चिन्तन-प्रणाली और जीवन-दृष्टि को प्रभावित किया l जिससे साहित्य भी अछूता नहीं रह सका है l महायुध्दों के परिणामस्वरूप आधुनिक हिन्दी साहित्य में कतिपय नयी प्रवृत्तियों का विकास हुआ, जिन्हें संक्षेप में हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं-

१. यथार्थवादी मान्यताओं की स्वीकृति;
२. व्यक्ति-सापेक्ष नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के विकास की प्रवृत्ति;
३. परम्परागत व्यवस्था के प्रति विद्रोह ;
४. कला के क्षेत्र में आत्म-आस्था का उदय;
५. अहम्वाद का विकास तथा बौध्दिकता का उदय l

1.11.4 x¾Ö-गान का प्रभाव :

x¾Ö-गान ने मनुष्य के लिए अपरिमित शक्ति का द्वार खोल दिया है l वह संपूर्ण प्रकृति का स्वामी बन बैठा है l मनुष्य के जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जो वि-गान के प्रभाव से अछूता रह गया हो l वि-गानप्रदत्त शक्ति और साधनों के बल पर मनुष्य सृष्टि के रहस्यों का उद्घाटन

करने में सफल हुआ है। इस अंतरिक्ष युग में मानव का अवतरण इसका प्रमाण है। और यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य, विकास के असंख्य सोपान पार करेगा, अलंघ्य, अकल्प्य उँचाइय्ÖÖ का अतिक्रमण करेगा, अथवा उसकी असीम शक्ति, विकास के वर्तमान बिन्दु पर उसके पतन का कारण बनेगी। वि-ान ने, आधुनिक युग की यांत्रिक सभ्यता ने, मनुष्य के चिंतन को प्रभावित किया है। आज मनुष्Ö ²ÖÛ¬¤¾ÖÖ¤ß Æ, ²ÖÛ¬¤-प्रसूत निष्कर्षों पर ही विश्वास का आग्रही है। इस बुध्दिवाद के मूल में है- तर्क, गहन विश्लेषण और परीक्षण। वि-ान प्रसूत तथा वि-ान द्वारा अनुशासित, इस घोर बुध्दिवाद के कारण धर्म तथा ईश्वर पर से विश्वास उठ गया है, कारण यह कि धर्म और ईश्वर, बुध्दि द्वारा, तर्क द्वारा सिध्द नहीं किए जा सकते। धर्म और ईश्वर, आस्था, श्रध्दा तथा विश्वास के विषय हैं। इस दृष्टि का परिणाम यह हुआ कि, सृष्टि-विषयक प्राचीन विश्वास और मान्यतायें बदल गयी हैं। प्राचीन सामाजिक मान्यतायें और नैतिक मूल्य विघटित हो चुके हैं। आज यांत्रिक सभ्यता और बुध्दिवाद ही मानव-नियति को अभिशाप बना ¸Æ Æ |

बुध्दिवाद ने, वै-ानिक दृष्टि ने, धर्म और ईश्वर के विषय में व्याप्त अनास्था ने काफी हद तक साहित्य को प्रभावित किया है। साहित्य में, जीवन में, हम जिस आधुनिक-बोध तथा नूतन ¥ÛÂट की चर्चा करते हैं, वह वि-ान से अनुशासित है तथा "उस सभ्यता का स्वाभाविक परिपाक Æ, ×•ÖÃÖ´Ö Æ´Ö •Öß ¸Æ Æ |"[98] स्पेंग्लर ने 'डिक्लाइन आफ द वेस्ट' में पाश्चात्य संस्कृति और आधुनिक वै-ानिक, यांत्रिक सभ्यता का बड़ा मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। स्पेंग्लर के सभी निष्कर्षो से आधुनिक युग के विचारक सहमत नहीं जान पड़ते। परन्तु 'आधुनिक बोध की प्रक्रिया', स्पेंग्लर के विश्लेषण से '²ÖÆŸÖ ²Ö´Ö»ा नहीं है।'[99] स्पेंग्लर ने यह प्रतिपादित किया कि प्रत्येक संस्कृति विकास की अंतिम अवस्था को प्राप्त कर लेने के बाद, आध्यात्मिक दृष्टि से रिक्त हो जाती है, फिर सभ्यता का विकास होता है। आध्यात्मिक रिक्तता या संकट आज पश्चिम की भौतिकता-प्रधान यांत्रिक सभ्यता का सबसे महान संकट है। धर्म और साहित्य ने वि-ान के सामने घुटने टेक दिए हैं। साहित्य में जब वि-ान का अनुकरण होने लगता है, तब उसकी यह ¿Öक्ति लुप्त हो जाती है, जो जीवन के बिखरे हुए तंतुओं को जोड़ती है। पश्चिम के साहित्यकारों ने इस आध्यात्मिक संकट को वाणी दी है। आज का युग चिंतन-विश्लेषण-प्रधान है, अब, युग कर्म-प्रधान नहीं रह गया है। यह प्रवृत्ति, संस्कृति की पतनशीलता, आंतरिक शक्ति के ह्रास की द्योतक है।

१.११.५ मानव व्यक्तित्व के संबंध में विभिन्न धारणाओं का विकास :

आधुनिक युग में व्याप्त भ्रमपूर्ण स्थितियों का एक और प्रमुख कारण है- मानव-व्यक्तित्व के संबंध में किसी निश्चित धारणा का अभाव ।[100] मानव व्यक्तित्व के संबंध में समय-समय पर प्रकाश में आने वाली विचारधाराओं में डार्विन के विकासवाद का स्थान महत्वपूर्ण है। डार्विन ने विकासवाद के सिध्दांत के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि संसार विकसनशील और परिवर्तनशील है। संसार के सभी जीवधारियों का, सौरमण्डल, नक्षत्रों, पृथ्वी, भाषा, धर्म और परम्परा आदि का विकास होता है। सारांश यह कि सृष्टि का प्रतिक्षण विकास हो रहा है। "परिवर्तन, विकास, परिवर्ध्दन और उन्नति आधुनिक युग में जीवनसूत्र बन गये हैं ।"[101] विकासवाद के सिध्दांत के कारण, मनुष्य के चिंतन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। सृष्टि में मनुष्य के गौरवपूर्ण स्थान से संबंधित पुरानी कल्पना निराधार सिध्द हो गयी। मनुष्य एक विकसित पशु के अतिरिक्त कुछ नहीं है। धर्म, ईश्वर तथा सृष्टि विषयक पुरानी मान्यतायें ध्वस्त हो गयीं । इस प्रकार "जीवन तथा साहित्य के दृष्टिकोण को आधुनिक युग में धार्मिक से ऐहिक बनाने में विकासवाद का महत्वपूर्ण योग रहा है ।"[102]

´ÖÖŒÃÖ ने समाज और मनुष्य की एक नयी व्याख्या प्रस्तुत की। मार्क्स भौतिकवादी विचारक था। उसने प्रत्यय के ऊपर पदार्थ की प्रधानता को स्वीकार किया। मार्क्स द्वारा ¯Ö¾ÖÜÖŸÖÖ ÃÖ´ÖÖ•Ö¾ÖÖ¤ü •ÖÖ ¾Ö-ãानिक समाजवाद के रूप में जाना जाता है। मार्क्सवाद का दार्शनिक पक्ष द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, हीगेल के द्वन्द्वात्मक आदर्श और फायरबाख के यांत्रिक भौतिकवाद से प्रभावित हुआ है। हीगेल से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने प्रणाली ग्रहण की तथा फायरबाख से दार्शनिक दृष्टिकोण ।[103] द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मूल स्थापना यह है कि सृष्टि परिवर्तनशील है। परिवर्तन ही सत्य है। परिवर्तन आंतरिक है ŸÖ£ÖÖ ¤ü विरोधी शक्तियों के संघर्ष के कारण होता है। "द्वन्द्व सिध्दांत विकास की दृष्टि से चार सूत्रों में पूर्ण रूप से व्यक्त होता है -[क] विरोधों की एकता, [ख] विरोधों का आपसी संघर्ष, [ग] इस ÃÖ‘ÖÂÖ से एक नयी समन्वित परिस्थिति का जन्म, [घ] वाद संवाद तक का परिवर्तन। यह मात्रा से गुणों की ओर जानेवाला परिवर्तन है ।"[104]

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों की सापेक्षता में मनुष्य का अध्ययन करता है। मार्क्स के अनुसार मनुष्य के जीवन में आर्थिक परिस्थितियों का, उत्पादन का विशेष महत्व है। मनुष्य के सभी सामाजिक संबंध, उत्पादन-प्रणाली, उत्पादन-¿ÖÛŒत अर्थात् आर्थिक परिस्थितियों से प्रेरित और अनुशासित होते हैं। उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन शोषक वर्ग और शोषित वर्ग के संघर्ष के कारण होता है। वर्ग-संघर्ष में ही विकास अवस्थित है। इस प्रकार मार्क्स ने मानव-व्यक्तित्व को आर्थिक संबंधों तक ही सीमित कर दिया। फ्रायड ने मनोविश्लेषण सिध्दांत के अंतर्गत मानव-व्यक्तित्व का अध्ययन दमित कामवृत्ति (लिविडो), सुपर इगो(आदर्श अहम), तथा अचेतन मानस के संदर्भ में प्रस्तुत किया। फ्रायड के अनुसार काम-वृत्ति ही जीवन की मुख्य प्रेरक शक्ति है। चेतन मानस की तुलना में अचेतन मानस (जिसका मूल कारण है - दमित इच्छायें) कहीं अधिक सशक्त है। †“ोतन मानस स्वप्न की अवस्था में चेतन मानस के अंकुशों और बंधनों से सर्वथा मुक्त होकर, स्वतंत्र रूप में अपने को अभिव्यक्त करता है। फ्रायड के मत में संशोधन करते हुए, एडलर ने †ÖŸ´Ö-स्थापन की प्रवृत्ति को मानव जीवन के केन्द्र में स्थापित किया। जुंग ने फ्रायड और एडलर की मान्यताओं को विस्तृत अर्थ में ग्रहण करते हुए जीवन-शक्ति को प्रमुखता दी।[105]

×¾Ö-ान से प्रभावित निराशावादी मानवतावादियों ने मनुष्य की इच्छाओं, आशाओं को "एटम्स की संयोगिक संस्थिति का परिणाम बतलाया।"[106]

इस प्रकार डार्विन ने मनुष्य को प्रकृति का अंग बताया, फ्रायड ने कामवृत्ति और अचेतन के स्तर पर मानव-व्यक्तित्व का उद्‌घाटन किया, मार्क्स ने मनुष्य को आर्थिक और सामाजिक शक्तियों का परिणाम सिध्द किया। सारांश यह कि उपर्युक्त सभी विचारधाराओं ने मानव के स्वतंत्र अस्तित्व और निरपेक्ष रूप को ध्वस्त कर दिया। मानव ईश्वर द्वारा सिरजा हुआ है, यÆ धारणा खण्डित हो चली। मनुष्य और ईश्वर के पुराने संबंधों को आघात लगा। सर्वकर्मा तथा ÄÖÂ™Ö ‡À¾Ö¸-विषयक मान्यता बदल गयी। धर्म की प्रतिमा भी टूट गयी। जीवन-दृष्टि नितान्त भौतिक हो गयी। इन तमाम विचारधाराओं और परिस्थितियों ने मूल्यों को मूल्यहीन एवं निरर्थक घोषित कर दिया।

१.११.६ यांत्रिक सभ्यता और व्यापक सांस्कृतिक संकट :

यांत्रिकता के कारण, संस्कृति के लिए भी गंभीर खतरा पैदा हो गया है। हमारी संस्कृति जर्जर एवं रुग्ण हो गयी है। शिक्षा प्रसार तथा राजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता के कारण सांस्कृतिक संकट कम नहीं हो पाया है। डी.टोक्विले के विश्लेषण के अनÃÖÖ¸ü, ‘´ÖÖÃÖ-कम्युनिकेशन’ के विभिन्न साधनों के कमर्शियल स्तर पर व्यापक प्रसार ने साहित्य और संस्कृति को बड़ी गहराई से प्रभावित किया है। जान डेवी ने भी यह मत व्यक्त किया है कि औद्योगिक ¯Ö•ÖÖÿांत्र के आधुनिक युग में अब अर्जित -ान (लर्निंग) किसी वर्ग का विशेषाधिकार नहीं है। प्रिंटिंग-कला, प्रेस के कमर्शियल स्वरूप, सस्ती पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं के चलन, लोकोमोटिव, टेलीग्राफ, आंतरिक संचार-साधनों के विकास तथा डाक-व्यवस्था की सुविधाओं के कारण अर्जित जानकारी का एक विशाल पैमाने पर प्रसार इस युग की विशेषता है। विचारों का आदान-प्रदान सुगम एवं बड़ा सस्ता हो गया है। इन सबका सम्मिलित परिणाम है- बौध्दिक क्रांति।[107] एफ.आर.लीविस ने इस समस्या का बड़ा सही विश्लेषण प्रस्तुत किया है। लीविस के अनुसार "सामाजिक संगठन की यांत्रिकता, जटिलता, पेचीदगी तथा विस्तार के कारण मानों मानव-समाज ने अपनी बुध्दि, स्मृति और नैतिक उद्देश्य खो दिया है।"[108]

आज का युग मशीन-युग है। मशीन-युग की उपलब्¬Ö Æü - ‘´ÖÖÃÖ-प्रोडक्शन’ | "....उसके लिए वि-ापनबाजी आवश्यक है। वि-ापनबाजी स्वयं मशीन-युग की विशेषताओं को उग्रतर बनाती है, और साहित्य को सस्ता, घटिया और एकरस बनाने का कारण बनती है।"[109] वस्तुत: आधुनिक सभ्यता वि-ान की नींव पर खड़ी है। पत्र-पत्रिकाओं का स्तर गिरता जा रहा है। इसका एक प्रमुख कारण है- ¯Ö¡Ö-पत्रिकायें अधिकांशत: वि-ापन पर जीती हैं, उसी के सहारे चलती हैं। ग्राहक-संख्या पर ध्यान देने के कारण, पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्रचारित सस्ता साहित्य किन्ही ठोस मूल्यों का निर्माण नहीं कर पाता, अपितु वह परम्परागत, रूढ़िबध्द पात्रों की सृष्टि तक ही अपने को सीमित रख पाता है तथा मानवीय संबंधों के घटिया पक्षों को ही उभारता है | ²ÖßÃÖ¾Öà ÃÖ¤ß में सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो, वायरलेस तथा अन्य संचार-उपकरणों का अद्भुत विकास हुआ है। टेलीविजन और रेडियो भले ही सामाजिक दृष्टि से उपादेय, राजनीतिक दृष्टि से प्रभावकारी हैं, परन्तु सिनेमा, टेलीविजन आदि का साहित्य पर उत्साहवर्ध्दक और संतोषप्रद प्रभाव नहीं पड़ा है। सस्ते प्रचारात्मक साहित्य तथा सिनेमा ने मनोवेगों को निर्जीव बना दिया है, तथा जीवन की वास्तविकता से दूर पलायनवादी दिवास्वप्निल प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया है। वैयक्तिक और सामाजिक चिन्तन विशृंखल और

कुण्ठित हो गया है।[110] एजरा पाउण्ड के अनुसार, इन सब ने, सामाजिक सम्पर्क के माध्यम-भाषा को दूषित कर दिया है और जब भाषा दूषित हो जाती है, तब सामाजिक और वैयक्तिक ×¾Ö“ÖÖ¸-प्रक्रिया नष्ट हो जाती है।[111] †-नेय ने भी शब्द भेद से यही बात कही है - "संस्कृति का मूल आधार भाषा है, और भाषा का चरम उत्कर्ष साहित्य में प्रकट होता है। अत: साहित्य का पतन संस्कृति का और अंतत: जीवन का पतन है- मशीन-युग हमारे जीवन को सस्ता, घटिया और अर्थहीन बना रहा है।"[112] भाषा दूषण और वैचारिक ताज़गी के अभाव में, जैसा कि अ-नेय ने लक्ष्य किया है, "......केवल शब्द ही सस्ता नहीं हुआ है, उसका प्रयोग करने वालों का मानसिक जीवन भी उतना ही सस्ता हुआ है ...... [यही] हमारे आधुनिक जीवन की मौलिक समस्या है, और जिसका हल किये बिना हमारा भविष्य अंधेरा है।"[113]

जीवन की यांत्रिकता, जीवन गति की क्षिप्रता, आदमी की मशीन पर निर्भरता, आदमी और मशीन की स्पर्धा के कारण, व्यक्ति स्वातंत्र्य के लिए भी संकट उपस्थित हो गया है। सभी क्षेत्रों में केवल सतही संबंधों का विकास दिखाई देता है। मानव-जाति की जीवन धारा में, भीड़ में व्यक्ति मानो अपने ही लिए अजनबी हो गया है। प्रश्न है व्यक्तिÖ-स्वातंत्र्य की दिशा क्या हो? उसका आधार क्या हो ? यही वह समस्या है, जो आधुनिक-बोध के केन्द्र में है। यह प्रश्न आधुनिक-बोध को अधिक तीव्र और धारदार बनाता है।

उपर्युक्त विवेचन क्रम में, उन परिस्थितियों और कारणों का विश्लेषण किया गया है, जो नूतन भाव-बोध या आधुनिक दृष्टि के मूल में हैं। जीवन-दृष्टि न तो संकुचित सीमाओं में बँधी है और न तो एक सीमित परिधि में उसका विकास ही संभव है। आज के मनुष्य के सामने कुछ मूलभूत समस्याएँ हैं, और ये समस्याएँ भले ही किसी एक देश या समाज की उपज हों, परन्तु वे संपूर्ण विश्व के जीवनक्रम को अनुशासित और परिचालित कर रही हैं। युध्द, भले ही किसी खास भौगोलिक सीमा में लड़ा जाय, भले ही युध्दरत राष्ट्रों और उनके सक्रिय समर्थक राष्ट्रों के नागरिक मारे जाएँ, परन्तु युध्द से उत्पन्न परिस्थितियाँ समान रूप से सबके लिए भयावÖÆ ÆÖŸÖß हैं और सबको प्रभावित करती हैं। खतरा विश्व-शांति के लिए उपस्थित हो जाता है। दुनिया भर के तमाम शांतिप्रिय विचारक समान स्वरों में युध्द की भर्त्सना करने लगते हैं। इसराइल †Ö¸ †¸ब राष्ट्रों का संघर्ष, संघर्ष के पीछे अमेरिका और रूस की भूमिका, संघर्ष से उत्पन्न तेल-संकट और उसका जन-जीवन पर असर एक ताज़ा उदाहरण है। कहने का मतलब यह है कि आधुनिक भाव-बोध का उत्स किसी एक देश या समाज में नहीं ढूँढा जा सकता। उसके पीछे,

×¾ÖÀ¾Ö-स्तर पर जो भी घटनायें घट चुकी हैं, या घटित हो रही हैं, जो भी विचार प्रकाश में आ चुके हैं या आ रहे हैं, उन सबका हाथ है। परन्तु इसका आशय यह भी नहीं कि किसी देश या समाज का अपना व्यक्तित्व या अपना चरित्र नहीं होता। यानी देश या समाज विशेष की विशेष परिस्थितियों में इस नूतन भाव-बोध के नये पहलू ज़रूर सामने आ सकते हैं, परन्तु मूल दृष्टि तो समान ही रहेगी।

आधुनिकता के संबंध में उपर्युक्त समग्र विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिकता का अर्थ, प्रत्येक युग में, एक नया संदर्भ ग्रहण करता है। आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकीकरण, मात्र काल-सूचक शब्द ही नहीं हैं; अपितु समय-विशेष की दृष्टि, चिन्तन तथा परिवर्तन की दिशा के सार्थक प्रतीक हैं। आधुनिकता एक प्रक्रिया है, जीवन-दृष्टि है। प्रक्रिया ही नहीं ¯Ö×क्रया-बोध भी, जीवन-दृष्टि ही नहीं, दृष्टि-²ÖÖ¬Ö ³ÖÖ |

आधुनिकता का बोध वि-ान, औद्योगिक क्रांति, टॅक्नोलाजी तथा महायुध्दों आदि के परिणामों से प्रभावित है। मूलत: आधुनिकता वि-ान-¯Ö×¸üÖ †Öî¸ü ×¾Ö-ान-“ÖÖ×»ÖüÖ Æî | ×¾Ö-ान का प्रभाव, आधुनिक युग में मनुष्य मात्र के संपूर्ण जीवन पर पड़ा है। वि-ान तटस्थता में विश्वास करता है, उसकी प्रवृत्ति यथार्थपरक, तथ्यपरक होती है, उसका आग्रह विश्लेषण-¯Ö¸üीक्षण पर है। वि-ान ने सवेग, अनुभूति, और बुध्दि के बिलगाव और द्वन्द्व को जन्म दिया है। अत: आधुनिकता बोध को वै-ानिक कहने का अभिप्राय है- आधुनिक बोध में उपर्युक्त विशेषताओं की स्वीकृति। 'सवेग' †Öî¸ü '²ÖÖã¨ü' के द्वन्द्व के कारण अनेक परिवर्तन हुए। प्राचीन आदर्शो और मूल्यों को तिरस्कृत कर दिया गया , क्योंकि उनका संबंध आस्था और कल्पना से अधिक था। इसका परिणाम है- जीवन व्यापी मूल्य संकट, अकेलापन और अजनबीपन। क्योंकि आस्था और प्रेरणा के उत्स-प्राचीन आदर्शो और मूल्यों को हमने नाकाफी सिध्द कर दिया। वस्तुपरकता, तटस्थता और विश्लेषण की प्रवृत्ति, आज इस सीमा तक बढ़ गयी है कि वही विचार, हमें ग्राहय हैं, जो तर्क की कसौटी पर खरे प्रमाणित हो सकें। आज का मनुष्य चिंतन के अतिरेक से पीड़ित है।

आधुनिकता-²ÖÖ¬Ö ×¾ÖÀ¾Ö-स्तर पर घटित सांस्कृतिक रुग्णता, वै-ानिक, यांत्रिक सभ्यता, भौतिकवाद की विजय तथा मूल्य-विघटन की उपज है। आज का साहित्यकार दुनिया में किसी भी जगह हो, आधुनिकता के इस बोध से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। आधुनिकता का ÃÖ²Ö¬ध उस प्रश्नाकुल मनोवृत्ति से है जो यथार्थ जीवन की संगति पर बड़ी गहराई से विचार

करती है, जीवन स्थितियों की छान-बीन करती है। वर्तमान जीवन स्थितियों में मनुष्य ही आधुनिकता का सबसे पहला कन्सर्न है। प्रजातांत्रिक आदर्शों और मूल्यों में विश्वास के कारण, आज की समूची व्यवस्था, मानव-जीवन को अधिक से अधिक सुख-सुविधामय और अनुकूल बनाने के लिए कृतसंकल्प है। मनुष्य ही जीवन के केन्द्र में है। इस मनोवृत्ति के कारण जहाँ मानवतावाद को नया आयाम मिला है, वहाँ दूसरी ओर व्यक्तिवाद और अहम् का बोध भी जाग्रत हुआ है।

स्पष्टत: आधुनिकता बोध अपने समाज या परिवेश के यथार्थ के विश्लेषण-चित्रण तक सीमित न होकर, सार्वभौम जीवन-दृष्टि का पर्याय बन गया है।

ÃÖ¤³Ö ÃÖ“Öß

१. डॉ.उर्मिला मिश्र : आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ.-01
२. वेबस्टर : थर्ड न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी, वोल्यूम-2 , ¯Ö.-1452
३. डॉ.नगेन्द्र (सं.) : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.-427,428
४. मधुमति, जनवरी १९८१, पृ.-38
५. बृहत् हिन्दी कोश, पृ.-126
६. सूर्यप्रकाश विद्यालंकार : सप्तकत्रय:आधुनिकता एवं परम्परा, ¯Ö.-23
७. डॉ. नगेन्द्र (सं.) : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.-427,428
८. लक्ष्मीकांत वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान, पृ.-248,54
९. नित्यानंद तिवारी : आधुनिकता:एक दृष्टि, नयी कविता अंक-7, ¯Ö.-58
10. ¾ÖÆß, ¯Ö.59
११. जगदीश गुप्त : आधुनिकता और मानवतावादी दृष्टि, नयी कविता अंक-7, ¯Ö.-67
१२. गिरिजाकुमार माथुर : नयी कविता की सीमायें और संभावनायें, पृ.-105
१३. युगेश्वर :भारतीय आधुनिकता, कल्पना-191, ¯Ö.-11
१४. इन्द्रनाथ मदान : आधुनिकता और साहित्य, कल्पना-174, ¯Ö.-40
१५. केदारनाथ अग्रवाल : आधुनिकता, नयी कविता:समस्या और समाधान, कल्पना-157, ¯Ö.42,43
१६. परमानन्द श्रीवास्तव : हिन्दी तथा आधुनिकता का प्रश्न, कल्पना-133

१७. डॉ.देवराज : आधुनिकता का अर्थ, कल्पना-132, ¯Öé.-26,28

१८. गंगाप्रसाद विमल : आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में,पृ.-09

१९. रमेशकुन्तल मेघ : आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, पृ.-74

२०. अखिलेश्वरलाल श्रीवास्तव-आधुनिकीकरण के सूचक भारतीय समाज वि-ाान, समीक्षा, अंक:ग्रीष्म-¿Ö¸¤-1969-70,¯Öé.-48

21. ¾ÖÆß, ¯Öé.-45

22. ¾ÖÆß, ¯Öé.-48

२३. बलदेव वंशी : आधुनिक हिन्दी कविता में विचार,पृ.-89

२४. साधना शाह : नई कहानी में आधुनिकता-²ÖÖ¬Ö, ¯Öé.-36

२५. रामधारीसिंह दिनकर : आधुनिक हिन्दी कविता ´Ö ×¾Ö“ÖÖ¸ü, ¯Öé.-9

२६. धनंजय वर्मा : आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय, पृ.१८०

२७. गंगाप्रसाद विमल : आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में, पृ.-21

२८. रमेशकुंतल मेघ : आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण

२९. गंगाप्रसाद विमल : आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में,पृ.-74

30. ¾ÖÆß, ¯Öé.-23

३१. आलोचना, जनवरी,मार्च-1984, ¯Öé.-5

३२. डॉ.उर्मिला मिश्र : आधुनिकता और मोहन राकेश ,पृ.-4

३३. रमेशकुंतल मेघ : क्योंकि समय एक शब्द है, पृ.-4

३४. गंगाप्रसाद विमल : आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में, पृ.-9

35. ´Ö¬Ö´Ö×ŸÖ, ±ú¸¾Ö¸ß-2000,¯Öé.-12

३६. गिरिजाकुमार माथुर : नई कविता की सीमाएँ और संभावनाएँ, पृ.-106

३७. डॉ.रमेशकुंतल मेघ : आलोचना ३४, सन-1966 ‡., ¯Öé.-16

38. ¾ÖÆß, ¯Öé.-16

३९. डॉ.नगेन्द्र : आलोचना ३४, जुलाई-1966,¯Öé.-10

४०. डॉ.जगदीश गुप्त : नई कविता-7,¯Öé.-63

४१. डॉ.नगेन्द्र : आलोचना ३४, जुलाई-1966, ¯Öé.-14

42. ¾ÖÆß, ¯Öé.-14

४३. डॉ.इन्द्रनाथ मदान : कविता और कविता, पृ.-4

४४. डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी : नई कविता, पृ.-44

45. ›Ö.¸Ö´ÖÃ¾Ö¹ý¯Ö “ÖŸÖ¾Ö¤ß : हिन्दी नवलेखन, पृ.-226

46. ¾ÖÆß,¯Ö.-226

४७. रमेशकुंतल मेघ : आलोचना ३४, सन-1966, ¯Ö.-34

४८. डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल : -ानोदय (मई-1967), ¯Ö.-28

४९. डॉ.विजयेन्द्र स्नातक : चितंन के क्षण, पृ.५२

५०. डॉ.नगेन्द्र- : आलोचक की आस्था, पृ.-12

51. ›Ö.Æ.¯Ö.×«¾Ö¤ß : ³Ö™-म.श्या.जोशी, आलोचना(जुलाई-1967), ¯Ö.-32

५२. कमलेश्वर : नई कहानी की भूमिका,पृ.-163

५३. डॉ.रमेशकुंतल मेघ : आलोचना ३४, जुलाई-1966, ¯Ö.-26

५४. स.ही.वात्स्यायन : हिन्दी साहित्य:एक आधुनिक परिदृश्य, पृ.-45

५५. डॉ.विश्वनाथ नरवणे : आधुनिक भारतीय चिंतन (अनु.नेमिचंद्र जैन), पृ.-15

56. ¾ÖÆß,¯Ö.-16

57. ¾ÖÆß,¯Ö.-17

58. ¾ÖÆß,¯Ö.-17

59. ¾ÖÆß,¯Ö.-17

60. ¾ÖÆß,¯Ö.-17

६१. रामधारीसिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ.-537

६२. स.ही.वात्स्यायन : हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य,पृ.-45

६३. डॉ.नगेन्द्र : आलोचना, जुलाई-1966, ¯Ö.-9

६४. डॉ.रमेशकुंतल मेघ : आलोचना, जुलाई-1966, ¯Ö.-31

६५. डॉ.विश्वनाथ नरवणे : आधुनिक भारतीय चिंतन,(अनु.नेमिचंद्र जैन)पृ.-4

६६. डॉ.रामस्वरुप चतुर्वेदी : हिंदी नवलेखन,पृ.-226

67. ¾ÖÆß,¯Ö.-13

६८. स.ही.वात्स्यायन : आधुनिक साहित्य बोध,पृ.-34(¯Ö×¸ÃÖ¾ÖÖ¤)

६९. डॉ.इन्द्रनाथ मदान : निबंध और निबंध,पृ.-100

७०. डॉ.धर्मवीर भारती : आधुनिक साहित्य बोध (परिसंवाद),पृ.-6

७१. स.ही.वात्स्यायन : हिंदी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य,पृ.-18

७२. डॉ.देवराज : प्रतिक्रियाएँ, पृ.-206

7३. नरेन्द्र देव वर्मा : -ानोदय, जनवरी-1967,¯Öé.-18

७४. डॉ.नगेन्द्र : आलोचना ३४, जुलाई-1966,¯Öé.-13

७५. डॉ.देवराज : आधुनिक साहित्य बोध (परिसंवाद),पृ.-23

76. ¾ÖÆß,¯Öé.23

७७. डॉ.इन्द्रनाथ मदान : राष्ट्रवाणÖß(×ÃÖŸÖ²Ö¸ü,†ŒŸÖ²Ö¸ü-1968),¯Öé.-19

७८. डॉ.नगेन्द्र : आलोचना ३४, जुलाई-1966,¯Öé.-14

७९. डॉ.देवराज : प्रतिक्रियाएँ,पृ.-13

80. ›Ö.Æ.¯Ö.×«¾Ö¤üß : आधुनिक साहित्य बोध (परिसंवाद),पृ.-5

८१. डॉ.इन्द्रनाथ मदान : राष्ट्रवाणी (सितंबर, अक्तुबर-1968),¯Öé.-18

८२. नरेन्द्र मोहन : आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ,पृ.-19

८३. विष्णु प्रभाकर : कलाकार के तत्त्व, पृ.-90

८४. रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य,पृ.-119

85. ¾ÖÆß,¯Öé.-109

८६. त्रिभुवन सिंह : साहित्यिक निबंध,पृ.-626

८७. नेमिचन्द्र जैन : दृश्य अदृश्य,पृ.-86

८८. स.ही.वात्स्यायन : त्रिशंकु, संस्कृति और परिस्थिति,पृ.-16

८९. रामधारीसिंह दिनकर : साहित्य में आधुनिकता बोध,शुध्द कविता की खोज, पृ.२१३

९०. बोरिस फोर्ड (सं.): द माडर्न एज,पृ.-21

91. ¾ÖÆß.¯Öé.-21

९२. एनसायक्लोपिडिया ब्रिटानिका, वोल्यूम-18,¯Öé.-112,113

९३. डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का वक्तव्य : द्वितीय महायुध्दोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, ¯Öé.-5,6

94. ¾ÖÆß,¯Öé.-5,6

95. ¾ÖÆß,¯Öé.-50

96. ¾ÖÆß,¯Öü.-51

97. ¾ÖÆß,¯Öü.-50,51

९८. रामधारीसिंह दिनकर : शुध्द कविता की खोज, पृ.-239

99. ¾ÖÆß,¯Öü.-250

१००. बोरिस फोर्ड (सं.): द माडर्न एज,पृ.-23

१०१. धीरेन्द्र वर्मा (सं.): हिन्दी साहित्य कोश , भाग१,पृ.-773

102. ¾ÖÆß,¯Öü.-773

१०३. रामकृष्ण मणि त्रिपाठी : द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, हिन्दी साहित्य कोश,भाग१,पृ.३७७

104. ¾ÖÆß.¯Öü.-378

१०५. कु.प्रीति अग्रवाल : मनोविश्लेषण, हिन्दी साहित्य कोश, भाग१,पृ.६१५,६१६

106. ²ÖÖê×¸ÃÖ ±úÖê›Ô (ÃÖÓ.): द माडर्न एज, पृ.-23

107. ¾ÖÆß.¯Öü.-36

108. ¾ÖÆß.¯Öü.-67

१०९. स.ही.वात्स्यायन : त्रिशंकु,पृ.-23

११०. बोरिस फोर्ड (सं.) : द माडर्न एज, पृ.-38

111. ¾ÖÆß.¯Öü.-38

११२. स.ही.वात्स्यायन : त्रिशंकू,पृ.-23

113. ¾ÖÆß,¯Öü.-21

द्वितीय अध्याय

उषा प्रियंवदा की रचनात्मक चेतना का विकास

द्वितीय अध्याय

उषा प्रियंवदा की रचनात्मक चेतना का विकास

नारी स्वतंत्रता के इस युग में नारी का चतुर्मुखी विकास प्रारंभ हुआ। नारी ने पूर्णरूपेण आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। संविधान ने उसे समानाधिकार भी प्रदान कर दिये हैं और नारी अपना पृथक् व्यक्तित्व लेकर उन्नति की ओर अग्रसर हुई। साहित्य के क्ष्0¡0 ´0 भी उसने अपनी प्रतिभा के आलोक में नारी जीवन के कई अनछुये पहलुओं को उजागर किया है, जो अब तक पुरुष दासता की अंधियारी कोठरियों में न जाने कहाँ खो गये थे। नारी का इस प्रकार कलम उठाकर अपने विचारों की अभिव्यक्ति करना कई पुरुषप्रधान संस्कृति के ठेकेदारों को अखर गया किंतु अंततः उन्हें भी इन नारी प्रतिभाओं की महत्ता को स्वीकार करना ही पड़ा।

'हिंदी उपन्यास का भविष्य' ²0Ÿ0Ÿ0 हुए राजेन्द्र यादव ने लिखा था, "पुरुष कथाकारों की तरह अपनी स्थिति और नियति के प्रति सामाजिक-मानसिक रूप से प्रबुध्द इधर की कथा-लेखिकाओं के आने से पहले हिंदी कथा-साहित्य प्रायः हवाई, प्रियदर्शिनी और प्रदर्शनी नारियों से भरा रहा है। यह भी कहा जा सकता है कि सजीव व्यक्तिमव वाले नारी-पुरुष संबंधों के वास्तविक तनाव-लगाव और उन्हें निर्धारित करने वाले दबाव पहली बार सामने आ रहे Æ | ‡Ã0 दिशा में कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, निरुपमा, मालती जोशी के नाम लिये जा सकते हैं ..... हालाँकि सचमुच ही किसी प्रथम श्रेणी की रचना की †³0ß ³0ß ¯0तीक्षा है। लगता है, अपनी स्थिति, पुरानी यातनाओं और बंधनों के लिए ज़िम्मेदार पुरुष के प्रति कड़वाहट से मुक्त होने में शायद नारी कथाकारों को समय लगे .... लेखिकाओं को नारी के आज के व्यक्तित्व के अनुरूप पुरुष सीमा से अतिक्रमण तो करना ही होगा ..... इस समय तो सारा कथा-क्षेत्र प्रायः नारियों के हाथ में है, इसलिए उनसे प्रत्याशाएँ भी सबसे अधिक हैं।"[1]

'¯0²0¬¤' कथा लेखिकाओं के नाम तो गिनाए जा सकते हैं लेकिन उनकी रचनाओं को 'प्रथम श्रेणी की रचना' कैसे माना जाए? क्या यह औरतों को अभिव्यक्ति की पहल के प्रति पुरुष कड़वाहट और 'सारा कथा-क्षेत्र' अपने हाथ से निकलते जाने का क्षोभ और आक्रोश नहीं? औरतें 'पुरुष सीमा से अतिक्रमण' कैसे कर सकती हैं ? पुरुष प्रत्याशाओं पर खरा उतरने का खतरा या हौवा कब तक चलता या चलाया जा सकता है? 'अब और नहीं' †0¸ शायद कभी नहीं। मुक्तिबोध के शब्दों में पहले ही सम-न आ गया था (महिलाओं को भी)-

"†²0 †x³0व्यक्ति के सारे खतरे

उठाने ही होंगे

तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब”[2]

हम देखते हैं कि नारी वैदिक काल से ही बौध्दिक स्तर पर पुरुष के साथ-ÃÖÖ£Ö ¸ÆßÆ | यह एक शाश्वत सत्य है कि नियति और संस्कारों ने पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अधिक भावप्रवण एवं संवेदनशील बनाया है। जिसके आधार पर पुरुष हमेशा स्त्री की उपेक्षा करता है और उसकी इस कमज़ोरी का फायदा उठाने की कोशिश भी करता है। शारीरिक दृष्टि से नारी कमज़ोर भले ही रही हो लेकिन मानसिक और बौध्दिक दृष्टि से वह सामर्थ्यवान रही है। साहित्य-निर्मिति के क्षेत्र में स्त्री वैदिक काल से ही पुरुष के साथ-साथ योग देती रही है | ¾Ö¤Ö मे कई ऋचाएँ ऐसी हैं, जिनका सृजन नारी ने किया है और जिन्हें आज तक महत्वपूर्ण सम-ÖÖ जाता है। और हमेशा उन ऋचाओं का उल्लेख भी किया जाता रहा है। ऐतिहासिक काल से परम्परा की ओर दृष्टिक्षेप करते ही ऐसी अनेक नारियाँ आँखों के सामने तैर जाती हैं , जो समाज और परिवार से बहिष्कृत होकर भी अनेक कष्टों का मुकाबला करते हुए उत्कृष्ट साहित्य की निर्मिति कर सकीं हैं। इसका एक सशक्त और प्रभावशाली उदाहरण है- ‘´Öß¸Ö²ÖÖ‡’ |

युग परिवर्तन के साथ-ÃÖÖ£Ö Ã¡Öß-पुरुषों के सोचने-ÃÖ´Ö-ाने में अंतर आने लगा है। पुरुषों की नारी की ओर देखने की दृष्टि बदलती गई , परिणामस्वरूप स्त्री पर पुरुषों का परम्परागत पाश ढीला होता गया। स्त्री अपने बारे में स्वतंत्र रूप से सोचने लगी, स्त्री को अपने बंधन और मुक्ति का अहसास होने लगा। पीढ़ी दर पीढ़ी स्त्री की मन:स्थिति में भी अंतर आता गया।

स्वातंत्र्योत्तर काल में एक महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि आधुनिक शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन के कारण भारतीय नारियों में नवजागरण आया और वे अपने अस्तित्व और अधिकार के प्रति सजग हुईं। नारी जागरण की इस नई चेतना ने स्त्री को कार्य करने के अनेक नये क्षितिज भी प्रस्तुत किये। आधुनिक शिक्षा के कारण उसने कुछ हद तक आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता की माँग की। जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी में आने लगीं। कहा जा सकता है कि साहित्य के क्षेत्र में भी वह पुरुष से पीछे नहीं रहीं। स्वतंत्रता पूर्व-साहित्य में जहाँ केवल एक-दो स्थापित महिला साहित्यकार हुआ करती थीं, वहाँ स्वतंत्रता के पश्चात् ऐसी अनेकों महिला साहित्यकारों के नाम उभरकर सामने आए, जो पुरुष साहित्यकारों की तुलना में मात्रा या गुण किसी भी दृष्टि से पीछे नहीं दिखाई देती हैं। स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में साहित्य की ह¸

विधा में पुरुष साहित्यकार के साथ-साथ महिला साहित्यकारों का योगदान भी विशेष महत्वपूर्ण ¸ÆÖ Æ |

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में एक साथ कई महिला लेखिकाओं का आगमन हुआ | ´Ö®Ö ³Ö>Ö¸ß, शिवानी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, दीप्ति खण्डेलवाल, ममता कालिया, शशिप्रभा शास्त्री, मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, चित्रा मुद्‌गल आदि लेखिकाओं ने अपनी एक अलग उपस्थिति महसूस करायी । स्वातंत्र्योत्तर कथÖ-साहित्य को समृध्द बनाने में इन महिला लेखिकाओं का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ये लेखिकाएँ अपने इर्द-गिर्द जो भोगती हैं, महसूस करती हैं, उन्हीं का प्रतिबिम्बन इनकी रचनाओं में हुआ है । इसीलिए कुछ भी अस्वाभाविक, सायास या आउटडेटिड नहीं लगता।

आधुनिक कथाकारों की सुदीर्घ पंक्ति में जिन महिला-कथाकारों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है, उनमें उषा प्रियंवदा का नाम प्रमुख है। अंग्रेज़ी तथा हिंदी की बहुश्रुतता तथा ¤¿Ö-विदेश का अनुभव उनकी अपनी निजी निधि है । एक जागरुक महिला होने के कारण सामाजिक तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में समाज के बदलते-बिगड़ते-संवरते अनेक रूपों से वे पूर्णतया †x³Ö–Ö Æ |

आधुनिकता के प्रति विशेष आकर्षण होने के कारण लेखिका अपने समसामयिक युगबोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में रखकर उसे पूरी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करने का ÃÖ±úü»Ö प्रयास करती है। विविधता, सहजता और सरलता इनकी रचनाओं की प्रमुख विशेषता है । भाषा सहज, सरल और प्रभावशाली है। विदेशी प्रभाव के कारण इनकी कहानियों के साथ उपन्यासों में अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग प्रमुख रूप से मिलता है किन्तु यह स्वाभाविकता और पाठकीय विश्वसनीयता का भी तकाज़ा है।

उषा प्रियंवदा का कथा-साहित्य सामान्यत: सामाजिक तथा प्रमुख रूप से पारिवारिक जीवन से संबंधित है । मध्यवर्ग के पारिवारिक जीवन के यथार्थ एवं उनकी समस्याओं को लेखिका ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। उनके कथा-साहित्य में शहरी परिवारों के बड़े ही अनुभूतिप्रवण चित्र हैं और आधुनिक जीवन की उदासी, ऊब, अकेलापन, अजनबियत, विडम्बना एवं संत्रास आदि का अंकन करने में उन्होंने अत्यंत गहरे यथार्थ-बोध का परिचय दिया है। संख्या की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम रचनाएँ होते हुए भी उनमें ÃÖÆ•ÖŸÖÖ, ÃÖ¸»ÖŸÖÖ, x¾Öx¾Ö¬ÖŸÖÖ और मार्मिकता का जो भाव मिलता है वह इनकी रचनाओं की अपनी प्रमुख विशेषता है। उनके

संबंध में डॉ.संतबक्श सिंह का यह मंतव्य उल्लेखनीय है- “उषा प्रियंवदा ने देशी और ×¾Ö¤¿ÖÖß ¯Ö×¸¾Ö¿ÖÖ ´Ö Ã¡ÖÖß-पुरुष के संबंधों को व्यक्त किया है। इनके प्रस्तुतीकरण में शिष्टता, भावाभिव्यक्ति में वैचारिक गरिमा, भावुकता में बौध्दिक अनुशासन और सर्वत्र शिक्षित संतुलित दृष्टि दिखाई पड़ती है। इन्होंने कृतिकार की ईमानदारी के साथ जीवनानुभव की प्रामाणिकता को कथा में उतारा है।”[3]

२.१ जन्म, बचपन एवं पारिवारिक परिवेश :

उषा प्रियंवदा एक चर्चित कथाकार रही हैं लेकिन उन्होंने अपनी जीवनी के बारे में कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। उनके मन में एक अजीब-सा डर बैठ गया था कि यदि वह वाग्देवी की कृपा को अस्वीकार करती हैं तो एक शब्द भी नहीं लिख पाएँगी। अत: वह कभी अपने विषय में लिखती नहीं है। वैसे कहीं छुट-पुट लिखा है तथा कुछ संस्मरण हैं उसी के आधार पर हम उनके व्यक्तित्व से रु-²Ö-रु हो सकते हैं।

आधुनिक हिन्दी महिला कथाकारों में विशिष्ट उषा प्रियंवदा जी का जन्म २४ दिसम्बर, १९३० को कानपुर में सक्सेना कायस्थ के एक प्रतिष्ठित एवं शिक्षित परिवार में हुआ। इनकी माताजी का नाम प्रियंवदा और पिताजी का नाम दामोदर सक्सेना है। दो पीढ़ियों पहले इनका ¯Ö×रवार आर्यसमाजी हो गया था और प्रगतिशील विचारों के कारण कन्या-शिक्षा का पक्षधर रहा। इनके प्रतिभासम्पन्न भाई, शिब्बन लाल सक्सेना पक्के गाँधीवादी थे। उस युग में जब लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता था, इनकी चाची और बड़ी बहन ने न केवल स्कूल जाकर ‘एन्ट्रेंस’ पास किया बल्कि कॉलेज जा कर उच्च शिक्षा भी प्राप्त की। दुर्भाग्य से बचपन में ही इन के पिता की मृत्यु हो गयी थी। लेकिन माँ के पुस्तक-प्रेम का प्रभाव उषा जी पर इतना गहरा हुआ कि बचपन से ही पढ़ने-लिखने का चाव पैदा हो गया।

१९४२ के ‘3ÖÖ¸ÌÖ ”Ö>Ö’ आन्दोलन में जब इनके भाई जेल चले गये तो ये अपने बड़े संयुक्त परिवार में चाचा, चाची, भाई, भतीजों के साथ रहने लगीं। वहीं पर संयुक्त परिवार के गहरे पारिवारिक संस्कारों का प्रभाव पड़ा। १९४३ और १९४७ के बीच का समय इनके चरित्र निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण है। आज़ादी के बाद इनके भाई जेल से रिहा हो चुके थे और संविधान सभा के सदस्य बन कर दिल्ली में रहने लगे थे और उषा जी भी दिल्ली में रहने लगी

थीं । यहाँ उषा जी का परिचय देश के महान नेताओं से हुआ और उनके साथ समागम होने लगा ।

२.२ शिक्षा एवं वर्तमान स्थिति :

उषा प्रियंवदा ने अध्ययन के लिए १९४९ में प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया । वहाँ अपनी बड़ी बहन तथा जीजाजी के परिवार के साथ रहते हुए उषा जी प्रयाग के पन्त, बच्चन, फ़िराक, श्रीपत राय जैसे महान लेखकों और कवियों के सम्पर्क में आयीं । वे 'ÃÖx¸ŸÖÖ' ´Ö नियमित रूप से लिखती थीं, परन्तु उस से संतोष न पा कर '¯ÖÜŸÖ' ¿ाीर्षक से लिखी एक कहानी कल्पना में भेजी, जो छपी भी । इस कहानी से उषा जी साहित्य के उच्च स्तर पर पहुँच गयीं और तभी से अपने नाम के आगे अपनी माँ के नाम को जोड़ दिया । अर्थात् तब से उषा ÃÖŒÃÖना उषा प्रियंवदा हो गयीं ।

उषा जी अपने संबंध में लिखती हैं- "वैसे नाम तो उषा सक्सेना है पर मेरी प्राय: सभी रचनाएँ उषा के नाम से प्रकाशित हुई हैं। बचपन से ही पढ़ने की ओर विशेष रुचि थी। †Ö¸ जो भी कुछ हाथ लगा, सम-ा में आया या नहीं पढ़ डाला। कुछ बड़े होने पर मेरी पाठ्य-सामग्री का चुनाव मेरे परिवार वालों ने किया । परिवार में सभी उच्च शिक्षित तथा साहित्यानुरागी हैं | ´Ö¸ß शिक्षा के विषय चुनने और समय-समय पर प्रेरणा देने का श्रेय भी गुरुजनों तथा परिवार वालों को है । शिक्षा के दौरान में और रुचि के कारण भी मैंने विदेशी लेखकों को काफी पढ़ा है। मैं उन कथाकारों की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुई जिन्होंने वर्तमान जीवन के विभिन्न पक्षों और तत्कालिक सामाजिक समस्याओं पर लिखा, जैसे टाल्सटाय, गोर्की, जेन ऑस्टेन, गाल्सवर्दी, हार्डी, डी.एच.लॉरेन्स, सोमरसेट माँम, स्टाइन बेक, हेमिंगवे आदि । हिन्दी कथा-साहित्य की यथार्थवादी धारा से मैं काफी प्रभावित हुई और उसमें प्रेमचंद तथा यशपाल, अ-ेय मेरे प्रिय लेखक हैं । मेरी विशेष अभिरूचि कथा साहित्य की ओर है और शायद इसीलिए मेरा रचनात्मक क्षेत्र उसी तक सीमित है।"**4**

उषा जी ने १९६१ में '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' की रचना की और उसी साल इनका सर्व प्रसिध्द उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' प्रकाशित हुआ । भले ही इस रचना से हिंदी कथा-साहित्य में नारी-विमर्श न शुरु हुआ हो, लेकिन नारी-उपन्यास-लेखन की आधार-शिला इन्हीं के हाथों

रखी गयी। श्रीपत राय ने इस पर कहा कि ‘तुम पहुँच गयी हो’। और यह लेखन-कार्य का सिलसिला इसी तरह आगे चलता रहता अगर अमेरिका में फुलब्राइट की छात्रवृत्ति उन्हें न मिली होती। इसके पहले उषा जी ने अंग्रेजी साहित्य में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए.किया और पी-एच.डी. की। विषय था - ‘१८८५ से १९३६ के हिन्दी उपन्यासों पर अंग्रेज़ी का प्रभाव’। उषा जी ने लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली में तीन साल तक और तत्पश्चात् प्रयाग विश्वविद्यालय में, अमेरिका जाने से पहले तक, अध्यापन भी कियÖÖ |

और जब अमेरिका के इण्डियाना विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य पर डिग्री के लिए अध्ययन कर रही थीं और अभी दो साल ही बीते थे कि विस्कौन्सिन विश्वविद्यालय के तत्कालिक ³ÖÖ¸ŸÖ-विद्या संस्थान के आमंत्रण पर वे मैडीसन चली गयीं। और तब से वहीं पर भारतीय एवं हिन्दी साहित्य का अध्यापन करने लगीं। यह ध्यान देने की बात है कि उषा जी ने अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन किया, फिर भी अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण उषा जी ने हिंदी में लिखना श्रेयष्कर माना। उनका स्वयं का ही कथन इस संदर्भ में दृष्टव्य है - “इतनी दूर आकर अपने संदर्भ से कटकर भी, मैं लेखन और हिन्दी और भारŸÖ ÃÖê •Ö›ß Æ‡ Æ | कि हिन्दी ही मेरी भाषा है और यदि कुछ ‘¾ÖÖ£ÖÖ¾ÖÆÖ‡»ÖÖ’ ´Ö–ासे लिखा जाएगा तो हिन्दी में ही।”[5] उनके मन में दुविधा बनी रही, भारत और पश्चिम का संघर्ष हमेशा घेरे रहा। और उनकÖ कहना है कि उनका लेखन उस व्यक्ति की मनोवृत्ति से जन्म ले रहा है जो इस बात के पश्चाताप से त्रस्त है कि वह अपने घर, अपने देश वापस न जा सकेगा। यह लेखन ‘नौस्टेल्जी’ का नहीं है, गहरे संताप का है।

अब उषा जी ने भारतीय भाषाओं और संस्कृति-संस्थान से अवकाश ले लिया है और अध्ययन तथा मनन में तल्लीन रहने के साथ कुछ बागवानी भी करने लगी हैं। ‘•Öीवन के संघर्ष में भूलों और उपलब्धियों के बीच टकराते हुए जो कुछ लेखन हो जाता है, वह ऊब और जड़ता से बचने का अच्छा साधन है’, इसी विश्वास से वे निरंतर पढ़ती-लिखती रहती हैं।

2.3 ¾ÖÖ¾ÖÖ×Æक जीवन :

उषा जी का विवाह किम विल्सन से हुआ। उषा जी ने किम से कब और कहाँ प्यार किया? वह भारत में पनपा या अमेरिका में ? एक दूसरे की ओर आकर्षित होने के क्या कारण थे

? आदि बातों पर कहीं कुछ नहीं लिखा। उनके पति हार्वर्ड युनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर हैं। दोनों एक दूसरे से १६०० मील की दूरी पर रहते हैं। उषाजी की सहेलियों को यह बात अखरती है, उनके अनुसार उषाजी को अपने प्रोफ़ेसर पति के साथ मजे से रहना चाहिए। किन्तु उषाजी को यह स्वीकार नहीं है। वास्तव में यह स्त्री-अस्मिता का प्रश्न है। उनके अनुसार - "स्त्रियों ने यह अधिकार ग्रहण कर लिया है कि वे अपने जीवन की कर्णधार स्वयं बने।"[6]

यह एक आधुनिक स्त्री के आधुनिक विचार हैं । उषाजी को ये स्वतंत्र विचार पारिवारिक विरासत के रूप में प्राप्त हुए हैं। वह लिखती हैं - "शायद मेरी शिक्षा और मेरा पालन-पोषण इस प्रकार किया गया जिसमें मु-ने संपूर्ण स्वतंत्र विचारों और धारणाओं वाला व्यक्ति बनने का अवसर मिला। जब वर्षो पहले फुलब्राइट फेलोशिप पर आगे पढ़ने के लिए †¾ÖÄÖ¸ ×´Ö»ÖÖ ŸÖÖ ´Ö–ने किसी की आ-ना लेने की ज़रुरत नहीं पड़ी। जब मैं यहाँ रह गई, तो परिवार में शोक हुआ, पर किसी ने भारत लौट आने के लिए दबाव नहीं डाला, बल्कि सबसे शुभकामनाएँ ही मिलीं।"[7]

उषा जी जब पहली बार अपने पति के परिवार से मिलने फिनलैंड गयीं तब उन्हें •ÖÖ अनुभव आये उसे उन्होंने बड़े ही सुंदर ढंग से यात्रा संस्मरण के अंतर्गत लिखा है। उषाजी के पति का परिवार सघन वनों और -ीलों के देश फिनलैंड में बसा है। उनके पति के परिवार में Ã¾ÖßÖ×›¿Ö †Öर फिनिश दोनों ही भाषाओं का संगम पाया जाता है। उनका पूरा परिवार हेलसिंका में रहता है। परन्तु गर्मियों में पूरा परिवार ग्रिल्लशर में रहता है। बाल्टिक सागर में ¤¸-दूर तक छोटे-²Ö› «ß¯Ö बिखरे हुए हैं। फिनलैंड में अपनी सामर्थ्यानुसार द्वीप खरीदकर उस पर लकड़ी की कॉटेज बनवा लेते हैं। उषाजी के पति का जो द्वीप था वह चारों तरफ से सागर से ×‘Ö¸Ö Æ†Ö £ÖÖ।

उषा जी और किम दोनों भिन्न संस्कृति, भिन्न देश से जुड़े होने के बावजूद एक दूसरे के साथ मजे में रहते हैं। इतना ही नहीं किम के परिवारवालों ने भी उषाजी को सहर्ष स्वीकार कर लिया है। उषाजी को इस पर आश्चर्य होता है। वह लिखती हैं - "किम का बचपन मु–ÖÃÖ कितना भिन्न बीता है। इस सागर, -ीलों और चीड़ के वनों के बीच, द्वितीय महायुध्द के नीचे, उसकी तुलना में मेरा बचपन कितना घटनाहीन लगता है। मैं कानपुर जैसे भीड़ भरे नगÖ¸ ´Ö मिल की चिमनियों के धुएँ से मटमैले आकाश के नीचे पली हूँ। पर कितने सहज भाव से सब ने ´Ö–ने स्वीकार कर लिया है, जैसे मु-न में कुछ भी फर्क या नवीन नहीं है।"[8]

^ÂÖü •ÖÖß ¯Ö×ÝÖ ÃÖ ¤ü¸ü ¿ÖÖ¸üकड में अकेली रहती हैं। बालबच्चे हैं नहीं। उनका वैवाहिक जीवन अन्य दम्पतियों के समान नहीं है। उसमें न किसी प्रकार की नोक--ोंक है, न –Ö–Ö»ÖÖÆ™, न परेशानियाँ। बल्कि पति-पत्नी में तालमेल एवं ÃÖ´Ö–दारी दिखाई पड़ती है। उषा जी के अनुसार, "शायद हम लोग अलग-अलग शहरों में, विश्वविद्यालयों में और विभागों में हैं इसलिए सर्वदा साथ रहनेवाले दंपतियों की तरह छोटी-"Ö™ß –Ö-ालाहटें, दिन-Ö-रात की परेशानियाँ और एक-दूसरे से ऊब हमारे संबंधों में नहीं है। इसलिए हम एक-दूसरे की मन:स्थिति को पहचानते भी हैं और एक-दूसरे को स्पेस या छूट भी देते रहते हैं, अपने-अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने को।"[9]

उषा जी को कई बार अवहेलना भी सहनी पड़ी। क्योंकि अमेरिका में अलग-अलग रंग के लोगों के साथ अलग-अलग व्यवहार करने की पध्दति है। जब कभी वह अपने पति के साथ ²ÖÖÆर निकलतीं उनके साथ अलग तरह का आचरण किया जाता। वह लिखती हैं, "‡ÃÖ×»Ö‹ जब हम साथ होते हैं, योरोपीय पुरुष होने के नाते मेरे पति को हमेशा सद्भावना और शिष™ ¿Ö²¤ü Æß ×´Ö»ÖÖÝÖ Æï †Öü ´Ö-ने मिलती है अवहेलना या अव-ÖÖ।"[10]

भारतीय होने के कारण उषा जी को अमेरिका में कई बार परेशानियों का सामना करना पड़ता था। शाकाहारी होने के कारण उन्हें पार्टियों में नहीं बुलाया जाता था, साड़ी पहनने के कारण सबकी नज़रें उन्हीं को घूरती। इतना ही नहीं लोंगों के प्रश्नों से तंग आकर उन्होंने बिंदी लगाना भी छोड़ दिया है। किन्तु उनके पति योरोपीय होने से उनके लिए कोई समस्या नहीं थी। उनके प्रति सबका आचरण भी अच्छा था, इसीलिए उषा जी को कभी-कभी अपने पति से ईर्ष्या ÆÖÝÖß - "क³Öß-कभी मु-ने पति से ईर्ष्या होती है, यद्यपि वह भी मेरी तरह अमेरिका म ×¾Ö¤ü¿Öß Æï हैं, परन्तु योरोपीय और पुरुष होने के कारण उन्हें इस परिवेश में रसने-बसने में बिल्कुल कठिनाई नहीं हुई।"[11] क»Ö-मिलाकर हम केवल इतना कह सकते हैं कि भिन्न परिवेश, प्रदेश एवं ÃÖस्कृति से होने के बावजूद उनका दाम्पत्य जीवन सफल रहा है।

भले ही उषा जी अमेरिका में बस गयी हों किन्तु अभी भी उनका मन पूर्णत: भारतीय है। उनके अनुसार "भारतीय होना उनकी अस्मिता का एक †×³Ö®Ö †¿Ö Æ।"[12] ‡ÃÖ×»Ö‹ ¾ÖÆ कहती हैं - "बोस्टन में भी अपने घर और पति के होने पर भी मेरे स्वप्नों में भारत और वहाँ का परिवार, मैडिसन के अपने उत्तरदायित्व कभी भी जड़ें नहीं जमाने देता।"[13] ‡ÃÖß×»Ö‹ ¾Ö ²ÖÖ¸ü-बार भारत आती रहती हैं, क्योंकि "²ÖÖ¸ü-बार भारत लौटना मेरे लिए एक अनिवार्यता है।

परिवार के साथ घिरकर बैठना, सुख-दुःख बाँटना, पुरानी मित्रों से लंबे-»Ö²Ö ¾ÖÖŸÖÖ»ÖÖ¯Ö, Æ¸ समय अपनी भाषा सुनने का सुख, यह सभी मु-े नई प्रेरणा से भरता रहता है ।"[14]

२.४ रचनात्मक प्रेरणा :

बचपन से ही उषा प्रियंवदा पर सरस्वती की कृपा बनी रही । उन्हें उर्दू कवि फ़िराक, रघुवीर सहाय, पंत, बच्चन, श्रीपत राय आदि से स्नेह एवं प्रोत्साहन मिलता रहा जिसने उनके अंदर की सर्जना को पुष्टि दी । उषा प्रियंवदा के शब्दों में "शायद उस विशिष्ट विद्यार्थी जीवन ने ही मेरी जीवनधारा को गति दी । बच्चन जी का कविता पाठ, पंतजी के घर की शामें, फिराक साहब का अप्रत्याशित लाड़, श्रीपतजी का लेखन के लिए प्रोत्साहन-यह निर्मल वर्मा कौन हैं जिनकी कहानी आपने छापी है? मु-े याद है अपना प्रश्न, जिसके उत्तर में उन्होंने कहा था, 'ŸÖ´Ö ³Ößß ¤Ö - मैं छापूँगा' - मेरे जीवन का एक महत्वपूर्ण क्षण था । शायद तब 'ÃÖ×¸ŸÖÖ' ´Ö कहानी छपाने और अपना नाम देखने का चाव समाप्त हो गया था, और 'कल्पना', 'कहानी', 'क¾×ŸÖ' में उषा प्रियंवदा ने जन्म लिया था ।"[15]

उषा जी के पास इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य में पी-<"Ö.>ß. की डिग्री है । इलाहाबाद विश्वविद्यालय और लेडी श्रीराम कॉलेज में अंग्रेज़ी की प्रोफ़ेसर भी रह चुकी हैं । तीस सालों से अधिक वे अमेरिका जैसे अंग्रेज़ी भाषी समाज में रह रही हैं । वे चाहतीं तो आसानी से अंग्रेज़ी में अपना लेखन-कार्य कर सकती थीं । मीराँबाई औ¸ ÃÖ¸¤ÖÃÖ ¯Ö¸ अंग्रेज़ी में लिखा भी है और अनुवाद भी किये हैं । लेकिन अपने रचनात्मक साहित्य का माध्यम उषा जी ने हिन्दी को ही चुना है । भारत-भूमि और हिन्दी प्रदेश से हज़ारों मील दूर रहते हुए भी उनका मन हिंदी भाषा और साहित्य से सम्पृक्त है । भारत में रहते हुए भी अनेक भारतीय अपनी भाषा में न लिख कर अंग्रेज़ी में लिखते हैं । ऐसा करना न तो देश-भक्ति के विरुध्द है और न भाषा- प्रेम के अभाव की वजह से । यह प्रश्न अपनी-अपनी वरीयताओं (Choices) का है और अपने भाषिक माध्यम में रुचि का है ।

उषा प्रियंवदा के लेखन का शुरुआती दौर 'ÃÖ×¸ŸÖÖ' में प्रकाशित होने वाली कहानियों से ¯ÖÖ¸ंभ हुआ । जो १९५० के बाद ही प्रकाश में आया । १९५६ से प्रारंभ नई कहानी आन्दोलन में इनका अप्रतिम स्थान व बेहद चर्चा रही है एवं तत्कालीन तमाम पत्र-पत्रिकाओं में

भी निरंतर इनकी कहानियाँ प्रकाशित होती रहीं। जिनमें नई कहानियाँ, कहानी, प्रयाग, आकाशवाणी, कल्पना, सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान व धर्मयुग आदि पत्रिकाओं का ज़िक्र बहुधा किया जाता है। १९५० से १९६० तक के दौर की उनकी विभिन्न कहानियों में से कुछेक बेहद चर्चित एवं प्रशंसित भी रहीं जिनसे उनकी ख्याति क्रमश: बढ़ती गई। १९६२ में प्रकाशित उनका पहला उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' ने तो सभी का ध्यानाकर्षित किया †Ö¸ ^ÂÖÖ ×¯Öयंवदा हिंदी के श्रेष्ठ कथाकारों की पंक्ति में विराजमान हो गईं।

उनकी सृजनशीलता ने तब करवट बदली जब कि उन्होंने विदेश प्रस्थान किया। सातवें दशक के बीच में व आठवें दशक की शुरुआत में प्रकाशित उनके कहानी संग्रह व उपन्यास उनके उसी विदेशी परिवेश की उपज हैं। परिवेश बदला तो भावभूमि व चिन्तन आयामों में भी परिवर्तन होना लाज़िमी ही है। उनके लेखन की पृष्ठभूमि में साफ तौर पर प्रवास की भनक भी इस बात का प्रामाणिक दस्तावेज़ है। स्वाभाविक सा तथ्य था कि विदेश प्रवास के दौरान ही उन्होंने विविध देशों की यात्राएँ कीं और वहाँ रह रहे भारतीयों व विदेशी पात्रों की मन:स्थितियों व गतिविधियों का सूक्ष्म निरीक्षण करके अपनी कहानियों में अनुभूत सत्य की प्रामाणिक अभिव्यक्ति दी।

स्पष्ट है कि उषा प्रियंवदा का व्यक्तित्व दो भिन्न-भिन्न परिवेशों में रहकर विकसित हुआ। यही कारण है कि उनका लेखन भी वैसा ही वैविध्यता से भरपूर है। पृष्ठभूमि में विदेशीपन का आना तो स्वाभाविक है, किन्तु वैदेशिक भूमि पर भारतीयों की मानसिकता का सूक्ष्म वर्णन लेखिका ने इस कुशलता से किया है, कि कहानी की 'कथ्य' गत गहराई के साथ-साथ अनुभूत सत्य को व्यक्त करने हेतु शिल्पगत कलात्मक कुशलता का पैनापन भी बेहद प्रभावी रहा है। लेखिका के व्यक्तित्व के संदर्भ में यह तो सीधी सी बात है कि उषा प्रियंवदा का मूलत: भारतीय सरोकार के बावजूद वैदेशिक चिंतन प्रभावों का गहरा असर लेखन में आना रचनात्मक अनिवार्यता के रूप में मान्य है। क्योंकि भारतीय चिंतन प्रभावों को लिये लेखिका के अमेरिकी प्रस्थान के बाद उसके चिंतन धरातलों ने भिन्न-भिन्न स्थितियों-परिस्थितियों को देखा, परखा †Ö¸ ÃÖ´Ö—ÖÖ। ज़ाहिर है कि लेखिका के व्यक्तित्व के ये विभिन्न प्रतिबिम्ब उनके कृतित्व में †×³Ö®ÖµÖ: देखे जा सकते हैं। जबकि लेखिका ने लेखन में पात्रों के मनोविश्लेषण हेतु पूरी अनुभूति प्रवणता के साथ यथार्थ जीवन का चित्र प्रस्तुत किया और अपने चारों ओर की ऐसी

दुनिया को, परिवेश को और तत्कालीन व्यक्तियों की समस्याओं को सम-ाकर उनको अपने लेखकीय व्यक्तित्व के साथ तादात्म्य जोड़कर 'अभिव्यक्ति' प्रदान कीं।

नि:संदेह लेखिका के निजी व्यक्तित्व से जुड़े ऐसे प्रभावों का अंकन उनकी कहानियों में आना बेहद लाज़िमी था। जिससे उनके व्यक्तित्व की बौध्दिकता की परख, परिवेश की सजगता व ईमानदारीपूर्ण किया गया चित्रण, सूक्ष्म संवेदना परक दृष्टि जो उनके व्यक्तित्व के विभिन्न अंग हैं एवं जिसका स्पष्ट प्रभाव उनकी कहानियों पर पड़ा-पूर्ण स्वाभाविकता और रचनागत परिवेश की ईमानदारी के तौर पर मौजूद रहा। स्पष्ट है कि उषा प्रियंवदा का व्यक्तित्व उनके कृतित्व में भिन्न-भिन्न रूपों के साथ प्रतिफलित हुआ जिसमें सर्वत्र उनकी अनुभूति से जुड़ी ईमानदारी का बोध एक गहरी छाप छोड़ने में पूर्ण सफल रहता है। लेखन की सार्थकता भी इसी बिन्दु से अपना सरोकार रखती है।

२.५ हिन्दी कहाऩीß ´Öê ¯Ö¾Öê¿Ö :

उषा प्रियंवदा की सर्व प्रथम कहानी सरिता में प्रकाशित 'लाल चूनर' £Öß | [16] उसके बाद की तीन साल की अवधि तक उन्होंने तमाम कहानियाँ लिखीं। तत्कालीन समस्त पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कहानियाँ निरंतर प्रकाशित होती रहीं। 'कहानी' पत्रिका में १९६० में 'ज़ि»Ö Æü< ¤¸ü¾ÖÖ•Öê' <¾Ö´Ö 'नई कहानियाँ' पत्रिका में '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' कहानी प्रकाशित हुई। 'नई कहानियाँ' 1961 ´Öë 'एक कोई दूसरा' ¾Ö 1963 ´Öë '<कं †Öî¸ü ×¤üÖ¤ü' कहानियाँ प्रकाशित हुईं तो कल्पना, धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान जैसी अनेकों पत्र-पत्रिकाओं में १९६० से लेकर १९७० के बीच में इनकी तमाम कहानियाँ प्रकाशित होती रहीं।

¾ÖÃÖ¼Öæ: उनका यह शुरुआती दौर 'नई कहानी आंदोलन' से अपना गहरा सरोकार जोड़ता है क्योंकि १९५० के बाद प्रारंभ हिंदी कहानी में 'नये' की सं-ाा जुड़ने जैसी परम्परा प्रारंभ हुई और जिसको १९५६ में भैरवप्रसाद गुप्त के संपादन में पत्रिका 'कहानी : नववर्षांक' में उठाया गया था। उषा प्रियंवदा का नाम उनके लेखन से जुड़े १९५६ से १९६५ के दशक में ही सुर्खियों मे छाया रहा। इसी दौर में इनकी चर्चित कहानी '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' का ज़िक्र भी किया जाता रहा है, जो अगस्त, १९६० में नई कहानियाँ पत्रिका में प्रकाशित हुई और जिस पर एक लम्बा ¯Ö×¸üÃÖÓ¾ÖÖ¤ü 1962 'वार्षिकांक' ´Öë 'कहानी : अच्छी और नई' शीर्षक से उठाया गया जिस पर

ÿवभिन्न विद्वानों के मत और सम्मतों से जुड़ी टिप्पणियाँ महत्वपूर्ण हैं। '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' कहानी को »Ö´²Ö-चौड़े चर्चा के बिन्दु पर लाया गया। इस संदर्भ में इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है - "‡ÃÖ ŸÖ¸Æ आधुनिकता के बोध को लेकर 'नयी कहानी' का आंदोलन उषा प्रियंवदा की कहानी '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' के आधार पर बाकायदा चलाया गया। गजाधर बाबू के रिटायर होने की वापसी पर इनकी दूसरी ¾ÖÖ¯ÖÃÖß ´Ö, •Ö²Ö ¾ÖÆ 'Ö¸ ´Ö ´ÖÆ´ÖÖन बन जाता है , अजनबी हो जाता है, आधुनिकता का बोध नज़र आने लगा। .... इस परिसंवाद में कलम के हर सिपाही सिपहसालार ने अपना-अपना योग दिया।"[17]

इसी कहानी से चर्चित उषा प्रियंवदा का लेखन अनवरत रूप से जारी रहा। 'नई कहानियाँ' पत्रिका की मई १९६३ में प्रकाशित कहानी - 'एक और बिदाई' तक इनका विदेश प्रवास आरंभ हो गया था। १९६६ में प्रकाशित संग्रह 'एक कोई दूसरा' ¾Ö 1971 में प्रकाशित संग्रह 'कितना बड़ा –ÖŠ' भी इनके चर्चित कहानी संग्रह हैं जिन पर स्पष्टत: इनके विदेश '¯Ö¾ÖÖÃÖ' की –लक मौजूद है। विदेश में रहकर भारतीय संस्कृति के साथ वैदेशिक संस्कृति को समेटना, आत्मसात करना उतना मुश्किल नहीं है जितना मुश्किल है '¯Ö¾ÖÖÃÖ' में रह रहे भारतीय मानस के द्वन्द्वों को सच्चाई के साथ उभार कर रख देना। '¯Ö¾ÖÖÃÖ' में रह रहे भारतीयों के मन में जहाँ Ã¾Ö¤¿Ö ¾ÖÖ¯ासी की ललक रहती है एवम् अपने भारतीय संबंधियों के बीच पुन: रहने की जहाँ लालसा रहती है, वहीं पर यह भी स्पष्ट है कि '×¾Ö¤¿Ö' में रहने के दौरान भारतीय पात्रों का वैदेशिक संस्कृति से प्रभावित होना स्वाभाविक हो जाता है, जिससे एक स्वाभाविक सी प्रक्रिया के तहत बननेवाली सृजनात्मकता का परिणाम इस रूप में होता है कि ऐसे पात्रों का संघर्ष, मन:स्थितियों का उठ रहा द्वन्द्व-प्रतिद्वन्द्व ही कहानियों के मूल स्वर के रूप में उभर कर सामने आता है। यही बात उषा प्रियंवदा के लेखन में भी सत्य है। जैसा कि 'संचेतना' पत्रिका के १९७१ के अंक में भी उषा प्रियंवदा के बारे में इसी बात की ओर संकेत दृष्टव्य है - "संस्कृतियों का प्रभाव पड़ना तो लाज़िमी है। जब कोई एक संस्कृति से उठकर किसी दूसरी संस्कृति की ओर भागता है। इसीलिए पति-पत्नी के बीच 'डायवोर्स' जैसी चीज़ आ टपकती है। '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' ÃÖ 'प्रतिध्वनियाँ' तक के दौर में उषा प्रियंवदा की सभी कहानियों में (प्राय:) रूढ़ियों, मृत परम्पराओं, जड़ मान्यताओं पर मीठी-मीठी चोटों की ध्वनि निकलती है। घिरे हुए जीवन की ^²ÖÖÃÖß ‹¾Ö´Ö ^¤Öसी उभरती है। आत्मीयता और करुणा के स्वर फूटते हैं। इतना होने के बावजूद भारतीय परिवेश इनकी कहानियों को अभारतीय नहीं बनाता।"[18]

स्पष्ट तौर पर यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उषा प्रियंवदा की कहानियों की यात्रा काफी लम्बे समय से जारी रही है। विविध कहानी आंदोलनों के दौर में उषा प्रियंवदा का महत्व तो उनके 'नई कहानी आंदोलन' द्वारा ही सामने आया है जबकि इनकी कहानियाँ x¾Ö¿Ö¬¤ भारतीय परिवेश से अपना गहरा सरोकार जोड़े हुए, बदलती हुई विभिन्न परिस्थितियों में यथार्थ से जुड़ाव व अनुभव की प्रामाणिकता के साथ सामने उपस्थित होकर बदलते मूल्यों को स्वर देती Æ। सन १९६० के बाद कहानी विषयक तमाम विविध आंदोलनों से इनका जुड़ाव कहाँ तक रहा ? या ये आंदोलन मात्र नए-नए नामों का -ागड़ा लिये ही समुपस्थित थे ? यह देखना काफी है। हाँ, यह सर्वसत्य पहलू है कि उषा प्रियंवदा की कहानियाँ जीवन से जुड़े आज के ही व्यक्ति के अनुभव की यात्रा है, किन्तु परिवेश विषयक भिन्नताएँ कमोबेश रूप में सर्वत्र मौजूद रहती हैं।

२.६ विविध कहानी आंदोलन और उषा प्रियंवदा :

स्वातंत्र्योत्तर भारत में नवोन्मेष के प्रारंभिक बिंदुओं को हम कहानी विधा में सर्वप्रथम नई कहानी अभिधान के रूप में देखते हैं जिसने कथ्य और शिल्पगत नूतनता के साथ ही साथ कहानी विषयक तमाम चर्चाओं की शुरुआत की। आगे के दौर में कहानी विधा ने कई मुद्राएँ बदलीं और कई आंदोलनों से अपना रूपाकार ग्रहण करते हुए भिन्न-भिन्न तेवरों के साथ प्रस्तुत किया।

दरअसल १९६० के बाद से देश की परिस्थितियाँ भी काफी विषम होती जा रही थीं। चीनी आक्रमण से उत्पन्न असंतोष, सूखा-अकाल आदि से उत्पन्न आर्थिक समस्याएँ, इनसे बढ़ता आक्रोश और जनता का क्षुब्ध रूप, देश में वैचारिकता के क्षेत्र में बढ़ रहा वामपंथी दल का प्रभाव आदि तमाम वे प्रमुख घटनाएँ रहीं हैं जिसने साहित्य में नवलेखन को बढ़ावा दिया। नि:संदेह हिन्दी कहानी ने भी परिवर्तन की करवट यहीं से लेना प्रारंभ किया। इसे अगर विकास-प्रक्रिया से जोड़कर, सहजता का नाम देकर, विभिन्न कहानी आंदोलनों के खेमों में खड़ा कर देखा जाए तो कैसा रहेगा ? विचारणीय मुद्दा है।

नई कहानी चर्चा के बाद हमारे सामने कहानी विषयक आंदोलनों का एक लम्बा क्रम सामने आता है जिसे कभी तो समयबध्द विभाजन से जोड़कर देखा जाता है तो कभी नये-नये नामों का जामा पहना दिया जाता है। नाम का ज़िक्र किया जाए तो नई कहानी के अलावा इसे

सचेतन कहानी, अकहानी, समांतर कहानी, सार्थक कहानी और समकालीन कहानी जैसे विविध नाम देकर पृथक रूप में पहचान हेतु आंदोलनों का नाम भी प्रत्येक कहानी विधा के शीर्षक के साथ जोड़ा गया है। 'नई कहानी आंदोलन' लगभग १९५० से प्रारंभ होकर १९५५-५६ तक पूर्णत: प्रतिष्ठित होकर कहानी क्षेत्र में छा जानेवाले आंदोलन के रूप में उभरकर सामने आता Æ | 'नयेपन' †Ö¸ 'समय' को लेकर वाद-विवाद यहाँ भी बहुत है लेकिन यह आंदोलन सर्वाधिक प्रसिध्दि प्राप्त हिन्दी कहानी के इतिहास में नवजागरण का आह्वानकारी आंदोलन के रूप में उभर कर सामने आता है।

इसके बाद सचेतन कहानी की चर्चा की शुरुआत डॉ.महीप सिंह द्वारा की गई। '†Ö¬ÖÖ¸' ®Öê 'सचेतन कहानी विशेषांक' (नवम्बर १९६४) इस आंदोलन का प्रमुख स्त्रोत माना •ÖÖŸÖÖ Æ | 'संचेतना' पत्रिका के सम्पादन द्वारा भी महीपसिंह ने सचेतन कहानी को चर्चा व बहस का विषय बनाकर कहानी विषयक विभिन्न समीक्षाएँ, मान्यताएँ प्रस्तुत कीं। इस दौर के कहानीकारों में महीपसिंह के अतिरिक्त सुदर्शन चोपड़ा, वटरोही, रामकुमार भ्रमर, मनहर चौहान, ममता कालिया, श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी, कुलदीप वग्गा आदि का नाम भी लिया जाता रहा है। संचेतना के 'दो दशक कथायात्रा: मूल्यांकन' विशेषांक में महीपसिंह ने कहा सचेतन आन्दोलन ने नई कहानी की समीक्षा में व्याप्त अराजकता की तीव्र प्रतिक्रिया की जहाँ कुछ लोग अपने आप को स्थापित करने के लिए मनमानी व्याख्या दे रहे थे। इसी पत्रिका के आगे लिखा गया ह - "सचेतन कहानी ने कभी एक ही तरह की बातों को नहीं दोहराया। उसने जीवन के अनेक क्षेत्र, व्यक्ति के अनेक पहलू और मानव मन के अनेक कोनों में -ाँककर बारीकियों को पकड़ा और गहरी सू-Ö - 2Ö-ा के साथ अभिव्यक्त किया।"[19] इस प्रकार १९६० के बाद सचेतन कहानी चर्चा का केन्द्र रही, तो दूसरी ओर १९६२-६३ तक रवीन्द्र कालिया आदि द्वारा अकहानी आन्दोलन की भी हल्की सी चर्चा रही, जो शीघ्र ही विलुप्त भी हो गयी।

कमलेश्वर द्वारा चलाया गया 'समांतर कहानी' का भी ज़िक्र बहुधा किया जाता है। कथा पत्रिका 'सारिका' के 'समांतर कहानी विशेषांक' समांतर गोष्ठियों आदि के प्रतिपादक-प्रतिष्ठापक कमलेÀ¾Ö¸ «Ö¸Ö 'समांतर कहानी' पर ज़ोर दिया गया। "इस आंदोलन की शुरुआत १९४८ से मानी जाती है।.... सन १९७१ से १९७८ तक समान्तर कहानी आन्दोलन और एक समान वैचारिकता से जुड़े हुए लोग सामाजिक और आर्थिक वैचारिकता के स्तर पर आपसी x¾Ö"ÖÖ¸-विमर्श के लिए मिलते रहे।"[20] कमलेश्वर द्वारा की गई शुरुआत के साथ जुड़े हुए

लोगों में कामतानाथ, जितेन्द्र भाटिया, मधुकर सिंह, डॉ.विनय, इब्राहीम शरीफ आदि का नाम बहुधा लिया जाता है। यहाँ पर भी कहानी में आम आदमी से जुड़ने के आग्रह की बात व समांतर समय सापेक्षता विषयक यथार्थ से जुड़े संदर्भों की बात सामने आयी। जो कोई चौंकाने ¾ाली नई बात कहीं भी नहीं लगी। हाँ, यह ज़रूर है कि सारिका पत्रिका द्वारा कुछ नये हस्ताक्षरों ने ज़रुर कहानी साहित्य की समृध्दि की।

'समकालीन कहानी' का नाम भी सातवें और आठवें दशक के बीच में अक्सर लिया जाता है, तथा अब तक की कहानियों को भी 'समकालीन कहानी' धारा से जोड़कर देखा जाता Æ | 'समकालीन' ¿Ö²¤ ³Öß ¾ÖÃŸÖãŸÖ: 'समय सापेक्ष' शब्द है यही कारण है कि एक समयावधि के बाद आगे क्या नाम दें? जैसे प्रश्न उठना स्वाभाविक है। 'संचेतना' के दिसम्बर १९७८ के अंक में चर्चा के दौरान समकालीन कहानी पर विचार प्रकट करते हुए डॉ.गोविंद रजनीश लिखते हैं - "समकालीन कहानी-अपनी सर्जनात्मक उपलब्धियों से कहानी के मूल ढाँचे में परिवर्तन करते हुए नयी ज़मीन की तलाश में रही है। ठहराव की स्थिति को नकारते हुए उसकी सोच, मानसिकता और जीवन बोध में गहरा बदलाव नज़र आता है। जीवन के बदलते हुए मूल्यों के संकट को महसूसते हुए अस्मिता की पहचान का दायित्व उसने पूरी तरह निभाया है।"[21]

इस दायित्व को रामदरश मिश्र, दूधनाथ सिंह,काशीनाथ सिंह, महेन्द्र भल्ला, -ानरंजन, गोविन्द मिश्र, सतीश जमाली, शानी, मृदुला गर्ग, मणिका मोहिनी, मृणाल पाण्डेय आदि के नामों द्वारा पूरी तरह उठाया गया है। समकालीन कहानीकारों का लेखन सातवें, आठवें या फिर सीधे नौवें दशक से ही प्रारंभ होता है, जो कि अनवरत रूप से अब तक ³Öß •ÖÖ¸ß Æ | दरअसल इन कहानीकारों ने व्यक्ति को विभिन्न रूपों में देखकर उसके अंतर्बाह्य संघर्षों का ¯Ö¸ŸÖ-¤¸-परत उद्‌घाटन पूरी निर्ममता के साथ किया। तथा समय की यथास्थितियों से अपना सरोकार भी निरंतर रूप से बनाये रखा। वैसे देखा जाय तो समकालीन कहानीकारों की एक लम्बी लिस्ट है, जिसको भुनाने की वरीयता की अपेक्षा, सार्थकता पर ध्यान देना ही महत्वपूर्ण है |

‡ÃÖ ŸÖ¸Æ ¯Ö´Ö“Ö¤ ÃÖê ¿Öरु की गई कहानी की यह लम्बी यात्रा निरंतर जारी है। कहानी विषयक तमाम आन्दोलनों के आँकड़ों को देने के बाद अक्सर इनके नामकरण व उपलब्धि विषयक सवाल दिमाग में उठने लगते हैं। तब यह देखना भी स्वाभाविक है कि कहानी विषयक

दी गई तमाम सं-ााओं की अर्थवत्ता कहाँ तक सार्थक है ? साथ में उषा प्रियंवदा का सरोकार कहाँ तक इनसे मेल खाता है ?

जैसा कि स्पष्ट है कि हर छोटी-²Ö>ß ¯Ö¡Ö-पत्रिकाओं के विशेषांकों द्वारा व उनके सम्पादकों द्वारा नए-नए रूपों में नए-नए नामों की शुरुआत की गई। तत्कालीन विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ नए-नए अभिधानों से सुसज्जित जान पड़ती हैं। अक्सर एक बात और भी देखी गई कि कभी-कभी एक साथ ही कई कहानीकार कई आंदोलनों से जुड़े रहते हैं। कहीं-कहीं दशकों के मूल्यांकन के घेरे में नए कहानीकारों की चर्चा सामने आती है, या कहानी विषयक प्रवृत्तियों में किसी छोटी सी बात को नए का जामा पहनाकर नूतन आंदोलन में मढ़ दिया गया है। लगता है, मानों हर आंदोलन अपना-अपना -ण्डा थामे साहित्य की कहानी विधा कßü ¸ÖÆ पर अपना जुलूस लेकर चल रहा हो,.... मात्र ख्याति और प्रचार हेतु।

दरअसल, सत्य तो यह है कि कहानी की ज़मीन जनजीवन की ज़मीन होती है, जहाँ यथार्थ के बिना रचना की सृजनशीलता ही असंभव है। कहानी गत अभिव्यक्ति में न तो कहीं इन नारों की ज़रुरत है, न ही आत्मप्रदर्शन की। सीधी सी बात है कि कहानी की कसौटी को आज के जीवन पर ही कसा जा सकता है, तभी उसकी 'सार्थकता' विषयक मुद्दा कहानीकार की अनुभूतियों को लेकर प्रामाणिक बन सकेगा। इस हेतु यह देखना ज़रूरी है कि अभिव्यक्ति विषयक दृष्टि कहाँ तक प्रासंगिक बन पड़ी है?

जहाँ तक उषा प्रियंवदा के नाम को आंदोलनों से जोड़ने-न-जोड़ने की बात है, सच तो यह है कि इनके लेखन की शुरुआत व विकास 'नई कहानी आंदोलन' के दौर से जुड़ी है। ज़ाहिर है कि 'नये' के संदर्भ में उन्होंने कहानी विषयक अभिव्यक्ति में जिस बृहत्तर जीवन संदर्भो को उठाया है, उनमें व्यक्ति के आंतरिक स्पन्दनों को ही अधिक गहराई से महसूस किया गया है। हाँ, यह ज़रुर है कि संघर्ष के दौर में भी इनके पात्र कहीं न कहीं से मुक्ति का द्वार खोज कर प्रगतिशील दृष्टिकोण से अपना नाता जोड़ते नज़र आते हैं, परन्तु यह देखना भी बाकी है कि आम व्यक्ति की प्रतिष्ठा उनमें कितनी है ?

इस दृष्टि से देखने पर स्पष्ट है कि इनकी कहानियों में साधारण से साधारण व्यक्ति के जीवन पर दृष्टि उतनी सूक्ष्म और पैनी नहीं बन सकी है जितनी समकालीन या अन्य कहानी आंदोलन विषयक संदर्भो में है। इस कारण अन्य किसी कहानी आन्दोलन विषयक विशिष्टŸÖÖ के अभाव में इन्हें किसी अन्य आंदोलन के कटघरे में बंद नहीं किया जा सकता। हाँ, आधुनिक

जीवन की विसंगतियों पर इनकी नज़र ज़रूर गई है - इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। नये जीवन मूल्यों की वकालत के साथ समसामयिक परिवेश विषयक सच्चाइयाँ सर्वत्र दृष्टव्य हैं, जहाँ कहानी-विधा विषयक परम्परागत ढाँचे का निषेध व अभिव्यक्ति की नूतनता को सर्वत्र बनाये रखने में लेखिका पूर्णत: सफल रही है, यह एक उल्लेखनीय बात है।

२.७ उषा प्रियंवदा की रचनाएँ :

उषा प्रियंवदा की गणना हिंदी के उन कथाकारों में होती है, जिन्होंने आधुनिक जीवन की ऊब, छटपटाहट, संत्रास और अकेलेपन को अनुभूति के स्तर पर पहचाना तथा उनका अंकन करने में अत्यंत गहरे यथार्थबोध का परिचय दिया है। उनके कथा-साहित्य में शहरी परिवारों के बड़े ही अनुभूतिप्रवण चित्र हैं। एक नारी होने के नाते उन्होंने नारी जीवन के कई अनछुए पहलुओं को प्रकाश में लाने का कार्य किया है। वास्तव में उनका कथा-साहित्य नारी-जीवन की त्रासद स्थितियों का ऐसा बयान है, जिसे शायद ही किसी सबूत की ज़रूरत हो। उनके नारी-चरित्र स्वयं एक सबूत बनकर हमारे सामने आ खड़े होते हैं। उन्होंने ऐसे हर चरित्र के भावनाशील मनोजगत और आत्मद्वंद्व को बारीकी से पढ़ने-परखने का कार्य किया है और चाहा है कि वह साहस और संघर्ष से अपनी दारूण नियति को बदलने में कामयाब हो।

उषा प्रियंवदा ने अपने साहित्य में आधुनिक काल में हो रहे मूल्य विघटन को यथार्थता से चित्रित किया है। आज का मानव पथभ्रष्ट हो गया है। समाज परिवेश में स्थित अनेक कारणों ने मूल्यों को चकनाचूर कर दिया है। पाश्चात्य सभ्यता एवं भौतिक साधनों के भूलभुलैया में वह जकड़ गया है। उषा प्रियंवदा ने इसी स्थिति का यथार्थ चित्रण अपने साहित्य में किया है, ताकि पाठक आनेवाली समस्याओं के प्रति सचेत हो जाए। आधुनिक युग में उषा प्रियंवदा का साहित्य पथप्रदर्शक सिध्द हो सकता है इसमें कोई संदेह नहीं है।

उषा प्रियंवदा ने कहानी एवम् उपन्यास विधा में अपनी कलम चलायी है। उन्होंने जिन कहानियों और उपन्यासों से हिंदी साहित्य की श्रीवृध्दि की है वे इस प्रकार हैं :

कहानी-संग्रह :

1) फिर बसन्त आया (१९६१)

2) ज़िन्दगी और गुलाब के फूल (१९६१)

3) एक कोई दूसरा (१९६६)

4) कितना बड़ा –ÖŠ (1966)

5) मेरी प्रिय कहानियाँ (१९७४)

6) शून्य तथा अन्य रचनाएँ (१९९६)

अन्य कहानियाँ :

1) लाल चूनर

2) अपना-अपना भाग्य

3) अभाव की आँधियाँ

4) ¤Ö¸ÖÆÖ

5) सूनसान खंडहर

6) बाजे की धुन, मन के तार

7) अवलम्बन

8) †¯Ö¸Ö×•ÖŸÖÖ

9) नागफनी के फूल

10) खुले हुए दरवाज़े

11) प्रश्न और उत्तर

12) बनवास

13) एक और बिदाई

14) अध्यापक

15) ÃÖÖ¤Ö

16) “ÖÆÖ¸¤ß¾ÖÖ¸ß

17) केवल इतवार को नहीं

उपन्यास :

1) पचपन खम्भे लाल दीवारें (१९६2)

2) रुकोगी नहीं राधिका (१९६७)

3) शेष यात्रा (१९८४)

4) †ÿÖ¾Ö¿ÖÛ (2000)

5) भया कबीर उदास (२००७)

इसके अतिरिक्त भारतीय साहित्य, लोककथा एवं मध्यकालीन भक्ति काव्य पर अनेक लेख जो अंग्रेज़ी में समय-समय पर प्रकाशित हुए। मीराँबाई और सूरदास के अंग्रेज़ी अनुवाद साहित्य अकादमी, नई दिल्ली ने पुस्तक रूप में प्रकाशित किए। उन्होंने आधुनिक हिंदी कहानियों के भी अनुवाद किए।

२.७.१ कहानी-संग्रह :

2.7.1.१ फिर बसन्त आया :

यह उषा प्रियंवदा का पहला कहानी संग्रह है। इसमें वे कहानियाँ संकलित हैं जो उनके प्रारंभिक दौर में 'ÃÖ×¸ÿÖÖ' पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। संग्रह की पहली कहानी 'मेनका:रं³ÖÖ:^¾Ö¿ÖÛ' विवाह की समस्या को लेकर लिखी गई है। विनोद की चाची स्वयं अत्यंत खूबसूरत है। अत: वह अपने तीनों बेटों के लिए सुंदर बहुएँ लाना चाहती है। किन्तु परिस्थितियाँ ऐसी करवट बदलती हैं कि उसका सपना सपना बन कर रह जाता है। बड़ा बेटा विदेश पढ़ने के लिए जाना चाहता है। इसलिए सुंदर लड़की को ठुकराकर पैसों के लिए एक काली असुंदर लड़की से विवाह कर लेता है। दूसरे बेटे के लिए सुंदर लड़की ढूँढी जाती है किन्तु वह लड़की बीमार पडने से तथा उसके भाई की मृत्यु से, विवाह आगे बढ़ा दिया जाता है। डेढ़ वर्ष प्रश्चात् विवाह होने पर चाची की आशाओं पर पानी फिर जाता है, क्योंकि रवि की बहू बहुत मोटी हो जाती है। तीसरे बेटे के लिए सुंदर लड़की की तलाश फिर से होती है किन्तु अंतत: अनाथ, फूफा के घर पलनेवाली असुंदर लड़की के प्रति ममत्व एवं सहानुभÖ×ÿÖ ÃÖ "ÖÖ"ÖÛ और रवि का ह्लदय भर आता है और रेखा से रवि का विवाह निश्चित होता है। इस प्रकार

चाची इन तीनों बहुओं को ही मेनका, रंभा एवं उर्वशी मानकर अपनी नियति को स्वीकार कर लेती है। कहानी आदर्श का मुखौटा ओढ़े है।

'¤ÖÃÝÖ' कहानी भी विवाह के प्रसंग पर आधारित है किन्तु पहली कहानी से पृथक है। अजय के जीवन में अपने दोस्तों का महत्वपूर्ण स्थान है। वह दोस्तों पर जान छिड़कता है। यह बात सुरेखा को अच्छी नहीं लगती। वह बार-बार अजय को उसके दोस्तों के लिए कोसती रहती है। सुरेखा को लगता है कि अजय के जीवन में उससे ज्यादा उसके दोस्तों का स्थान है। किन्तु ¤ीपा के विवाह के अवसर पर जब अजय के पैर की हड्डी टूट जाती है और वह कुछ भी कर पाने में असमर्थ होता है तब विवाह की पूरी ज़िम्मेदारी उसके दोस्त उठाते हैं और सफलतापूर्वक विवाह संपन्न कराते हैं। प्रस्तुत कहानी में उषा प्रियंवदा ने दोस्ती के महत्व को उजागर किया Æ |

'†Ö×ÁÖÝÖÖ' कहानी में उषा प्रियंवदा ने अनमेल विवाह की समस्या को उठाया है। मधु, चाची के यहाँ आश्रिता है और अपना दयनीय जीवन व्यतीत करती है। उसके माँ-बाप न होने से उसे कई दु:खों को -ोलना पड़ता है। उसका दु:ख शेखर से देखा नहीं जाता, अत: वह मधु से विवाह का प्रस्ताव रखता है, अपने माता-पिता को भी मना लेता है। किन्तु उसकी चाची ज़बरदस्ती मधु का विवाह एक चालीस वर्षीय विधुर से कर देती है। अंत में कहानी पाठकों के ह्लदय को -ाक-ाोर देती है और एक हल्की-ÃÖß ™ßÃÖ ”Ö> •ÖÖÝÖß Æ |

'मान और हठ' कहानी में दिव्या का विवाह मुकुल से हो जाता है। दिव्या अत्यंत सुंदर है। उसने विवाह से पूर्व अपने पति को नहीं देखा है। किन्तु जब पहली बार अपने काले कुरूप पति को देखती है तो उसके मन में घोर वितृष्णा जाग जाती है। वह अपने पति को छोड़कर पढ़ाई करने लगती है। जहाँ पति में पुरुषत्व का हठ है, वहीं पत्नी में अपने सौंदर्य का मान । 'मान और हठ' के इस संघर्ष में कोइ -ुकना पसंद नहीं करता। मुकुल दूसरा विवाह करता है। और दिव्या पूना में नौकरी करने लगती है। आठ साल बाद पत्नी की मृत्यु के पश्चात् मुकुल वापस दिव्या की शरण में आ जाता है। पुरुषत्व का हठ टूट जाता है और स्त्रीत्त्व का मान भी। दिव्या मुकुल और उसके शिशु को सहर्ष स्वीकार करती है।

'नष्ट नीड़' यह एक प्रेम कहानी है। समीर के लिए रीना से विवाह का प्रस्ताव आता है किंतु समीर उस प्रस्ताव को अस्वीकार करता है। रीना का विवाह अन्यत्र तय होने पर उसे अपने प्रेम का एहसास होने लगता है। रीना भी उससे उतना ही प्रेम करती है। समीर रीना के

पिता से विवाह रोकने की बिनती करता है। किंतु रीना के पिता अपनी पोज़ीशन के डर से रीना का विवाह करा देते हैं। इसी कारण समीर के सपनों का नीड़ नष्ट हो जाता है। नौकरानी मीना के प्रेम का भी मोहभंग हो जाता है।

‘¯ÖÙŸÖ’ शीर्षक से उषाजी की दो कहानियाँ हैं। दूसरी कहानी ‘ज़िंदगी और गुलाब के ±Öü»Ö’ संग्रह मे संकलित है। इस प्रेम कहानी में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि प्रेम में जाति, वर्ण, उम्र कोई मायने नहीं रखते, महत्वपूर्ण है केवल भावनाएँ। सौम्या के माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी देखभाल उसके पिता के मित्र एवं पूर्व बिज़नेस पार्टनर विजय करता है। वह सौम्या के लिए आलोक को पसंद करता है। किंतु आलोक सौम्या की बहन रीटा से विवाह कर लेता है। विजय सौम्या से २० साल बड़ा होने के बावजूद सौम्या उससे प्रेम करती है और अपने भाव उसके सम्मुख प्रकट भी करती है। क्योंकि विजय ही वह व्यक्ति है जिसने सौम्या के क्षुधित ह्रदय के अभावों की ‘¯ÖÙŸÖ’ अपने स्नेही स्वभाव से की थी।

‘नई कोंपल’ कहानी की नायिका बिन्नी का जीवन अत्यंत त्रासद है। दिन-रात काम करने पर भी उसे अपनी सास से केवल अपमान, तिरस्कार और फटकार ही मिलती है। इतना ही नहीं पति की ओर से भी रुखाई एवम् अवहेलना ही प्राप्त होती है। अपनी हीन भावना से दबी बिन्नी को किसी से कोई शिकायत नहीं है। अपने पति के प्रति प्रेम में भी वह कोई कमी नहीं आने देती। किन्तु सुबोध जब उसका लिखा हुआ पत्र पढ़ता है तो उसका ह्रदय पसीजता है। वह विवाह से पूर्व किसी और से प्रेम करता था और इसीलिए पत्नी के प्रति उसके ह्रदय में प्रेम-भाव नहीं था। किन्तु आज उसे अपने किये पर पछतावा होता है और वर्षा से सूखे उसके ह्रदयरुपी वृक्ष में एक नन्ही सी कोमल कोंपल फूट पड़ती है।

‘तूफान के बाद’ कहानी की नायिका अलका को अपने से उम्र में काफी बड़े, अपने भाई के मित्र अविनाश बाबू से प्रेम हो जाता है। दूसरी बिरादरी का और दुश्चरित्र वाला होने के कारण वकील बाबू लोकलाज और इज्जत के कारण अविनाश बाबू और अलका के विवाह को होने नहीं देते। अलका का जीत बाबू से विवाह करा देते हैं। यह अलका के जीवन में आया ŸÖæफ़ान था। किन्तु वही वकील बाबू अपनी बेटी का विवाह बिरादरी से बाहर कराते हैं। और अंत में अपने किये पर पछताते हुए अलका से माफी भी माँगते हैं। अलका बड़े भाई को माफ कर देती है क्योंकि अब तूफान के बाद केवल नीरव शांतता शेष है।

‘´ÖŒÜÖÖ †Ö¸ ¿Ö×¿Ö’ कहानी में शशि का विवाह विकास से कराने के लिए हर संभव प्रयास किया जाता है। किन्तु विकास मुक्ता से विवाह करता है। मुक्ता मातृहीन लड़की है। उसके नाज़नखरे उठानेवाला भी कोई नहीं। शशि का भाई मुक्ता और विकास के प्रेम को सम–Ö •ÖÖŸÖÖ है और अपनी ममेरी बहन का विकास से विवाह कराने में मदद करता है, जिसके कारण उसे माँ के ताने सुनने पड़ते हैं कि वह शशि से अधिक मुक्ता को चाहता है। कहानी में आदर्श का पुट है। यहाँ पर वैवाहिक मोड़ के बिन्दु पर पारिवारिक स्वार्थो के तुच्छ टकरावों को भी परिलक्षित किया गया है।

‘अकेली राह’ कहानी में धार्मिक मतवादों से उल-ते, हिन्दू-मुस्लिम धर्म के कारण असफल प्रेम के चित्रण द्वारा सामाजिक विसंगतियों पर चोट की है। जया आधुनिक विचारों की ¯Öœß-×लखी लड़की है। उसे विधर्मी रहमान से प्रेम हो जाता है। वे विवाह का निर्णय भी ले लेते हैं। जया के घरवाले इस विवाह का घोर विरोध करते हैं। नियति को भी यह विवाह मंज़ूर नहीं। रहमान की एक एक्सिडेंट में मृत्यु हो जाती है और जया जीवन की राह में अकेली हो जाती है। इसी तर्ज पर लिखी कहानी ‘बिखरे तिनके : नया नीड़’ भी है। ठाकुर और तिवारी खानदान के चलते यश और मणि का विवाह नहीं होने दिया जाता। मणि यश के बच्चे की माँ बन जाती है। यश को सूचना दी जाती है कि मणि की मृत्यु हो गई है। मणि नवजात शिशु को अनाथाश्रम में देकर नौकरी करने लगती है , किन्तु नये शहर में भी यश के पिता मणि को ज़लिल करते हैं, उसे लांछना देते हैं और उसे मिश्राजी के घर से निकाल बाहर करते हैं। इस प्रकार पुन: तिनके बिखर जाते हैं, और मणि नये नीड़ के निर्माण हेतु निकल पड़ती है।

‘फिर बसंत आया’ कहानी में आर्थिक व कुछ अन्य परिस्थितियों के कारण असफल प्रेम से उत्पन्न एकाकीपन और वैयक्तिकता का बोध नौकरीपरस्त अविवाहित लड़की द्वारा व्यक्त किया गया है। छाया और विनायक का प्रेम असफल होता है। विनायक का अन्यत्र विवाह हो जाता है और छाया भी नौकरी करने लगती है। परिस्थितियों के आगे दोनों भी विवश हो जाते हैं। आठ वर्ष पश्चात् दोनों की पुन: भेंट होती है और कहानी का अंत अविनाश की पूर्वपत्नी की मृत्यु के बाद उसके पुत्र हर्ष के माध्यम से एकाएक मिलने के द्वारा बसंत के पुनरागमन शीर्षक को सार्थकता में बाँधने का प्रयास किया Æ।

२.७.१.२ ज़िंदगी और गुलाब के फूल :

इस कहानी संग्रह में बारह कहानियाँ संकलित हैं। 'ˉ0̈¸´²0̈»0̈™¸' कहानी में एक गरीब ´0̈0̈-बाप को अपनी पुत्री के इलाज के लिए पैरम्बुलेटर बेचनी पड़ती है। इस कहानी में जीवन की विंसगति, निराशा, पीड़ा आदि का चित्रण हुआ है। 'मोहबन्ध' कहानी में दो स्त्री पात्र हैं - अचला और नीलू। नीलू कई पुरुषों के संपर्क में खुलती रहती है। ठीक इसके विपरीत अच»0̈0̈ Æ जो एक व्यक्ति से जुड़ती है और उसके टूटने पर अपने में ही टूटती चली जाती है।

'•0̈0̈»0̈' नामक कहानी में कौमुदी और राजेश्वर विवाह से पूर्व अपने-अपने एकांत में संतुष्ट और सुखी थे। परन्तु उनका नौकर और कौमुदी की नौकरानी जब विवाह कर लेते हैं तो वे भी विवाह कर लेते हैं। विवाह एक ऐसी व्यवस्था है, जहाँ दोनों एक-दूसरे को स्वतंत्रता देते हुए भी एक-दूसरे पर नियंत्रण रखना चाहते हैं। राजेश्वर इस बात को सम-न नहीं सकते। अकेलेपन के लिए कई बार विवाह संस्था भी ज़िम्मेदार होती है। इस कहानी में भी अकेलेपन का दंश देखा जा सकता है।

'छुट्टी का दिन' कहानी अकेलेपन के बोध को उजागर करती है। माया लखनऊ छोड़कर एक दूरदराज़ के इलाके में नौकरी करने जाती है। छुट्टी का दिन भी वह ठीक से नहीं गुज़ार सकती थी। कई बार उसे लगता है कि वह स्वयं को ही नहीं पहचानती। वह हमेशा खोयी-खोयी रहती है। न खाने का शौक है, न पहनने का। गाँव में रहनेवाली दूर की भाभी उससे ईर्ष्या करती है। सिनेमा भी उसके एकाकीपन को दूर नहीं कर सकता। उसे लगता है उसके ज़िन्दगी का एक-एक दिन ऐसे ही जायेगा और उसके जीवन का खालीपन और गहरा होता जायेगा।

'कच्चे धागे' कहानी की कुंतल अधिक नहीं पढ़ पायी, कारण भाई-बहनों की उस पर ×•0̈´´0̈¤0̈¸ी थी। उसके चारों तरफ अभाव ही अभाव हैं, परन्तु वह अपनी स्थिति को भूलकर असाधारण सपने देखती है। वह पडोस में आये संपन्न परिवार के एक युवक के प्रति आकर्षित हो जाती है, परन्तु विवाह की बात चलाए जाने पर युवक की बहन कुंतल के अर्थाभाव के कारण रिश्ते को नामंज़ूर कर देती है। कुंतल के इन्द्रधनुषी सपने उसकी सप्तरंगी चूड़ियों के समान टूटकर बिखर जाते हैं।

'¤0̈ †-0̈¸' की कौशल्या अपने छोटे अभावग्रस्त एकान्त में अपने पति के साथ परम सुखी थी। परन्तु उसका पति उसके सहज प्राप्त शरीर के आगे किसी और के अप्राप्त शरीर की खोज

में निकल पड़ता है। उसी प्रकार की स्थिति उसकी बहन सुमित्रा की है। जिसका प्रेमी शंकर उसे बिना कोई निर्णय दिए चला जाता है। उस प्रसंग की साक्षी कौशल्या को ऐसा लगता है कि दिनेश ने उसके साथ दुबारा छल किया है।

‘“ÖÖ¤ “Ö»ÖŸÖÖ ¸ÆÖ’ कहानी में रोहिणी शर्मा अरविन्द से केन्द्रित है। अरविन्द ने उसे विवाह से पूर्व समर्पण माँगा था। उसने इन्कार कर दिया। कुछ ही दिनों बाद वह दुर्घटनाग्रस्त हो गया। यही नैतिकता उसे बार-²ÖÖ¸ ”Ö»ÖŸÖÖß-Ÿाराशती है। इस गहरे घाव को भरने के लिए वह नैतिकता की चादर उतार फेंकती है और अनेक पुरुषों के आगे स्वीकार भरी मुद्रा में समर्पित होने लगती है। कभी कर्नल की बाँहों में तो कभी विनय की। जब कभी वह पराये पुरुष के साथ सोती है तो उसका एक अंश मर जाता है।

‘¾ÖÖ¯ÖÃÖß’ उषा प्रियंवदा की श्रेष्ठ कहानी है। इस कहानी ने उनकी पहचान बनायी। ‘¾ÖÖ¯ÖÃÖß’ में पुरुष के अकेलेपन को चित्रित किया गया है। व्यवस्था व्यक्ति की तब उपेक्षा करती है जब उसकी अर्थिक स्थिति बड़ी कमज़ोर हो जाती है। वापसी के गजाधर बाबू तब तक सबके प्यारे थे जब तक वे प्रतिमाह भरपूर वेतन लाते थे। रिटायर होने के बाद वे परिवार पर बो-Ö बन जाते हैं और फिर से वापिस नयी नौकरी की तलाश में निकल जाते हैं। पत्नी को भी अपने बूढ़े पति का एहसास नहीं। गजाधर बाबू ने परिवार से सिर्फ़ स्नेह की आकांक्षा की थी। वह परिवार के किसी भी सदस्य से न मिल सका। गजाधर बाबू की वापसी टूटते पारिवारिक संबंधों को उजागर करती है। आधुनिक युग में बूढ़ों की स्थिति कितनी दयनीय होती जा रही है, इसका चित्रण यह कहानी करती है।

‘ज़िन्दगी और गुलाब’ के फूल कहानी एक बेरोज़गार युवक की घर में होनेवाली उपेक्षा और कामकाजी नारी के घर में बढ़ते हुए सम्मान को उजागर करती है। सुबोध जब नौकरी करता था तब शोभा को लेकर उसने कितने ही रंगीन सपने बुने थे। वह उसकी ज़िन्दगी में फूल बनकर आयी थी, पर -ाूठे आत्मसम्मान के कारण जब उसने नौकरी छोड़ दी तब शोभा की सगाई कहीं और हो गयी। घर में भी सुबोध की उपेक्षा होने लगी। उसकी हर चीज़ उसकी कामकाजी बहन के कमरे में चली गयी। उसे ऐसा लगने लगा कि वह अब ज़िन्दगी में कुछ नहीं कर सकता उसकी ज़िन्दगी में फुलस्टाप लग गया।

‘¯ÖÜ`ŸÖÖ’ की तारा अपने जीवन के अकेलेपन से व्यथित है। जीवन में गहरा रही रिक्तता ˆÃÖ ²ÖÖ¸-बार डसती है। सूनापन उसे काटने लगता है। इन सबसे मुक्त होने के लिए उसकी

पास एक विकल्प है - व्यस्तता। ऐसी अवस्था में उसकी मुलाकात नलिन से होती है। यह जानते हुए भी कि वह एक विवाहित है, वह उसके साथ अपने सपने संजोती है। उसके मन में न तो उसकी पत्नी के प्रति ईर्ष्या जगती है और न ही कोई अपराध-बोध जगता है। नलिन की अस्वस्थता के दिनों में जो सुख देह की धरातल पर उसे मिलता है वही उसके जीवन के शून्य को ³Ö¸ü •ÖÖŸÖÖ Æü|

'क्ïx™»Öß ”ÖÆü' एक ऐसे मास्टरसाहब की कहानी है जिन्होंने बयालीस साल की उम्र में अड़तालीस साल की इन्द्रा से शादी की थी। भले ही वह हेड मिस्ट्रेस हो परन्तु शक्ल सुरत से वह सिलाईवाली चन्द्रभागा बहनजी लगती थी। मुहर्रमी सूरत और तेज़ ज़ुबान के कारण सास चली गयी। विवाह करके उन्हें कोई सुख नहीं मिला। पहले भी अकेले थे और आज भी अकेले हैं। उनकी रेगिस्तान जैसी वीरान ज़िन्दगी में वह बात भी छिपी नहीं रहती और मास्टर साहब को राजी का घर छोड़ देना पड़ता है। मास्टर साहब दोनों तरफ से प्रताड़ित होते हैं।

२.७.१.३ एक कोई दूसरा :

इस कहानी संग्रह की प्राय: सभी कहानियाँ भारतीय मन और विदेशी परिस्थितियों के द्वन्द्व का मिला-•Öã»ÖÖ ºþ¯Ö Æü| 'एक कोई दूसरा' की नीलांजना की रिसर्च तो मात्र एक बहाना था, उसकी ज़िन्दगी का मकसद तो पिकनिकों, दावतों, क्लबों की ज़िन्दगी और शान-शौकत ही £Öा, विशेषकर पुरुषों को अपनी ओर आकृष्ट करना। लेकिन जब वह डॉ.कुमार के संपर्क में आती है तो उसकी ज़िन्दगी बदल जाती है। वह इन सांस्कृतिक वस्तुओं को हेय-दृष्टि से देखने लगती है। डॉ.कुमार और नीलांजना दोनों ही मन-Æß-मन एक-दूसरे को प्यार करते हैं लेकिन कुछ कहते नहीं हैं। नीलांजना बाद में डॉ.कुमार के पारिवारिक जीवन में कटुता उत्पन्न नहीं करना चाहती । वह सब ओर से कटकर अकेली हो जाती है लेकिन स्वयं को बेसहारा नहीं सम-ाती। डॉ.कुमार की नई पुस्तक अब 'एक कोई और' के नाम समर्पित है तो वह अकेली कहाँ है ? क्योंकि वह अपने को ही डॉ.कुमार की दूसरी समÖ–ÖŸÖß Æü|

'-ूठा दर्पण' में अमृता यति से फ्रेंच भाषा सीखती है और मन-Æß-मन उससे प्यार भी करती है। यति विवाहित है, उसकी पत्नी मीरा अमृता के काफी नज़दीक है, लेकिन यति और मीरा का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं है। अमृता पहले तो शादी से इन्कार करती है लेकिन यति

और मीरा को देखकर वह कुँवर से शादी करने को तैयार हो जाती है। उसकी बात को सुनकर सब खुश हो जाते हैं लेकिन मीरा को विश्वास नहीं हो पाता क्योंकि मीरा यह जानती थी कि अमृता यति से प्यार करती है।

'सागर पार का संगीत' में देवयानी भारत छोड़कर, जहाँ उसका परिवार है और उसकी सगाई हो चुकी है, आस्कर के साथ कनाडा में विवाह करके रह रही है। आस्कर की व्यस्तता जब उसे तोड़ती है तब वह उसके चचेरे भाई को समर्पित हो जाती है। देवयानी इस फिसलन-¤¸ फिसलन में किसी भी व्यक्ति के प्रति अपराध भावना से पीड़ित नहीं होती न उसमें कोई अपराधबोध जगता है।

'x¯Ö'Ö»ÖŸÖß Æ‡ ²Ö±¼' में अक्षय अपराध भावना से ग्रस्त है। विदेश में जब वह सुधीरा के निकट आता है तब वह उसकी देहगंध से पागल हो जाता है। सुधीरा वीरू से विवाह करना चाहती है। अक्षय ईर्ष्या के कारण वीरु को अपनी बिना ब्रेक की गाड़ी देता है जिससे वीरु की मृत्यु हो जाती है। वीरु की मृत्यु से सुधीरा अपाहिज बन जाती है।भारत लौटने पर अक्षय छवि से जुड़ना चाहता है पर जुड़ नहीं सकता । अंतत: छवि के साथ एक नया जीवन प्रांरभ करता है।

'चाँदंनी में बर्फ़' पर में हेम भारत में कल्याणी से प्यार करता है लेकिन अमेरिका जाकर वह मेरी, जिसने अपना नाम मीरा कर लिया है, से विवाह कर लेता है। मीरा पाश्चात्य देश की होने के कारण काफी खुले विचारों की है, वह अपने दोस्त पियेर के साथ स्केटिंग करने "Ö»ी जाती है। हेम को उसका मित्र अविनाश मिलता है, जो अब कल्याणी का पति भी है। वह हेम को अपने घर ले जाता है। हेम कल्याणी का साथ पाने को बेचैन हो जाता है लेकिन कल्याणी एक भारतीय स्त्री होने के कारण हेम का प्रयास विफल कर देती है। दूसरी ओर मीरा पश्चिमी होने के कारण अपने मित्रों से सम्पर्क बनाये रखती है।

'™™ Æ‹' की तंत्री (टीटी) अपने पति से जुड़कर एक एब्नार्मल पुत्र को जन्म देती है। यहाँ पति- पत्नी को लेकर लेखिका ने एक नये त्रिकोण की रचना की है। और तंत्री, प्रो.कृष्णमूर्ति के पश्चात् तीसरा कोणÖ Æ-प्रोफ़ेसर का छात्र भास्कर। तंत्री को एक अरसे से उदासी के दौरे पड़ते हैं। वह अपनी उदासी दूर करने के लिए भास्कर से संबंध स्थापित करती है। तंत्री अपनी नौकरानी के घर भास्कर के साथ रंगरेलियाँ मनाती है। कई देशों की सैर करती है, परन्तु उसका पति कुछ नहीं कहता कारण दोनों की आयु में काफी अंतर है। जैसे-

जैसे तंत्री से भास्कर अपनी हैसियत बताता है, वह प्रोफ़ेसर के समान उसके लिए सुविधा नहीं जुटा सकता, संबंध टूटने लगते हैं।

'कोई नहीं' में एक ऐसी नारी को आधार बनाया है जिसका अतीत विफल है, वर्तमान 2ÖÖx-ल है और भविष्य अनिश्चित। नमिता और अक्षय का प्रेम एक बीती कहानी है, जो अतीत की गहराईयों में विलीन हो चुका है। अक्षय ने एक जनरल की बेटी से विवाह कर लिया है और नमिता कुँआरी रहकर ही ज़िन्दगी बिता रही है। नमिता को अतीत की याद विफल कर देती है और यही कारण है कि नमिता अतीत को अनकहा ही रहने देती है, उसका खण्डित प्रेम उसके व्यक्तित्व को बिखरा देता है।

२.७.१.४ कितना बड़ा -ÖŠ :

इस कहानी संग्रह में अधिकांश कहानियाँ अमेरीकी या युरोपीय परिवेश में लिखी गई हैं। सम्बन्ध कहानी में एक कुँआरी नारी का शादीशुदा तीन बच्चों के पिता सर्जन से प्रेम करना और शारीरिक संबंध रखना पश्चिमी सभ्यता का द्योतक है। सर्जन ने श्यामला से कहा भी था कि वह उसे बहुत प्यार करता है और उसके लिए वह अपने घर, अपने बच्चों को तथा पत्नी को भी छोड़ने के लिए तैयार है लेकिन श्यामला ने इसको स्वीकार नहीं किया और वह बिना किसी प्रतिबन्ध के ऐसे ही स्वतंत्र रूप से रहना चाहती है और शारीरिक संबंध बनाए रखती है।

'प्रतिध्वनियाँ' कहानी में वसु अपने पति श्यामल को तलाक़ दे देती है। वह डॉ.जूलियन से अनैतिक संबंध रखती है। वह भारत अपनी बहन सुधा के घर आती है। वहाँ पर उसकी अपने पति और बेटी रूचिरा से मुलाकात होती है। वसु एक अति आधुनिक स्वतंत्र प्रकृतिवाली स्त्री है। उसके विचार में विवाह एक मीनिंगलेस रस्म के अलावा और कुछ नहीं है।

'कितना बड़ा -ÖŠ' में किरन और विश्वेश्वर दोनों पति-पत्नी हैं। उनकी दो लड़कियाँ नीता और लीना हैं। किरन नौकरी करती है। वह विवाहित होते हुए भी मैक्स से प्यार करती है। बाद में मैक्स और वारिया का विवाह हो जाता है, तो किरन अन्तर्द्वंद्व में पड़ जाती है और अपने पति के साथ रहने को तैयार हो जाती है और ऐसे दिखाती है कि वह एक आदर्श पत्नी है।

'x™¯Ö' में एक ऐसे दम्पति की कहानी है कि पत्नी चाहे जो कुछ भी करे उसके पति को उससे कोई भी शिकायत नहीं है। पत्नी को इस बात का अफसोस है कि उसका पति चाहे उसकß हर गलती को स्वीकार कर ले लेकिन उसके परपुरुष से संबंध होने पर भी और उसको उसका पता लगने पर भी उससे कुछ नहीं कहता है और पत्नी रूप में अपने घर में रखे हुए है। यहाँ ÃÖ²Ö-ÖÖ ´Ö †Ö ¸Æ बदलाव को देखकर आश्चर्य होता है।

'नींद' कहानी में मानसिक रोगिणी स्त्री की कहानी है, जिसको अकेलेपन के कारण नींद नहीं आती और रात के गहनतम अंधकार में स्वयं को विवश सम-ाती है। इस तनÖ¾Ö ÃÖ ´ÖÜŒÖ पाने के लिए या तो नींद की गोली खाती है या पर-पुरुष के प्रति समर्पित हो जाती है। वह तीसरे आदमी की खोज में ऐसी डूब जाती है कि कितने ही आदमियों के साथ उसे संबंध बनाए रखना पड़ता है। उसके लिए संख्या महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है तीसरा व्यक्ति।

'सुरंग' में दो बहनों की कहानी है। इस कहानी में पिता के न होने के कारण बेटियों को पारिवारिक संघर्ष करना पड़ता है। 'स्वीकृति' में सत्य और जपा पति-पत्नी हैं। सत्य जपा को नौकरी करने को विवश करता है जहाँ उसकी मुलाकात एक तलाक़शुदा पुरुष से होती है, जो बाद में प्यार में बदल जाती है। एकांत द्वीप में पति के साथ रहते हुए भी जपा वॉल से जुड़ी रहती है। वह अकेली भारत लौटने के लिए राजी होती है क्योंकि वॉल पहले ही भारत जा चुका था। सत्य यह सब जानता है इसलिए उसे जाने की स्वीकृति देता है।

'मछलियाँ' ´Ö "ÖÖ¸ ¯ÖÖ¡Ö Æ - विजी, मनीष, मुकी और नटराजन। विजी मनीष की पत्नी बनने के लिए भारत से विदेश जाती है लेकिन मनीष मुकी के प्रेम-•ÖÖ»Ö ´Ö ±ÑÃÖÖ ÆÖÝÖÖ Æ| इसीलिए वह विजी से एक दिन भी नहीं मिल पाता तथा विजी और नटराजन का प्रेम हो जाता Æ, »Öकिन इस प्रेम को दोनों में से कोई स्पष्ट नहीं कर पाता। बाद में नटराजन और मुकी की सगाई हो जाती है लेकिन मुकी उससे इसलिए विवाह नहीं करती क्योंकि वह सम-ाती है कि नटराजन विजी से प्यार करता है। यहाँ दोनों नारियों में ईर्ष्या का भाव है। उनकी प्रेम-भावना में उदारता या समर्पण नहीं, प्रतिशोध की भावना है। इस कहानी में संबंधों का तनाव और अनुभूतियों की टकराहट का जटिल रूप उप»Ö²-Ö ÆÖÝÖÖ Æ|

२.७.१.५ मेरी प्रिय कहानियाँ :

इस कहानी संग्रह में लेखिका ने अपनी प्रिय कहानियों का संग्रह किया है जिन्हें उनके चारों संग्रहों से चुना गया है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि ये कहानियाँ एक फ्लैश में जन्मी हैं और जिन्हें उन्होंने एक या दो दिन में लिख डाला। इस कहानी संग्रह में संकलित कहानियाँ हैं - कितना बड़ा –ÖŠ, ™™ Æ<, ×¯Ö‘Ö»ÖŸÖß Æ‡ ²Ö±í, ¾ÖÖ¯ÖÃÖß, –ूठा दर्पण, मोहबंध, छुट्टी का दिन, ज़िंदगी और गुलाब के फूल।

२.७.१.६ शून्य तथा अन्य रचनाएँ :

कुछ कहानियाँ, कुछ यात्रा-संस्मरण और अमेरिका से श्रोताओं के नाम लिखे गए चौदह पत्रों का यह संग्रह उषा प्रियंवदा के उस प्रवासी मन के भीतर –ाँकने का मौका देता है, जो लम्बे ×¾Ö¤ê¿Ö-प्रवास के बावजूद आज भी भारतीय है। इस ग्रंथ में चार कहानियाँ हैं। पहली कहानी Æ ‘पुनरावृत्ति’। चिरंतन के तीन बेटे और तीन बेटियाँ हैं, किन्तु उसकी पत्नी संदीपनी पागल हो चुकी है। चिरंतन अपनी विदेशी छात्रा सैली से अनैतिक संबंध प्रस्थापित करता है। सैली के कारण ही उसकी पत्नी विक्षिप्त हो जाती है। सैली के चले जाने पर वह कई औरतों से शारीरिक संबंध बनाता है। विदेश दौरे में अचानक उसकी सैली से मुलाकात होती है। सैली अपने पति से संतान प्राप्त नहीं कर पाती। अपनी इसी इच्छा की पूर्ति के लिए वह चिरंतन के पास आती है तो उसे पता चलता है कि चिरंतन ने अपनी पत्नी के लिए नसबंदी करा ली है। यहाँ लेखिका ने पात्रों को बड़ी विचित्र स्थिति में डाल रखा है।

‘प्रसंग’ कहानी की नायिका ममता जैन डॉक्टर है। वह विदेश चली जाती है। अपने परिवार के लिए वह विदेश में सब कुछ बेचकर भारत लौट आती है। भारत लौटने पर उसकी बुआ उसका विवाह एक अधेड़ उम्र के विधुर के साथ कर देती है, जिसकी दो बेटियाँ हैं। ममता दिवाकर को देखे बगैर विवाह की स्वीकृति देती है। क्योंकि उसकी भी काफी उम्र हो चुकी है। विवाहोपरान्त वह अपने प्रेमी राघव की आकस्मिक मृत्यु की खबर से टूट जाती है। वह अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को स्वीकार कर एक तरह से अपने जीवन के इस नए प्रसंग को ही स्वीकृति देती है।

‘शून्य’ कहानी में उषाजी ने विदेशों में पढ़ाई करने गये छात्रों की कठिनाइयों पर प्रकाश >Ö»ÖÖ Æ| ¯Öß-एच.डी. पूरी नहीं हुई तो असिस्टेंटशीप बन्द हो जाती है। वहाँ की ज़िन्दगी बेहद

मुश्किल है। रात-रात भर कम्प्यूटर रूम में बैठे रहो, जाड़े में, गर्मी में नौकरी भी करो और पढ़ाई भी। आदमी मशीन बन जाता है। जो उनकी वहाँ की दशा देखता है वह जानता है कि उसकी स्थिति क्या है ? नायक बरसों विदेश में रहने के बावजूद अपने पिता के लिए पार्कर पेन नहीं ला पाता। उनके मरने पर भी वह मुश्किल से घर आता है। लौटकर जाने पर उसे पता चलता है कि जिस घर में वह रहता था, उसमें आग लग गयी। उसने जो शोध-कार्य किया था वह जल गया। अत: फिर से करने का उसमें ताव न था। विदेश जानेवाले छात्रों की दशा को यह कहानी उजागर करती है।

‘†Ö¬ÖÖ ¿ÖÆ¸’ कहानी की नायिका इला है। उसकी माँ बदचलन थी जिसके परिणाम उम्र भर इला को भोगने पड़े। उसका अभय से विवाह हो जाता है, किन्तु वह भी आत्महत्या कर लेता है। इला एकदम अकेली हो जाती है और उसे विदेश में लेक्चरर की नौकरी मिल जाती है। राघव जो कि डीन है इला की नौकरी के लिए मदद करते हैं। इला को एक अकेली स्त्री होने के कारण समाज में जीना दूभर हो जाता है। वह कहती है - “एक पुरुष पचास स्त्रियों से प्रेम करता फिरता है, उसे तुम्हारा समाज कुछ नहीं कहता ? एक स्त्री अगर अकेली, सम्मान से जीना चाहती है तो उसके चारों तरफ गिध्द नोच खाने को तैयार रहते हैं।”[22] डीन इला की नौकरी स्थायी करनेवाली कमेटी के अध्यक्ष हैं ; उसे सम-ााने आते हैं। इला के इस्तीफा भेजने की बात सुनकर वे बेचैन हो जाते हैं। वे भीतर ही भीतर इला से स्नेह करते हैं और इला भी उन्हें ÃÖ´ÖÙ¯ÖÝÖ ÆÖ •ÖÖÝÖß Æ |

स्पष्ट है कि आज के युग के यथार्थ को ध्वनित करती, जीवन की पल-¯Ö»Ö ²Ö¤»ÖÝÖß मुद्राओं एवं तेवरों को व्यक्त करती, नवीन परिप्रेक्ष्य में मानवीय मूल्यों की नित नई व्याख्या करती, अन्त: एवं बाह्य संघर्षों के ऊहापोह एवं कशमकश को नया अर्थ देती उषा प्रियंवदा की कहानियाँ न केवल कहानियाँ हैं वरन जीवन के स्वर की अनूठी यात्रा हैं जो फिर बसन्त आया से शुरु होकर शून्य तथा अन्य रचनाओं तक जाकर अपने उत्कर्ष के लक्ष्य तक पहुँचती हैं। निश्चित रूप से इन कहानियों का अध्ययन कर हम अनुभव करते हैं कि लेखिका-कथाकार के व्यक्तित्व का ताना-बाना केवल साहित्यकार से ही नहीं चिंतक, विचारक एवं संवेदनशील कलाकार वरन् इससे बढ़कर एक सच्चे इन्सान की सोच एवं विचार से बुना हुआ है। जहाँ कहानियाँ ऐसा कैनवास बन जाती हैं, जहाँ है प्रकृति का नैसर्गिक चित्रण, मानव की जिजीविषा, रिश्तों की बुनावट, द्वन्द्ध, आँसू, व्यथा, जीवन की त्रासदी तो दूसरी ओर पल-पल टकराते षडयंत्र,

यथार्थवाद, जीवन की विसंगतियाँ, रूढ़िवादिता, विषमताएँ एवम् उनसे जू-नती रचनाकार की तूलिका। ऐसे ही जीवन के गहरे, हल्के और तीखे तो कहीं मद्धिम होते शेड्स रचनाकार की घनीभूत मानसिकता को अभिव्यक्ति देते हैं।

२.७.२ उपन्यास - साहित्य :

२.७.२.१ पचपन खम्भे लाल दीवारें :

यह उषा प्रियंवदा का पहला एवं लोकप्रिय उपन्यास है। इसमें एक भारतीय नारी की सामाजिक-आर्थिक विषमताओं से जन्मी मानसिक यंत्रणा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। छात्रावास के पचपन खम्भे और लाल दीवारें उन परिस्थितियों के प्रतीक हैं ; जिनमें रहकर सुषमा को ऊब तथा घुटन का तीखा अहसास होता है। सुषमा होस्टल में रहती है, वह वार्डन और प्रोफ़ेसर के पद पर कार्य करती है। वह अपने भाई-बहनों की खातिर शादी भी नहीं करती, यद्यपि वह नील से प्यार करती है। एक वार्डन होने के कारण नील से प्यार करने पर उसे अपमानित होना पड़ता है, उससे इस्तीफा माँगा जाता है। एक तरफ वह नील से अत्यधिक निकट होने के कारण नौकरी छोड़ने को तैयार हो जाती है। लेकिन फिर घर की ज़िम्मेदारियाँ उसके सामने आ खड़ी होती हैं, तो वह अपने मन को नियंत्रित करके प्यार को ठुकरा देती है। सुषमा को अकेलेपन की अनुभूति व्यथित करती है। उसके चारों ओर दीवारें हैं- दायित्व की, पद की, कुंठा की, गरिमा की, और अपने परिवार की। जब वह कॉलेज में रहनेवाली अपने से आयु में छोटी सहयोगियों को अपने मित्रों के साथ आते-जाते देखती है तब उसके मन में दुख होता है उसके सूनेपन का साथी बनकर ही नील उसके जीवन में आता है। सुषमा की ज़िंदगी बदल जाती है , वह नील को अपना शरीर, भावनाएँ और मन भी समर्पित कर देती है। वह नील से ५ वर्ष बड़ी है और उसका अपना व्यक्तित्व ही उसके प्रेम में बाधा बनता है। “ÑÖÂÖ´ÖÖ रूढ़िवादी नारी है। वह त्यागमयी नारी के रूप में चित्रित है। उसे जैनेंद्र की नायिकाओं की भाँति आत्मपीड़न पसन्द है।”[23]

इस भावना के अधीन होकर वह नील को अपने जीवन से दूर चले जाने को कहती है। नील चला जाता है और सुषमा फिर से पचपन खम्भों और लाल दीवारों से घिरी अपनी “ÖÖ¸¤ß¾ÖÖ¸ß ´Ö »ÖÖ™ •ÖÖŸÖß Æ |

उपन्यास में नियति की समूची सत्ता को अभेद्य मानने की भंगिमा नयी नहीं है, लेकिन सुषमा के तनावों और अवसाद ने मिलकर जो प्रश्न उठाया है कि यह भंगिमा व्यक्ति क्यों ढोए हुए है ? तभी उपन्यास की सर्जन भूमि, अभिनव आयामों को रेखांकित करती है। इसमें स्थिति के स्वीकार और अस्वीकार की मुद्राएँ नयी हैं और उन्हें सम-ाने की कोशिश और सम-ाने के बाद निर्णय के क्षणों में विवशता या उससे अलगाव के संदर्भ बन गए हैं। ज़िंदगी के कसैलेपन को अंकित करने वाले पारिवारिक प्रसंग जिसमें माँ की कड़वी और विषैली मुद्राएँ भी हैं, उपन्यास के लिए सार्थक आया´Ö •Ö™ÖŸÖ Æ |

२.७.२.२ रुकोगी नहीं राधिका :

‘पचपन खम्भे लाल दीवारें’ में जिस नारी की सामाजिक भूमिका को उसके पारिवारिक संदर्भ में भारतीय परिवेश के अपने संघातों सहित अंकित किया गया है, ‘रुकोगी नहीं राधिका’ में वही नारी अपनी वैयक्तिक भूमिका को पारिवारिक संदर्भों से अलग पौर्वात्य और पाश्चात्य परिवेश के बीच के द्वन्द्व में अंकित करती है।

इस उपन्यास में एक नारी के अकेलेपन के चित्रण को बड़ी कुशलता से व्यक्त किया गया है। राधिका अपने पिता से नाराज़ होकर पढ़ने के लिए विदेश चली जाती है क्योंकि उसके पिता ने उसकी माँ के मरने के १८ वर्ष बाद, उसी के हम उम्र विद्या से पुनर्विवाह कर लिया है। राधिका इस विवाह को स्वीकार नहीं कर पाती। राधिका भारत से एक पत्रकार डैन के साथ अमेरिका चली जाती है। डैन और राधिका एक वर्ष तक साथ रहते हैं लेकिन फिर अलग हो जाते हैं, तब राधिका को यह एहसास होता है कि एकाकी जीवन किस तरह भीषण ज्वाला की तरह होता है, उसको पापा के साथ किए अपने व्यवहार पर शर्मिन्दगी महसूस होती है। इस ŸÖ¸Æ ¾ÖÖÆ 3 ÃÖÖ»Ö ×¾Ö¤¿Ö ´ों रहकर स्वदेश लौटती है। उसके मन में फिर से उन संबंधों को जोड़ने की इच्छा होती। है जिन्हें वह तोड़ चुकी थी लेकिन परिस्थितियों के दबाव में उसका उत्साह चुक जाता है और वह यत्न करने पर भी अपने पुराने संबंधों (पिता, विमाता,आदि) को

निबाह नहीं पाती और वापस दिल्ली अक्षय के पास चली जाती है। वह अक्षय से विवाह भी करना चाहती है। अक्षय में उसको सब गुण मिलते हैं लेकिन वह स्वयं ही उससे दूर होती जाती है। मनीष भी राधिका को पाना चाहता है लेकिन राधिका उसे भी स्वीकार नहीं कर पाती। इस प्रकार वह पूरी तरह टूट जाती है। राधिका, डैन, अक्षय और मनीष तीनों में से किसी से भी विवाह नहीं कर पाती और अन्त में पापा के साथ रहने से भी इन्कार कर देती है।

यह समूची संक्रांत स्थिति आत्मनिर्वासन और आत्म-परायेपन की सूचक है। मनीष ने इसे रिवर्स कल्चरल शॉक कहा है। परन्तु इसके अलावा भी बहुत से महत्वपूर्ण संदर्भ हैं जो उसे संत्रस्त करते हैं। वह एक हारी हुई स्त्री है। यह अनुभूति एक निरुद्देश्य यात्रा की है - "^ÃÖ लगा कि वह इस भीड़, शोर-¿Ö¸Ö²Ö, "ÖÆ»Ö-पहल से एकदम कटी हुई है। वह अपने परिवेश का भाग नहीं रही, वह यहाँ रहते हुए भी निर्वासिता है। उसका जीवन निरूद्‌देश्य यात्रा है एक लंबी अंधकारपूर्ण सुरंग।"[24]

और इस सुरंग का अंत मनीष के प्रति आकर्षण और उसे पाने की कोशिश में इंगित है।

२.७.२.३ शेष यात्रा :

उषा पियंवदा की अन्य रचनाओं में भारतीय और पाश्चात्य परिवेश का जैसा दृश्य दिखाई देता है, वैसा ही इस उपन्सास में भी है। अनु एक साधारण परिवार की युवती है, जिसके माँ-बाप नहीं है और वह ननिहाल में रहती है। उसका विवाह एक विदेशी डॉक्टर प्रणव से हो जाता है। उसकी ज़िन्दगी रंगीन हो जाती है। आर्थिक रूप से समृध्द प्रणव उसको धन-धान्य से लाद देता है और अत्यधिक प्यार भी करता है। इसलिए अनु को भी प्रणव के अनुसार स्वयं को ढालना पड़ता है, विदेशी परिवेश स्वीकारना पड़ता है। लेकिन शादी के चार-¯ÖÖ"Ö ÃÖÖ»Ö बाद ही उसकी तमाम खुशियाँ खत्म हो जाती हैं क्योंकि प्रणव का संबंध कई स्त्रियों से था। •ÖÃÖÖ- नीरजा, विभा, चन्द्रिका आदि। वह चन्द्रिका की खातिर अनु को तलाक देता है, लेकिन प्रणव को फिर भी सन्तुष्टि नहीं मिलती, उसके मुख्य शौक शराब, औरत और सिगरेट हैं। तलाक लेकर अनु बहुत उदास हो जाती है और उसको अपना जीवन निरर्थक लगने लगता है। उसको यह आशा रहती है कि शायद प्रणव लौट आए लेकिन ऐसा नहीं होता। अनु अपनी सहेली दिव्या के यहाँ आ जाती है। दिव्या से ही उसको आत्मनिर्भर और स्वाभिमान की प्रेरणा

मिलती है और वह डॉक्टर बन जाती है। फिर अनु दिव्या के भाई दीपांकर से पुनर्विवाह कर लेती है, जो अनु को बहुत पहले से प्यार करता है। उधर प्रणव की तबियत खराब रहने लगती है। वह दिल का मरीज़ है। उसका सब कुछ खत्म हो जाता है। उसने डॉक्टरी छोड़कर फिल्म लाईन को अपनाया था लेकिन वहाँ भी सफलता नहीं मिलती। बाद में वह अनु से ×मलना चाहता है और उसके परिवर्तन को देखकर स्तम्भित रह जाता है। वह दोबारा उससे मिलने का वायदा तो करता है, लेकिन अनु को बिना बताए ही चला जाता है। इस उपन्यास में दो खण्ड हैं लेकिन कहानी की क्रमबध्दता और एकसूत्रता में कहीं अंतर नहीं आया है।

उपन्यास में प्रणव संपूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व करता है और अनु संपूर्ण नारी समाज का। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि पुरुष की तरह नारी भी ÆÖ>-मांस की पुतली है। उसके व्यक्तित्व की माँगों को नकारा नहीं जा सकता। उसे भी अपने व्यक्तित्व को संतुष्ट करने का पूर्ण अधिकार और सहयोग प्राप्त होना चाहिए। ऐसा न करके समाज स्वयं अपना ह्रास ही करेगा जैसा कि प्रणव के साथ हुआ। नारी विकास के प्रश्नों को और अधिक नकारा या -ुठलाया नहीं जा सकाता। यदि ऐसा हुआ तो वह वेगवती नदी की भाँति अपना सागर स्वयं तलाश कर लेगी। यह चेतावनी इस उपन्यास में सर्वप्रमुख रूप में ¯Ö×ŸÖØ²Ö×²ÖŸÖ Æ |

2.7.2.4 †ŸÖ¾Ö¿Öß :

उषा प्रियंवदा का '†ŸÖ¾Ö¿Öß' उपन्यास उन तमाम भारतीय परिवारों की जीवन शैली का विश्लेषण करता है, जो बेहतर अवसरों की तलाश और आशा म ¯Ö¾ÖÖÃÖß ÆÖ •ÖÖŸÖ Æ | ×¾Ö¤¿Ö ´Ö बसे युवकों से मध्यवर्गीय परिवारों की कन्याओं का विवाह सौभाग्य सम-ÖÖ •ÖÖŸÖÖ Æ | †Ö¸ ×±ü¸ शुरु होता है संघर्ष और मोहभंग का अटूट सिलसिला। बनारस की वनश्री विवाहोपरान्त विदेश चली जाती है और वनश्री से वाना बन जाती है।

वाना सहज एवं स्वाभाविक इच्छाओं के साथ सम्पन्न जीवन जीने और सभी सुखों का आनन्द उठाने के लिए लालायित रहती है और भरसक प्रयत्न भी करती है। आदिम प्रकृति के अनजाने प्रवाह में खिंचकर वह अपने पति शिवेश के बच्चों की माँ बनती है ; वात्सल्यमयी माँ बनकर सुखी भी होती है। अकेले घर-गृहस्थी चलाती है, संस्कारी पतिव्रता पत्नी के रूप में

अपने पति की, समय-कुसमय, देहसुख की जबरन माँगों की पूर्ति भी करती है। एक सद्‌गृहिणी की भाँति और माँ की जैसी सद्‌भावना के साथ सबका ध्यान रखती है। पति की अनिश्चित नौकरी और तज्जनित अनेक प्रकार के अभावों की यातनाओं में जीती हुई वह छोटे-मोटे अनेक प्रकार के काम करती है। आगे बढ़ने और सम्पन्न अमरीकी जीवन की सभी लालसाओं की पूर्ति करने के लिए वह आगे पढ़ती है, ड्राइविंग सीखती है, सेक्रेटरी का कोर्स करती है, मकान बेचने वाली एजेंसी में काम भी करती है। अपने पति की दिनरात की देहसुख की माँगों की, बेमन पूर्ति के साथ बच्चे पैदा करने की विवशता से बचने के लिए, सारिका के सु-ÖÖ¾Ö ¯Ö¸, ¾ÖÆ ×¿Ö¾Ö¿Ö ÃÖ छिपा कर, गर्भनिरोधक गोलियाँ भी लेती है, पति के साथ बिना प्यार के सेक्स में असली आनन्द और संतोष न पाकर वह क्रिस्तीन से प्रेम पाने पर समलैंगिक संबंध का आनन्द भी लेती है। और अंत तक इतनी हिम्मत भी संचित कर लेती है कि वह शिवेश से कह देती है - '†Ö‡ †´Ö लीविंग यू' |

वस्तुत: वाना के मन में शिवेश के मित्र राहुल के प्रति तीव्र आकर्षण है और राहुल भी वाना को पूरे तन-मन से चाहता है। शिवेश के ड्रग का व्यवसाय कर पलायन करने पर राहुल ही उसके परिवार को सहारा देता है और इसी बीच वाना राहुल के बच्चे की माँ बनने वÖÖ»Öß £Öß, तभी वह शिवेश से अलग होने का निर्णय लेती है। शिवेश के आत्महत्या करने पर राहुल वाना को उसके बच्चों के साथ अपना लेता है। उपन्यास का शीर्षक अत्यंत सार्थक है। '†ŸÖ¾Ö¿Ößß' ¿Ö²¤ में वाना के भीतर बजनेवाली बाँसुरी की ओर संकेत है, जिसे शिवेश नहीं सुन पाया पर राहुल शुरू से ही सुनता रहा। इसमें 'एक स्त्री का अतृप्त इच्छा-ÃÖÑÖÖ¸' ही नहीं बज रहा, बल्कि चुनमुन जैसी करोड़ों भारतीय नारियों की करुण रागिनी बज रही है, जिसे अपने शिश्नोदर व्यापार में व्यस्त शिवेश जैसे 'ग्ÖÖ¾Ö¤ß' पुरुष नहीं सुन पा रहे हैं। केवल सोने की चूड़ियाँ पहना कर कृतार्थ हो रहे हैं।

२.७.२.५ भया कबß¸ ^¤ÖÑÖ :

यह उषा प्रियंवदा का एक अनूठा उपन्यास है। अब तक के चार उपन्यासों से पृथक यह अपना विशेष स्थान निर्धारित करता है। शरीर की पूर्णता-अपूर्णता का प्रश्न किसी न किसी स्तर पर मन और जीवन की पूर्णता के प्रश्न से भी जुड़ जाता है। यह उपन्यास शुरु से लेकर आखिर

तक इसी सवाल से जू-ाता है कि क्या सौंदर्य के प्रचलित मानदण्डों और समाज की रूढ़ दृष्टि के अनुसार एक अधूरे शरीर को उन सब इच्छाओं को पालने का अधिकार है जो स्वस्थ और संपूर्ण देहवाले व्यक्तियों के लिए स्वाभाविक होती हैं ! उपन्यास की नायिका लिली (यमन) वि¤¿ÖÔß भूमि पर अपना सहज और अल्पाकांक्षी जीवन जी रही होती है कि अचानक उसे मालूम होता है, उसे स्तन कैंसर है और यह बीमारी अंततः उसके सबसे प्रिय अंग को छीन ले जाती है। लेकिन मन ! तमाम चोटों के बावजूद मन कब अधूरा होता है, वह फिर-फिर पूरा होकर मनुष्य से जीवन से अपना-अपना हिस्सा माँगता है, अपना सुख। लिली आदि से अंत तक इसी कटु यथार्थ के कारण संघर्षरत है।

×»Ö»ÖÔß ¯ÖÖ>य एक अभिजात्य परिवार में पली बड़ी है। उसके पिता एक नामी विश्वविद्यालय के वाईसचांसलर थे। उन्हीं की इच्छा के कारण लिली इतिहास में पी-<"Ö.>ß. करने अमेरिका प्रस्थान करती है। विदेश में तीन वर्ष बिताने के पश्चात् उसके साथ एक भयंकर त्रासदी घटित होती है। उसे कैंसर हो जाता है और कैंसर थेरपी के कारण थीसिस का काम अधूरा रह जाता है। इसी बीच उसके पिता का भी देहान्त हो जाता है।

लिली का कैंसर से महायुध्द प्रारंभ हो जाता है। कैंसर के कारण वह भयंकर पीड़ा को - ोलती है। रोग की पीड़ा से अधिक उसके उपचार की पीड़ा है - प्रोटोकॉल, सर्जरी, कीमोथेरपी †Ö¸ †ÝÖÝÖ: ¸डिएशन। किन्तु इस शारीरिक पीड़ा से भी अधिक वह मानसिक पीड़ा को -Ö»ÖÝÖß है। इतना ही नहीं कैंसर के कारण वह अपने शरीर का प्रिय अंग, अपने स्तन खो देती है। जो कि उसकी सम्पूर्णता के लिए अत्यंत आवश्यक है। अपने शरीर का अभिन्न अंग निर्ममता से खो देना आसान नहीं है।

उसे लगता है कि पैंतीस वर्ष की आयु में ही उसका जीवन समाप्त हो गया है। वह एकाएक मृत्यु का अनुभव करने लगती है क्योंकि अब वह एक जिंदा लाश मात्र है। उसने अपनी संपूर्ण इच्छाओं का दमन कर दिया है। उसके भीतर बुध्दि और मन का द्वन्द्व जारी है जिसमें मन बुध्दि पर हावी है। बुध्दि यथार्थ को स्वीकार कर लेती है किन्तु मन इसके विपरीत है। वह अपने हिस्से का सुख माँगता है। इस परिस्थिति से उबरने के लिए वह गोवा चली आती है। किन्तु जिस रिज़ौर्ट में वह रुकी है उसका मालिक उसके हेडमाली का बेटा बनमाली (बु®Ö) Æ। वनमाली एक तलाक़शुदा व्यक्ति है। वह विदेश के एक नामी विश्वविद्यालय का विभागाध्यक्ष रह चुका है।

लिली वनमाली की ओर आकर्षित होने लगती है। उसका मन वनमाली के संबंध में कई सपने बुनने लगता है। किन्तु उसका यथार्थ हर बार उसके सपनों को उधेड़ कर रख देता है। लिली स्वयं को वनमाली के उपयुक्त न मानकर दूर रहने का प्रयास करती है। पुरुष के प्रति यह उसका पहला आकर्षण नहीं है। सर्जरी से पूर्व पुरुष शरीर का उपभोग करने हेतु वह शेषेन्द्र के प्रति अपना शरीर समर्पित कर चुकी है। इधर वनमाली बचपन से लिली से प्रेम करता है। वनमाली लिली को उसके अभावों सहित स्वीकार करता है। किन्तु फिर भी लिली को महसूस होता है कि वह वनमाली के साथ अन्याय कर रही है। उसे जीवन से वितृष्णा हो जाती है और वह वनमाली से दूर होने का निर्णय लेती है। वह उसे बिना बताये होटल से निकल जाती है। वह घाट पर पहुँच जाती है। वहाँ जलती हुई लाशों को देखती है, जो जीवन का अंतिम निष्कर्ष है। उसका मृत्यु-भय समाप्त होता है। उसे लगता है कि वह निरर्थक ही मृत्यु से भाग रही है। वह निश्चय करती है कि "मृत्यु का बोध स्वीकार कर लिया जाए, तब तो कोई समस्या ही नहीं रहेगी। हर दिन एक नया दिन, एक तोहफा होगा।"[25] मृत्यु-बोध के स्वीकार के कारण वह अब मौत का मरसिया नहीं गाती, बल्कि जीवन की नई सरगम छेड़ती है जिसमें जीवन की अतृप्त एवं दबी लालसाएँ और उसकी तृप्ति का आनन्द है। यहाँ की आनन्दानुभूति और उल्लास मृत्यु को पराभूत करके उसे चेतना से ही लुप्त कर देता है और यहाँ तक कि अस्तित्व-बोध की चेतना भी यहाँ के सुख-सागर में विलीन हो जाती है। लिली घाट के दूसरे छोर पर एक नववधू का गंगापूजन देखती है। वह सोचती है कि संसार में जहाँ एक ओर मृत्यु है तो दूसरी ओर जीवन। अत: उस नववधू के समान वह भी एक नया जीवन प्रारंभ करती है। वह अपना रोग, दु:ख, भय, पराजय आदि का गंगा में तर्पण करती है और वापस वनमाली के पास लौट जाती है। वनमाली के साथ लिली के विवाह के रूप में उपन्यास का सुखद अंत होता है।

प्रस्तुत उपन्यास में उषा प्रियंवदा ने नई-सी दिखनेवाली कथाभूमि पर, बहुत सहज ढंग से मानव-मन की चिरंतन लालसाओं और उदासियों का अत्यंत कुशल और समग्र अंकन किया है।

इन उपन्यासों के आधार पर केवल इतना कहा जा सकता है कि मानवीय संवेदनाओं को उपन्यास के कैनवास पर उतारकर जो चित्रांकन उषा प्रियंवदा ने किए हैं वे बिना रंगों के इतने सजीव हो उठे हैं कि वे एक सामान्य जीवनगाथा लगते हैं। इन उपन्यासों में वह टीस, संघर्ष और विवशता है, जो जीवन को दुरूह बना देती हैं। उपन्यासों का कथ्य मार्मिक और दिल की

गहराइयों तक उतर जानेवाला है। इन उपन्यासों में नारी मुक्ति के स्वर हैं, मानवीय संवेदनाओं की लय है, प्रेम की सात्विक गंध है, जिजीविषा की उत्कट पिपासा है, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक मूल्यों के जलज भी खिले हुए हैं। अधिकांश उपन्यास नायिका प्रधान हैं एवं कथावस्तु मध्यवर्गीय परिवारों से संबध्द है। दाम्पत्य जीवन के उतार-“Öœाव व नारी शोषण के संदर्भ भी मार्मिक बन पड़े हैं।

समग्रत: स्वातंत्र्योत्तरकालीन महिला लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा का नाम और उनका लेखन एक विशिष्ट प्रकाशदीप है। मध्यमवर्ग, उसकी सांस्कृतिक चेतना और नारी अस्तित्व के मौलिक अन्वेषण का श्रेय उषा प्रियंवदा को जाता है। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में “...आधुनिक मध्यवर्गीय परिवारों की क्या स्थिति है, उनकी मान्यताएँ किस सीमा तक परिवर्तित ÆÖ ¸ही हैं और मूल्य-मर्यादा किन विषमताओं एवं विकृतियों के कारण खंडित हो रही हैं और उस परिवेश में तथाकथित आधुनिक नारी अपनी उच्च शिक्षा एवं अस्तित्व-रक्षा की भावना से †ÖŸÖ-प्रोत किस प्रकार मिसफि™ Æî - उषा प्रियंवदा ने अपनी कई कहानियों में इसका बड़ा ही यथार्थ एवं सजीव चित्रण किया है।”[26] अनुभूतिजन्य साहित्य परम्परा उषाजी की अपनी देन है, आज के नारी-जीवन की विसंगतियों को आत्मसात करके उन्हें आधुनिक रूप प्रदान करने का श्रेय उषाजी को जाता है। स्वातंत्र्योत्तर परिवर्तित संदर्भ, परिस्थितियाँ, मन:स्थितियाँ उनके द्वारा गहराई से आँकी गई हैं। “उन्होंने समकालीन युगबोध को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा की है और उसके यथार्थ आयामों को वास्तविक अभिव्यक्ति देने में ही उनकी ¯ÖxÖ²Ö¬¤ÖŸÖÖ ÃÖÖÛ´´Öx»ÖÖŸÖÖ Æî।”[27]

उषा प्रियंवदा की रचना-दृष्टि नितांत अनछुए जीवन-प्रसंगों एवं स्थितियों को भी अत्यंत संवेदनशीलता के साथ रचती है। छोटे-छोटे प्रसंग, मन:स्थितियाँ, व्यवहार, चिंताएँ, ज़रूरतें, सामाजिक भय आदि की अभिव्यक्ति में उनकी मानवीय चिंता और एप्रोच उनकी अपनी अभिरुचियों और संस्कारों द्वारा नियंत्रित हैं। इन क्षणों में जीवन का अर्थ खोजतीं वे अपने समय और समाज से संवाद स्थापित करती हैं। यह सार्थक संवाद स्वगतकथन या एकालाप नहीं है, बल्कि मनुष्य मात्र की सक्रिय सहभागिता से उन स्थितियों, मनोवेदनाओं का उद्‌घाटन है, जिनसे वह गुज़रता है। अपने अन्दर अवसाद से आच्छादित हो चुके जीवन को, प्रतिकूलताओं में भी जीवित रखने का प्रयत्न करता है। उर्जा, जि•ÖßÖ×¾ÖÂÖÖ, ÃÖ´Ö–ग, चयन, उत्साह, अनेक नाम

दिए जा सकते हैं, पर मूल अर्थ में वह विवेक - दृष्टि है, जो मानवीय नियति, विडम्बना और त्रासदी को अनुभव करने की क्षमता पैदा करती है।

उषा प्रियंवदा का प्रयास है ऐतिहासिक - सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में गतिमान वर्तमान के अंतर्विरोधों के बीच मानवीय सरोकारों को बचाए रखना।

उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य को पढ़ते हुए विशिष्ट सृजनशीलता के बहुआयामी ÃÖ¤3ÖÖ से साक्षात्कार होता है। वह अपने समय-समाज के परिवेश को अत्यंत संलग्नता और ईमानदारी से रचती हैं। उनकी शैली में त्वरा और आत्मीयता है, बुनावट में मौलिकता और अनूठा गठन है। सुक्ष्म दृष्टि से पर्यवेक्षण करते हुए अपनी भाषा की सृजनात्मक शक्ति के साथ वे सत्य की तह तक जाने का प्रयत्न करती हैं। गहरी मानवीय संवेदना की मौलिक अभिव्यंजना पध्दति के कारण वे हिंदी की समर्थ कथा-लेखिका हैं।

चिर परिचित संवेदनशील शैली में लिखे इस कथा साहित्य के भीतर से ॅाँकती मानसिकता आज भी अपनी देसी पहचान नहीं खो पाई है। चारों तरफ फैला जीवन अपने समूचे आकर्षणÖ ú-विकर्षण के बावजूद है तो विदेशी ही। देसी और विदेशी के बीच लगातार होता संवाद उषाजी की रचनाओं का प्रमुख आकर्षण है। सुदूर अमरीका के विस्कांसिन शहर में बैठी यह भारतीय कथाकार चाहे कहानियों के ताने-बाने बुने, चाहे अपने समूचे व्यक्तित्व को साथ लिये-दिये युरोप-भ्रमण करे, पाठक भूल ही नहीं सकता कि इनके पीछे से ॅाँकता एक मन है जो ठेठ भारतीय है।

उनकी स्थिति को उन्हीं के शब्दों में निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है - "एक प्रवासी के लिए घर लौटना एक मधुर और कचोट भरा अवसर होता है। घर से हम विदेश के लिए निकलते हैं तो आँखों में एक स्वप्न होता है। नए अनुभवों के लिए उत्साह रहता है। मन में एक उर्जा और शक्ति होती है, पर लौटते हुए मन में अनेक भावनाएँ गडमड होती रहती हैं। अपने परिवार में बैठने का सुख, अपनी भाषा बोलने का आनन्द और अपना देश। यह सब आह्वान करता है, पर साथ ही कहीं छुपा यह बोध भी रहता है कि हम पूरी तरह घर नहीं लौट पाएँगे हमारा एक अंश, हमारी भावनाओं और अनुभवों का एक भाग जैसे पीछे रह जाता है। अलमारी में लटकते कपड़े, रसोई के बर्तन, डब्बों में बंद पुराने पड़ते अचार और चावल, गैरेज में खड़ी मोटर जैसे हर चीज को हमारे लौटने की प्रतीक्षा रहती है। और भारत में सबसे घिरकर भी हम जानते हैं कि हमें लौटना है और फिर उसी व्यस्तता और अकेलेपन से जू-ाना है।"[28]

प्रवासी मन के इन्हीं मधुर-तिक्त अनुभवों की दास्तान है उनकी रचनाएँ जो पाठक को बहुत गहराई तक उद्वेलित करती हैं।

ÃÖ¤³Ö ÃÖ“Öß

१. आलोचना, अंक-47, †ŒÜÖ²Ö¸-×¤ÃÖ²Ö¸-1978, ¯Ö.20-21

२. नेमिचन्द्र जैन (सं.) : मुक्तिबोध रचनावली खंड-2, ¯Ö.348

३. डॉ.संतबक्श सिंह : नई कहानी : कथ्य और शिल्प, पृ.११७-118

४. सत्यप्रकाश मिलिंद (सं.) : हिंदी की महिला साहित्यकार, पृ.३९

5. ^ÂÖÖ ×¯Öयंवदा : मेरी प्रिय कहानियाँ (भूमिका) , पृ.५

६. उषा प्रियंवदा : शून्य तथा अन्य रचनाएँ, पृ.१५८

7. ¾ÖÆß, ¯Ö.161

8. ¾ÖÆß, ¯Ö.113

9. ¾ÖÆß, ¯Ö.123

10. ¾ÖÆß, ¯Ö.124

11. ¾ÖÆß, ¯Ö.123,124

12. ¾ÖÆß, ¯Ö.117

13. ¾ÖÆß, ¯Ö.129

14. ¾ÖÆß, ¯Ö.163

15. ¾ÖÆß, ¯Ö.122

१६. उषा प्रियंवदा : मेरी प्रिय कहानियाँ,पृ.०१

१७. इन्द्रनाथ मदान : आधुनिकता और कहानी, पृ.९७

१८. कान्हाजी सिंह तोमर : हिंदी कथा लेखिकाओं का रचना संसार, संचेतना-1971, अप्रैल,मई, जून, पृ.१६

१९. महीपसिंह (सं.) : संचेतना-´ÖÖ“Ö-1973, ¯Ö.23

२०. श्याम गोविन्द : आज की कहानी : समांतर कहानी, पृ.८

२१. डॉ. गोविन्द रजनीश : संचेतना, दिसम्बर-1978,¯Ö.49

22. ^ÂÖÖ ×¯Öयंवदा : शून्य तथा अन्य रचनाएँ, पृ.७२

23. ÃÖßŸÖÖ¸ü´Ö ¿Ö´ÖÖ : स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य, पृ.१९१

२४. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.८८

२५. उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ.१७९

२६. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक कहानी का परिपार्श्व, पृ.१४८

27. ¾ÖÆßü, ¯Öé.149

२८. उषा प्रियंवदा : शून्य तथा अन्य रचनाएँ, पृ.१६२

तृतीय अध्याय

उषा प्रियंवदा की कहानियों में आधुनिकता

2ÖÖ¬Ö

तृतीय अध्यायÖ

उषा प्रियंवदा की कहानियों में आधुनिकता बोध

आधुनिक हिन्दी कहानी के स्वरूप के विकास में आधुनिक जीवन-प्रवृत्तियों का महत्वपूर्ण हाथ है। प्रारंभ में मनुष्य की अनुभूति का स्वरूप अधिक जटिल और व्यापक नहीं था। लोगों की सीमित ज़रूरतें थीं और जीने का एक विशेष दायरा था। उसी में जो कुछ वे अनुभव करते थे, किसी के समक्ष अभिव्यक्त कर लेते थे। किन्तु आधुनिक युग में वि-ान और तकनीक की अद्‌भुत प्रगति ने पिछली सारी सीमाएँ और दायरे तोड़ दिये हैं, बाहरी देशकाल के भी और आंतरिक मान्यताओं के भी। त्वरित यातायत की सुविधा ने पहले धरती की परिधि को छोटा किया और अब ब्रह्माण्ड को सम्पर्क की बाँहों में समेटने को आगे बढ़ रही है। एक देश की आध्यात्मिकता और नैतिक मान्यताएँ तथा आकांक्षाएँ दूसरे देशों की आध्यात्मिक और नैतिक मान्यताओं तथा आकांक्षाओं से प्रभावित होकर टूट रही हैं अथवा बदल रही हैं। सारे विश्व का राजनैतिक तथा आर्थिक तंत्र परस्पर प्रभावित तथा सम्बध्द हो गया है। -ान और कला का स्वरूप सहसा राष्ट्रीय से अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है। वि-ान के प्रभाव ने आस्तिक-विश्वास के स्थान पर तर्कशील प्रश्न और विवेचन-विश्लेषण को प्रेरित किया है। मनुष्य के अस्तित्व, सुरक्षा और सुख-सुविधा का प्रश्न भी केवल स्थानीय और राष्ट्रीय परिस्थितियों से जुड़ा न रहकर विश्वव्यापी प्रसंगों से जुड़ गया है। उत्पादन और वितरण की मशीनी और तकनीकी नवीन व्यवस्था ने समाज में नये स्वार्थों, नये वर्गों और नये जीवन-आन्दोलन को जन्म दिया है, जो तीव्रता से अपने समाधान ढूँढ़ने के वैचारिक और क्रियापरक प्रयत्नों में लगे हुए हैं।

आज का औसत मनुष्य शंका, उल-ान, विषमता बोध, असंगति तथा अनिश्चय की मानसिकता से ग्रसित है। इसी आधुनिक मानसिकता का बोध वास्तव में आधुनिकता -²ÖÖ¬Ö Æü। और यह आधुनिक मानसिकता कहानी द्वारा बहुत स्वाभाविक रूप से व्यक्त हुई है। इसी आधुनिक मानसिकता के चलते स्वातंत्र्योत्तर काल में भारी बदलाव आता गया। पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण, वै-ानिकता, अतिबौध्दिकता, नगरीकरण, बढ़ती हुई आबादी, प्रस्थापित अर्थव्यवस्था, फिल्मों के दुष्परिणाम आदि के कारण मानवीय जीवन मूल्य टूटने लगे हैं और उनमें परिवर्तन होने लगा है। आदमी स्वार्थी हो गया है। वैयक्तिकता, निराशा, कुंठा, अनास्था, घुटन, विद्रोही भावना उसमें छा गई है। नज़दीक के रिश्तों को भी वह भूल गया है। मनुष्य

अर्थोपार्जन, राजनीति के गलत तरीकों को अपनाए जा रहा है। शहरीकरण, औद्योगीकरण के कारण अलग-अलग किस्म की समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। बौध्दिकता का महत्व इतना बढ़ रहा है कि मानवीय भावनाओं को वह निगल गई है। पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करने के बाद मनुष्य अनैतिक कृत्य करने लगा है। निष्ठा, शील, सत्य, उदारता, नैतिकता, प्रामाणिकता, पवित्रता, सदाचार आज मनुष्य में कम दिखाई देते है ं। सौंदर्यात्मक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, मानवीय जीवन मूल्यों का विघटन होता जा रहा है। इन सभी स्थितियों का चित्रण उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में यथार्थता से किया है। इसीलिए डॉ.शिवकुमार शर्मा लिखते हैं, "उषा प्रियंवदा के कथ्य में पर्याप्त वैविध्य है और उसमें आधुनिक जीवन बोध के विविधमुखी आयाम हैं।"[1]

उषा प्रियंवदा उन लेखिकाओं में से हैं जिन्होंने ईमानदारी से आधुनिकता को स्वीकारा है। जीवन के यथार्थ और अनुभूत सत्यों को अभिव्यक्त करने में उन्होंने जिस साहस का परिचय दिया है वह सहज नहीं है। "उषा ने कृतिकार की ईमानदारी के साथ जीवनानुभव की प्रामाणिकता को कथा में उतारते हुए वर्जित सत्यों को भी जिस साहस लेकिन सहजता के साथ प्रस्तुत किया है, उसका सबूत 'चाँदनी में बर्फ़ पर', 'मछलियाँ', 'x¯Ö‘Ö»ÖŸÖß Æ‡ ²Ö±ÔÖ', 'सागर पार का संगीत' जैसी कहानियों में तो है ही उनके सद्य: प्रकाशित (लघु) उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' में भी है। वे बिना किसी दावपेंच के (कभी-कभी फ्लैश बैक की मदद से) कहानी को बड़ी अलोनी सच्चाई से सामने रख देती है ं। उनमें बनता जैसा कुछ नहीं है। विवेकपूर्ण व्यवहार के साथ गहरी करुणा से मानवीय नियति को वे रेखांकित करती हैं।"[2]

उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में सामाजिक कुरूपताओं विसंगतियों, अंधविश्वासों, कट्टर मान्यताओं व इन्हीं से जुड़ी तमाम विडम्बनापरक स्थितियों की पूरी गहराई से छान-बीन कर तथ्यात्मक निष्कर्षो द्वारा पुरानी मान्यताओं और घिसट रहे जीवन मूल्यों पर तीव्र चोट की है। कहीं पारिवारिक जीवन की आर्थिक स्थितियों से बदल रहे मानवीय संबंधों का यथार्थ चित्रण किया है तो कहीं युगीन मूल्यों के विघटन पर तर्कसंगत सूक्ष्म दृष्टिकोण द्वारा सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में परम्परागत जीवन-मूल्यों के विघटन व नवीन पैदा हो रहे जीवन-मूल्यों के बीच टकरावों व द्वन्द्वों का ज़िक्र सर्वत्र नज़र आता है। कहानियों में परिवेश की भिन्नता के बावजूद उन्होंने अपनी बौध्दिक पहचान द्वारा सभी परम्परागत जीवन-मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह संकेतित करते हुए नये जीवन-मूल्यों की वक़ालत की है।

इस प्रकार सामाजिक व पारिवारिक स्थितियों में हो रहे परिवर्तनों की बेबाक समीक्षापरक दृष्टि द्वारा संबंधों के बनते और बिगड़ते रूपों को भी उषा प्रियंवदा ने सामयिक जीवन-बोध से अपना गहरा सरोकार जोड़ते हुए स्वर दिया जिससे उनकी बौध्दिक सजगता और सक्रियता का आभास स्वत: ही होने लगता है।

¾ÖÖÃÖŸÖ¾Ö में उषा प्रियंवदा की कहानियाँ वैयक्तिक और सामाजिक दोनों प्रकार के मूल्यों से संबंधित हैं और आज के कुछ कहानीकारों की तरह उनके लेखन की धारा भी समष्टिगत चिंतन से व्यष्टिचिंतन की ओर मुड़ी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी के जीवन में तमाम परिवर्तन हुए हैं। आज की नारी नये मूल्यों को अपनाना चाहती है। वह पुराने मूल्यों को अस्वीकार करने के लिए उद्यत है। इस स्वीका¸-अस्वीकार में विवेक का प्रयोग कम है और मानव तथा आधुनिकता का असंतुलित आकर्षण ज्यादा है। इसके परिणामस्वरूप आज की नारी का चुनाव सदा संतोषजनक ही नहीं होता। इसी प्रकार उसकी उपर्युक्त प्रवृत्ति के क्या-क्या नतीजे हैं इसका बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण उषा प्रियंवदा ने किया है। आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार दुविधा की स्थिति में है। उनकी मान्यताएँ बदल रही हैं। उनकी आस्थाएँ विषमताओं और विकृतियों के कारण टूट रही हैं ऐसे परिवेश में आधुनिकता से आकर्षित शिक्षित नारी अपने को अजनबी पाती है। इन सबका भी उषा प्रियंवदा की कहानियों में यथार्थपूर्ण और प्रभावकारी चित्रण हुआ है।

Ã¯ÖÂ™ है कि उषा प्रियंवदा ने सामयिक युग-बोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में पकड़ने और ईमानदारी पूर्वक अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। सम्प्रेषण की सच्चाई के प्रति इनका आग्रह अधिक है। '²ÖÃÖÖŸÖ' के पुनरागमन की नयी पीढ़ी के द्वन्द्वों को समेटने से प्रारंभ होकर 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूलों' जैसी मोहक काल्पनिक रमणीयता में भी उत्पन्न असंतोष जैसे अन्तर्विरोधों से सृजित उषा प्रियंवदा का लेखन जीवन के अपने रास्तों को तय करते हुए 'एक कोई दूसरा' विकल्प ढूँढ़ने की लगातार कोशिश के दौरान भी मोहभंग जैसी कटुस्थितियों से गुज़रा और आठवें दशक की शुरुआत में उन्होंने महसूस किया कि सामने की ज़िंदगी में 'कितना ²Ö›Ö –ÖŠ' छिपा मौजूद है। परिवेशगत अभारतीय सम्पर्कों के बावजूद भी कहानियों में भारतीयता की -लक सर्वत्र देखी जा सकती है। इसी कारण कहानियों में सर्वत्र µÖ£ÖÖ£ÖŸÖÖ का मौजूद रहना एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाता है।

भारतीय मान-मर्यादाओं से लेखिका भली-भाँति परिचित है। पुराने से किंचित् जुड़े होने के कारण उन परम्पराओं पर वज्राघात भी नहीं करतीं ; इतना अवश्य है कि उन्हें

नवीनीकृत कर आधुनिकता का जामा पहना देती हैं। यह विकासयुक्त एवं विवेकयुक्त दृष्टिकोण है जो इन्हें समर्थ लेखिका बनाता है तथा इनकी कहानियों को आधुनिक परिवेश ´Ö ढालकर जीवन से जोड़ता है। अत: उषा प्रियंवदा की कहानियों में प्रतिफलित आधुनिकता-²ÖÖ-Ö को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत विवेचित किया जा सकता है :

३.१ पारिवारिक विघटन और मध्यवर्गीय-²ÖÖ¬Ö :

परिवार समाज की एक ऐसी संस्था है जिसे मानव ने आत्मसंरक्षण, वंशवर्धन और जातीय जीवन के विकास हेतु स्थापित की है। भारतीय संस्कृति में परिवार के इसी विशद् दृष्टिकोण को चरितार्थ कर¾Ö Æê‹ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को प्रश्रय दिया गया है। इसीलिए भारतीय जीवन प्रणाली में परिवार को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। परन्तु कालप्रवाह में वर्तमान भौतिक युग में समाज में विभिन्न कारणों से बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन आ रहे हैं इन परिवर्तनों से सामाजिक संस्थाएँ भी प्रभावित हुई हैं; परिवार भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं रहा, जो परिवार इन परिवर्तनों के साथ प्रभावित हो जाते हैं वहाँ तनाव और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो •ÖÖ¾ÖÖß Æ-वहाँ विघटन होता है।

आज का व्यक्ति नये मानवीय दृष्टिकोणों और आयामों की तलाश करता है। प्रस्थापित नैतिकता के कई मूल्य आज खोखले एवं नकारा साबित हुए हैं। शहर हो या गाँव, घर हो या ²ÖÖÆ¸ü - सामूहिक संस्थाओं का पारंपरिक महत्व, जले हुए मोम की तरह पिघल कर समाप्त हो जाता है (या कहें हुआ भी है) और इसके बदले नवीन युगानुकूल आदर्शों की स्थापना हो रही है | ¯ÖÖ×¸¾ÖÖ×¸क विघटन की इस विडंबना के बारे में पुष्पपाल सिंह लिखते हैं - "आज मानवीय रिश्ते उसी रूप में मान्य नहीं रहे जैसे पहले थे। संयुक्त परिवार के विघटन और रोजी रोटी की तलाश में परिवार के सदस्यों का बाहर जाकर बस जाना आदि के परिणामस्वरूप परिवार के सदस्य अपनी छोटी-छोटी इकाईयों तक ही अपने को सीमित रखने लगे। मानवीय संवेदना पर अर्थ का स्वार्थ हावी होकर बहुत सारे आत्मिक संबंधों को बेमानी बना रहा है। माँ-²ÖÖ¯Ö, ×¯Ö¾ÖÖ-¯Ö¡Ö, ¯Ö¡Öß, ³ÖÖ‡-बहन, पति-पत्नी, भाई-भाई आदि के बीच अनाम दूरियाँ आ गयीं जिसके कारण ये संबंध दरकने लगे। समकालीन कहानी में इन संबंधों के विषय में बहुत अधिक लिखा गया है।"[3]

उषा प्रियंवदा ने अपनी अनेक कहानियों में पारिवारिक विघटन एवं मध्यवर्ग के यथार्थ के अनेक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। डॉ.गोरधन सिंह शेखावत लिखते हैं - "उषा प्रियंवदा ने मध्यमवर्ग के पारिवारिक यथार्थ एवम् उसकी समस्याओं को सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। सामाजिक विषमता, पति-पत्नी के संबंध और प्रेम के विविध पक्षों का उद्घाटन उनकी कहानियों में हुआ है। उनकी कहानियों में संघर्षशीलता एवं टूटते परिवारों की मार्मिक कथा है।"[4]

'¾ÖÖ¯ÖÃÖß' के कथानायक गजाधर बाबू ३५ वर्षों तक अपने परिवार से दूर रहने के बाद रिटायर्ड होने पर अपने परिवार के साथ रहकर सुख भोगने का स्वप्न अपनी आँखों में सँजोए वापस आते हैं। किन्तु घर आने पर, वहाँ की सुनियोजित व्यवस्था में अपने को नितांत मिसफ़िट ही पाते हैं और इसी से उनके भावुक मन को कहीं एक गहरी ठेस लगती है। अब न तो उनकी पत्नी ही उनसे पूर्ववत प्रेम करती है और न ही उनका पुत्र और पुत्री उनके प्रेम का प्रतिदान कर पाते हैं। यही उनके जीवन का कारुणिक दु:खांत है। अंत में विवश हो कर वे अपने परिवार से ¤र होने का निर्णय लेते हैं और उन्हें एक चीनी-मिल में नौकरी मिल जाती है। वे घर छोड़कर जाते समय अपनी पत्नी (जीवन-सहचरी) को भी अपने साथ चलने के लिए कहते हैं; किन्तु वह अपनी विवशता जतलाते हुए कहती है - "मैं? मैं चलूँगी, तो यहाँ का क्या होगा ? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की...."[5] और थके-हारे वयोवृध्द गजाधर बाबू हताश स्वर में उससे केवल इतना ही कह पाते हैं- "ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था।"[6]

इसके बाद रिक्शे पर बैठते समय अपने परिवार की ओर एक दृष्टि (हसरत-भरी नज़र) डालकर वे −ाट से दूसरी ओर देखने लगते हैं। इस एक भंगिमा से ही उनका हृदयगत मोह-भंग सूचित हुआ माना जा सकता है। कहानी के अंत में गजाधर बाबू के अपने घर से निकलते ही उनकी पुत्रवधू और पुत्री बसंती दोनों ही सिनेमा देखने के लिए जाने का कार्यक्रम बनाने लग जाती हैं। मानों उस घर के मुख्य सदस्य ससुर, पिता या पति नहीं, इतने दिनों से उस घर में छाई हुई घुटन ही वहाँ से निकलकर चली गई हो, यह सारा जश्न उसी के जाने की खुशी में हो। गजाधर बाबू की पत्नी भी अपने पुत्र को आदेश देती हैं कि - "अरे नरेंद्र ! बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। इसमें चलने तक की जगह नहीं है।"[7]

कथांत में उभरी हुई यह '"ÖÖ¸¯ÖÖ‡' वास्तव में स्वयं नायक गजाधर बाबू के निजी व्यक्तित्व या अस्तित्व का ही प्रतीक बन जाती है। वही गजाधर बाबू, जोकि अपने ही घर में

एक '†×ÿÖ×¸ŒÖ' या '±ÖÖ»ÖÿÖ' सदस्य के रूप में अपने व्यर्थता-²ÖÖ-Ö ÃÖ ³ÖßÿÖ¸-Æß-भीतर इतने दिनों तक दंशित चल रहे थे। एक प्रकार से गृहस्वामिनी उस अनचाही चारपाई को नहीं, मानो अनचाहे पति को ही अपने घर से जल्दी-ÃÖ-जल्दी निकाल देने के लिए बेचैन हो रही है। यही इस कहानी का एक कारुणिक दु:खांत कहा जा सकता है।

गजाधर बाबू को लगता है, मानो वे 'ज़िंदगी द्वारा ठगे गए हैं'। उन्हें अपने वर्तमान जीवन में रह-रहकर एक 'अस्थायित्व का अनुभव' होने लगता है। उन्हें अपनी स्थिति के प्रति पत्नी में सहानुभूति का पूर्ण अभाव प्रतीत होने लगता है। यही उनके मानसिक तनाव को चरम तक पहुँचाता चला जाता है। आज के मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन की यही करुणामयी त्रासदी और नियति मानी जाएगी। स्पष्ट है कि इस कहानी में संयुक्त परिवार के बिखराव और आधुनिकता-बोध की अनिवार्य जीवन दृष्टि के उभार के साथ-साथ मध्यवर्ग के नैतिक छद्म को भी अनावृत किया गया है।

मध्यवर्गीय सोच का व्यक्ति अपनी दयनीय स्थिति को जानता है पर उसकी चेतना उसे ²ÖÖ¸-²ÖÖ¸ 'स्वाभिमानी' का जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है। पर वह अपनी पारिवारिक बेहतरी एवं विवशता के कारण निरीहता की स्थिति को बर्दाश्त करता है। 'ज़िंदगी और गुलाब के फू»Ö' कहानी का नायक सुबोध ऐसी ही ज़िंदगी जीता है। अत्यधिक व्यस्त और यांत्रिक समाज में संबंधों की नींव, 'आर्थिक स्थिति' †Ö¸ 'वर्तमान' में उसकी उपयोगिता में है, क्योंकि सुबोध की नौकरी छूटने पर माँ एवं बहन के बदले हुए व्यवहार से उसे एहसास होता है कि जब तक अर्थरूपी गुलाब उसके जीवन में था तब तक उसका जीवन प्रेमिका के, माँ और बहन के प्रेम से सिंचित था। जैसे ही अर्थरूपी गुलाब सूख गये उनके स्नेहस्त्रोत भी सूख गये। वृंदा नौकरी करने लगती है तो उसे छोटी-छोटी बातों के लिए बहन से अपमानित होना पड़ता Æ। वह बेकार होने से उसकी घड़ी, मेज़, सारी चीज़ें वृंदा के कमरे में चली जाती हैं। ¯ÖÆ»Ö ^ÃÖ अपनी चीज़ें वृंदा के कमरे में सजी देख कुछ अटपटा सा लगता था किन्तु अब वह अभ्यस्त हो चुका था। यद्यपि उसका पुरुष ह्रदय घर में वृंदा की सत्ता स्वीकार न कर पाता था।[8] ¯Ö1¡ÂÖ सत्ता को कमाऊ के व्यवहारों ने छोटे-छोटे अवसरों पर तोड़ने की कोशिश की है। एक समय यही बहन भाई के लिए सेवा एवं समर्पण का भाव रखती थी आज वही बहन अर्थ के कारण भाई के प्रति समर्पण-त्याग तो क्या आदर एवं सम्मान को ही भूल चुकी है, माँ का उपेक्षापूर्ण व्यवहार

भी पुत्र को सालता है। भाई-बहन, माँ-बेटे के स्नेहिल संबंधों में मूल्यपरिवर्तन की स्थिति दृष्टिगोचर होती है।

'¾ÖÖ¯ÖÃÖß' कहानी के अंत में उभरने वाली '±ÖÖ»ÖÖ¾ÖÖ' हो गई या महसूस की जानेवाली चारपाई की ही तरह से यहाँ भी कथांत में कोने में पड़ा हुआ मैले कपड़ों का ढेर, ढीली चारपाई, गन्दा बिस्तर और तिपाई पर ढँका रखा भोजन-ये सब अपने ही घर में कथानायक सुबोध के उपेक्षित हो चुके या किये जा रहे व्यक्तित्व की कहानी एक सर्द, किन्तु जानलेवा चुप्पी की ज़बानी सुना रहे हैं। यहाँ ऊपर से देखने पर तो घर का वातावरण अत्यंत शांत जान पड़ता है, परन्तु भीतर-भीतर एक ज्वालामुखी नायक के मन-प्राणों में धधक रहा है और वह किसी भÖß समय फट सकता है, अत: यह चुप्पी मानो आने वाले किसी तूफ़ान का ही पेशेख़ेमा जान पड़ती Æ।

¯ÖÖ×ŸÖ-पत्नी परिवार रूपी रथ के दो पहिए हैं। किसी एक के अभाव में भी यह रथ आगे बढ़ नहीं सकता। किन्तु आधुनिक परिवेश की विडम्बना यह है कि यह पवित्र रिश्ता भी आज कोई मायने नहीं रखता। व्यक्ति इतना निर्मम हो चुका है कि संतान से दूर होने पर भी किसी प्रकार का कोई भाव उसके मन में नहीं जागता। 'प्रतिध्वनियाँ' कहानी की वसु अपनी बेटी और पति से संबंध विच्छेद कर चुकी है, विदेश में रहती है अब भारत घूमने आई है। यहाँ पति-श्यामल और बेटी-रुचिरा से मिलती है। मिलने पर किसी के मन में विगत घटनाओं के लिए अफ़सोस, पछतावा या गिल्ट का एहसास नहीं है। उल्टे श्यामल, वसु को कहता है - "... •ÖÖ रास्ता तुमने चुना है, उसी पर बहुत विश्वास से चलती रहो। जिसमें तुम्हें सुख मिले वही करो।"[9] ¤ÖÖनों अपनी-अपनी जगह तटस्थ हैं, कहीं भी भावनाओं से बँधे हुए नहीं हैं। जीवन जिस रूप में बह रहा है, उसी रूप में उसे स्वीकारते हैं। बेटी-रुचिरा से मिलने के समय वसु के मन में कहीं भी भावातिरेक नहीं है।

उषा जी ने नारी के व्यस्त जीवन के माध्यम से टूटते परिवार की इकाई का वर्णन किया है। इससे सामाजिक मूल्य, नैतिक मूल्य तथा वात्सल्य के मूल्य टूटे। उच्च शिक्षा प्राप्त नारी किसी प्रकार अपने व्यक्तित्व, अहं तथा अस्तित्व की रक्षा करना चाहती है। विदेशी वातावरण में वह परिवार तथा सगे संबंधियों को महत्त्व नहीं देती है। 'मछलियाँ' कहानी में विजी और मनीष के संबंधों का चित्रण किया गया है। मनीष के आग्रह पर विजी भारत छोड़कर विदेश आती है, परन्तु मनीष विजी में न तो स्मार्टनेस देखता है और न अपनी अभीष्ट की पूर्ति पाता है।

इसलिए दोनों का संबंध टूटता है। मनीष की अलगाव प्रवृत्ति से विजी टूट जाती है तो नटराजन से अपनी भावना अभिव्यक्त करती है। नटराजन से मनीष अपनी इच्छाओं के विषय में कहता Æ - "विजी के लिए मेरे मन में अब कुछ नहीं बचा ! वह बहुत सीधी, सरल अनकाम्प्लिकेटेड लड़की है। मु‑ने बांध सके, संतुष्टि दे सके ऐसी मानसिकता नहीं है उसमें। मु‑ने पत्नी चाहिए तो मुकी जैसी कलात्मक, स्फूर्तिदायक, इण्टेलेक्चुअल।"[10] यही नहीं विजी मनीष के लिए परिवार त्यागकर न्यूयार्क चली आने पर, पारिवारिक जीवन टूटता है। पिता-पुत्री का संबंध, भाई-बहन का रिश्ता सभी कुछ टूट गया, विजी के कथन में - "इतना लड़-भिड़कर इतने गर्व के साथ चली आई थी। यह किस मुख से लिखती, कि शादी टूट गई, मनीष का जी मु‑त से भर गया है।"[11] इतना ही नहीं मध्यवर्गीय परिवार से जुड़ी होने के कारण उसे माँ के गहने बेचकर न्यूयार्क आने का प्रबंध करना पड़ता है। इस प्रकार व्यक्ति विदेशी प्रभाव में अपने रागात्मक, तथा भावात्मक संबंधों को भूलता जा रहा है। मानवीय संबंध स्वार्थपूर्ति और आत्मोपलब्धि तक सीमित हो गए हैं। विजी और मनीष का संबंध भी क्षणिक बनकर रह जाता है।

प्राचीन काल से सास-ससुर का स्थान समाज मे सर्वोपरि रहा है। बहू के मन में उनके प्रति अपार श्रध्दा रहती थी। सास भी उसे पुत्रवत मानती थी परन्तु सास-बहू का ऐसा स्नेहिल ˣ¸¿ता आज दुर्लभ है। आमतौर पर सास का व्यवहार बहू के लिए पीड़ित और यातनामय साबित होता है। अगर सास के साथ उसकी बेटियाँ हों तो बहू को सास एवं ननदों की यातनामय यंत्रणाओं से गुज़रना पड़ता है। सास के कारण बहू की दयनीय स्थिति '¯Ö¸´²Ö»Ö™¸' कहानी में देखने को मिलती है। कालिंदी मृत कन्या को जन्म देती है परन्तु उसकी पीड़ा उसकी टूटन से सास-ननद को ज़रा भी सहानुभूति नहीं है। सास कहती है - "´Ö¸ ¤ÃÖ ²Ö""ÖÖ ´Ö ÃÖ ": जाते रहे, मैंने ऐसा दु:ख कभी नहीं मनाया।"[12] ननद ताना देती है - "†¸ †´´ÖÖ, Æ´Ö ³Ö»ÖÖ बाल बच्चों की ममता क्या जानें।"[13] जिस परिवार में बहू के प्रति ऐसा व्यवहार किया जाएगा वहाँ बहू कहाँ तक पारिवारिक संबंधों को निभा सकेगी। ऐसी दशा में परिवार का विघटन अवश्यम्भावी है।

आज की आधुनिक युवती को पारिवारिक बंधन स्वीकार नहीं है। अतÖ: ¾ÖÆ ¯Öx¸¾ÖÖ¸ ÃÖ दूर अपने मनोनुकूल जीवन जीना चाहती है। '¥ÛÂ™¤ÖÂÖ' कहानी की चन्द्रा अपने परिवार से किसी भी प्रकार का संबंध नहीं रखना चाहती। उसे सास-ससुर के प्रति कोई मोह नहीं है। Œयोंकि दोनों के पारिवारिक रहन-सहन के स्तर में काफी अंतर है। साम्ब एक मध्यवर्गीय तथा

परम्पराओं को मानने वाले परिवार का मेधावी युवक है जो अपनी मेहनत से उँची नौकरी पाता Æ | ¤ÃÖ¸ß ŸÖ¸±ú चन्द्रा एक रईस, आधुनिक परिवार की लड़की है इसीलिए वह न अपने पति से सामंजस्य रख पाती है और न ही सास-ससुर से। परिणामस्वरूप साम्ब माँ-बाप के साथ चन्द्रा की ज़िन्दगी से निकल जाता है। बेटे का कर्तव्य निभाने के लिए वह पति रूप को त्यागता है। अंतत: चन्द्रा को अपनी गलती पर पश्चाताप होता है परन्तु विवाह के रसीले पहले दिन मनमुटाव एवं तनÖ¾Ö ´Ö ²ÖßŸÖ •ÖÖŸÖ Æ |

सारांशत: आज मानवीय संवेदना पर अर्थ का स्वार्थ हावी होकर बहुत सारे आत्मिक संबंधों को बेमानी या बेमतलब का बो-ा ढोने की रस्म बना रहा है। माँ-²ÖÖ¯Ö, ×¯ÖŸÖÖ-¯Ö¡Ö, ¯Ö¡Öß, ³ÖÖ‡-बहन, पति-पत्नी, भाई-³ÖÖ‡, ÃÖÖÃÖ-बहू आदि के बीच अनाम दूरियाँ आ गयीं, जिसके कारण ये संबंध दरकने लगे। '´ÖÖÆ²Ö-Ö', 'क¯™ß»Öß "Ö™', '¤Ö †-Ö¸', 'स्वीकृति', 'कितना बड़ा -ÖŠ', '-नूठा दर्पण', 'नींद', '¯ÖÙŸÖ' आदि कहानियों में भी पारिवारिक विघटन के चित्र देखने को मिलते हैं।

३.२ दाम्पत्यगत दूरियों की ईमानदार स्वीकृति :

दाम्पत्य संबंध परिवार की नींव है। गृहस्थी रूपी रथ के दोनों पहिए सुचारु रूप से संचालित होकर जीवन रूपी पथ पर चलते हैं तो सुखरूपी उद्दिष्ट स्थल तक बिना बाधा पहुँच सकते हैं। परन्तु मानव जीवन निश्चित परिपाटी पर चल नहीं सकता, परिवर्तित परिस्थितियों का प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है। बदलती हुई परिस्थितियों में व्यक्ति स्वयं बदलता है और उसका प्रभाव पारिवारिक संबंधों पर पड़ता है जिससे पारिवारिक संबंध परिवर्तित होते हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में नई स्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिससे स्त्री-¯Ö¹ýÃÖ ÃÖ²Ö-Ö ¯Ö³ÖÖ×¾ÖŸÖ Æü | Ã¡Öß शिक्षा, स्त्री स्वांतत्र्य स्त्री-पुरुष समानता, स्त्रियों का अर्थ स्वावलम्बन, पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण आदि स्थितियों के परिणामस्वरूप पति-पत्नी संबंध प्रभावित हुए हैं।

जिस प्रकार परम्परागत मूल्यों का विघटन हो रहा है , संयुक्त परिवार की संस्था टूट रही है, उसी प्रकार स्त्री-पुरुष के संबंधों में भी परिवर्तन आ रहा है। दिन-²Ö-दिन उनके संबंधों में तनाव पैदा हो रहा है। पारिवारिक मूल्यों की संक्रान्ति अवस्था में गुज़रता हुआ भारतीय ¯Ö×¸¾ÖÖ¸ Ã¡Öß-पुरुष के आपसी तनाव को बड़ी द्रुतगति से महसूस कर रहा है। इसका एक अनिवार्य परिणाम यह हुआ है कि हमारे समाज की वह आदर्श नारी (जिसका पति उसके लिए

सब कुछ होता था, जिसकी वह सच्चे मानों में पत्नी होती थी), अब वह परम्परागत टैकूज़ से ऊपर उठ कर एक समस्या के रूप में खड़ी है। पति और पत्नी के रिश्तों में अमूलाग्र परिवर्तन उपस्थित हुए हैं। उनमें दूरियाँ बढ़ती ही जा रही हैं। इन दूरियों के अनेक कारण है, जैसे पति-पत्नी का अहं भाव, जीवन स्तर में असमानता, तीसरे व्यक्ति का प्रवेश, असंतोष आदि | ±ú»ÖŸÖ: एक दूसरे के बीच मनमुटाव, अकेलापन और उल-ान उत्पन्न हो जाती है। वे एक दूसरे को अपने साथ व्यवस्थित नहीं कर पाते हैं। उषा प्रियंवदा ने इन दाम्पत्यगत दूरियों को स्वीकृति प्रदान की Æ और अपनी कहानियों में इन स्थितियों का यथार्थ अंकन किया है।

हर मनुष्य स्वतंत्रता का आकांक्षी होता है। वह सोचने सम-ाने, निर्णय लेने, रहन-सहन, कार्य करने में स्वतंत्रता चाहता है यदि किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी इस स्वतंत्रता का हनन होता है तो उसके मन में असंतोष निर्माण होता है और रिश्ते में दरार निर्माण होती है। '•ÖÖ»Ö' कहानी में राजेश्वर और कौमुदी के दो से एक होने और फिर एक से दो होने की स्थिति को उजागर किया गया है। इसमें चिरकाल तक दो व्यक्तियों का अविवाहित रहना किस तरह इन्हें विवाहित जीवन के लिए अयोग्य बना डालता है इसका चित्रण किया गया है। विवाह से पूवÖ कौमुदी और राजेश्वर अपने-अपने एकांत में स्वतंत्र, संतुष्ट एवं सुखी थे। प्रेम और विवाह के जंजाल में पड़कर अपनी स्वतंत्रता को वे खोना नहीं चाहते थे। परन्तु एक-दूसरे से परिचित होने के बाद दोनों में सहज भाव जागता है और दोनों विवाह कर लेते हैं। विवाह एक ऐसी व्यवस्था है, जहाँ दोनों एक-दूसरे को स्वंतत्रता देते हुए भी एक-दूसरे पर नियंत्रण रखना चाहते हैं। राजेश्वर इस बात को सÖ´Ö-ा नहीं सकते। उसे लगता है कि कौमुदी का व्यक्तित्व उसे लीलता जा रहा है और उसने सारे घर को पूरी तरह बदल दिया है। वह अनुभव करने लगता है कि उसकी मेज़, कुर्सी, किताबें उससे छिन गई हैं, और इस तरह उसके शरीर के अंग काट दिए गए हैं। अपने पुराने जीवन को फिर से जीने के लिए वह छटपटाने लगता है - "उनको लगता है कि वह मकड़ी के जाले में घिरकर रह गए हैं। जिसके तार दूर से बहुत सुकुमार और बहुत आकर्षक लगते हैं, पर एक बार उसमें फँस जाने के बाद निष्कृति की कोई आशा नहीं रहती।"[14] ‡ÃÖ ŸÖ¸Æ उषा प्रियंवदा ने पति-पत्नी में उत्पन्न दुराव को चित्रित करते हुए विवाहित जीवन को नयी दृष्टि से आँकने का यत्न किया है और नारी-पुरुष के अनमेल को नये संदर्भ में चित्रित किया है।

×¾Ö¾ÖÖ×ÆŸÖ ¯Ö×ŸÖ-पत्नी किसी कारणवश यानी निवास की समस्या या नौकरी के कारण अलग रहने के लिए विवश हो जाते हैं तो समय के अंतराल से दाम्पत्य जीवन में दूरी बढ़ जाती

Æ | 'स्वीकृति' कहानी का सत्य और जपा पाँच साल से अलग रहते हैं। जपा नौकरी के कारण सत्य से दूर रहने के लिए गयी है। सत्य चाहता है जपा नौकरी करके पैसा कमाए, उसकी दृष्टि से रुपये-पैसे महत्वपूर्ण हैं। इसी अर्थ ने दोनों के बीच अन्तराल पैदा किया है। जपा सत्य के प्रति अपनी तटस्थ भावनाओं का विश्लेषण क¸ÝÖß Æ- "उसे तब अपने ऊपर आश्चर्य हुआ-अपनी दृष्टि के इस ठण्डेपन और निरपेक्षता पर। वह दृष्टि एक पाँच साल की विवाहित पत्नी की अपने पति के प्रति नहीं थी, वह थी केवल एक स्त्री दृष्टि अन्य पुरुष के प्र×ÝÖ |"[15] यहाँ रिश्तों में आए ठण्डेपन का एक और कारण है पति का पत्नी की भावनाओं की कद्र न करना। हर पत्नी की इच्छा होती है कि पति उसकी भावनाओं की कद्र करे परन्तु जब पति द्वारा उसकी भावनाओं की कद्र नहीं की जाती तो पति-पत्नी के बीच फासला बढ़ने लगता है। जपा सत्य द्वारा अपनी उपेक्षा सह नहीं पाती - "सत्य ने जपा के रंग रूप उसकी भावनाओं और इच्छाओं पर कभी ध्यान नहीं दिया। जपा सदा उसके लिए एक निमित्त रही। साथ रहने पर भी शायद सत्य ने यह नहीं जाना कि प्राय: रात को जागकर वह छत के अंधेरेपन को ताकती रहती है, जबकि वह स्वयं गाढ़ी नींद में सोया रहता है।"[16] <ÃÖ ´Ö •Ö¯ÖÖ के जीवन में तीसरे पुरुष का आगमन होता Æ †Ö¸ ^ÃÖ ¸ÖÆÝÖ ×´Ö»ÖÝÖß Æ |

रुचि वैषम्य एवं व्यक्तित्व विकास की पूर्ति का असंतोष-वैचारिक समानता के अभाव में गृहस्थी रूपी गाड़ी सुचारू रूप से चल नहीं पाती है। कभी-कभी रुचि वैषम्य की यह नौबत तलाक़ तक आ जाती है। अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग, जागरूक, स्वतंत्र विचारों की स्त्री अब इन वैचारिक असमानताओं से उत्पन्न संघर्ष में दाम्पत्य संबंध में घुटन अनुभव करती है जब यह घुटन की स्थिति भी असहनीय हो जाती है तब तलाक लेना पसन्द करती है। 'प्रतिध्वनियाँ' कहानी की वसु और श्यामल की एक पुत्री भी है किन्तु उनके संबंधों में इतनी दरार आ गयी है कि वसु अपने पति को तलाक देती है। वसु अपनी बहन से स्पष्ट रूप से कहती है- "•Öß•Öß, डाइवोर्स तो हमारा उनके लौटने के पहले ही हो गया था। और हुआ भी था उन्हीं की तरफ से। एक तरह से अच्छा ही हु†Ö | 'एक मीनिंगलेस-ÃÖß ¸Ã´Ö' ने हमें बाँध दिया था। अब हम दोनों Æß ´ÖŒÝÖ Æ |"[17] यहाँ संबंध विच्छेद का एक और कारण है कामेच्छा की तीव्रता। वसु अतृप्त कामेच्छा के कारण परिवार का त्याग करती है। आधुनिक, खास तौर पर विदेश में बस गई नारियाँ स्वच्छन्द यौन संबंधों की कितनी हिमायती हो गई हैं ये इस कहानी द्वारा स्पष्ट हुआ

है। वसु की ज़िंदगी में आये असंख्य पुरुष भी उसकी कामेच्छा को तृप्त नहीं कर सके। यहाँ रिश्तों का व्यावहारिक रूप सामने आता है।

दाम्पत्य जीवन को विघटित करने वाले विविध कारणों में तनाव एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 'चाँदनी मे बर्फ़ पर' कहानी में तनावग्रस्त दाम्पत्य जीवन पर मँडराते काले बादलों की छाया चित्रित है। हेम की पत्नी मीरा पाश्चात्य देश की होने के कारण काफी खुले विचारों की है, वह अपने दोस्तों के साथ घूमती है, स्केटिंग करती , बीअर पीती है। हेम को यह सब पसंद नहीं है और वह मीरा पर प्रतिबंध भी नहीं लगा पाता। ऐसे में दोनों के बीच का तनाव ²ÖœŸÖÖ •ÖÖŸÖÖ Æü - "दोनों के बीच का सहज आलाप का जो निर्बाध स्रोत था, अचानक ही चुक गया है। पति-पत्नी हैं इसलिए साथ रहते हैं, पर हेम में एक बेगानापन-सा घर करता जा रहा है।"[18] यह तनाव दोनों के संस्कारों में होने वाले अंतर से निर्माण हुआ है। इस तनाव के कारण हेम स्वयं को नितांत अकेला एवम् अजनबी महसूस करता है।

प्रेमी या प्रेमिका के प्रति अत्यधिक आकर्षण या स्नेह भी पति-पत्नी के संबंधों को तहस-नहस कर सकता है। किन्तु समाज में अभावात्मक उदाहरण भी पाए जाते हैं कि पति-पत्नी परिवार की सुरक्षा के लिए पति या पत्नी का प्रेमसंबंध स्वीकार कर लेते हैं । †Ö¸ü निश्चित ही ¯ÖןÖ-पत्नी में दरार होती है वहाँ, स्नेहहीन रिश्ता विवशतावश निभाया जाता है। 'x™¯Ö' कहानी की पत्नी को पति से रोमांस की कमी की शिकायत है। इसलिए वह अवैध संबंध स्थापित करती है। किन्तु पत्नी की इस भूमिका पर पति के मन में पत्नी के प्रति क्रोध या आक्रोश नहीं है उल्टे पति अपनी पत्नी के अवैध संबंधों को दो शर्तों पर स्वीकार कर लेता है और पत्नी की तरह घर में आश्रय देता है कि - "वह अपने अफेयर चुपचाप कंडक्ट करेगी, दूसरे, इस आयु में वह नए बच्चे की ज़िम्मेदारी नहीं लेंगे इसका वह ध्यान रखेगी।"[19] निश्चित ही पति का मन बड़ा कहना चाहिए कि आँखों के सामने पत्नी किसी परपुरुष से प्रेम करती है और उसे स्वीकारना बड़ी बात है। यहाँ पति अपने भीतर की टूटन एवं तनाव को बिना उजागर किए सिर्फ सामाजिकता एवं परिवार की सुरक्षा के लिए पत्नी के अन्य संबंधों को स्वीकारता है। यहाँ ¯ÖןÖ-पत्नी संबंधों में आ रहे बदलाव को देखकर आश्चर्य होता है।

x¾Ö¾ÖÖÆü¯Ö¾Ö प्रेम भी दाम्पत्य जीवन में दरार उत्पन्न करता है, जिससे पति-पत्नी संबंध संवेदनापूर्ण नहीं रहता। 'कितना बड़ा –ÖŠ' कहानी की नायिका किरन विवाह के बाद भी अपने प्रेमी मैक्स से संबंध बनाए रखती है। किन्तु मैक्स के विवाह की बात सुनकर वह बौखला उठती

Æ | लेखिका ने स्पष्ट किया है कि किरन कई स्तरों पर -ूठ को जी रही है। पहले तो अब भी युवती होने के -ूठ को जी रही है, दूसरे वह अपने प्रेमी की एकाकी प्रेमिका होने के भ्रम या –ÖŠ को अपने मन में पाले रखती है, तीसरे प्रेमी के द्वारा छोड़कर चले जाने और अन्यत्र विवाह कर लेने के बाद अपने ही पति विश्व के प्रति सच्ची होने का दंभ भरने लगती है। भला इतना बड़ा -ूठ इस प्रकार- की कोई भी नारी जी सकती है ! यह कहानी इसी बात का एक ज्वलंत साक्ष्य हमारे सामने रखती है। वास्तविकता तो यह है कि न तो वह अपने जीवन में एक सच्ची प्रेमिका ही हो पाती है और न ही एक आदर्श पत्नी। परिणÖÖ´ÖÃ¾Öºþ¯Ö ¯Ö×ÛÖ-पत्नी संबंधों की उष्मा गायब हो जाती है और वहाँ एक तरह का ठंडापन आ जाता है।

दाम्पत्य जीवन की कठिनतम स्थितियों में पति-पत्नी में रहा स्नेह और सहयोग परिवार को चलाने में सहायक बनता है। पति-पत्नी को जीवन के उत्तरार्ध्द में स्नेह की अतीव आवश्यकता होती है। परम्परित दाम्पत्य जीवन में यह स्थिति स्वयंभू रूप से रहती थी किन्तु आज परिवार के अन्य संबंधों के साथ पति-¯ÖÛनी संबंध में पारस्परिक स्नेहहीनता आ गई है। नौकरी के कारण अलग रहनेवाले स्नेहाकांक्षी पति के प्रति पत्नी को जब स्नेह नहीं रहता तब पति जीवन के उत्तरार्ध्द में एकाकीपन भोगने को विवश होता है| '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' के गजाधर बाबू पत्नी की स्नेहहीनता के कारण टूट जाते हैं। अवकाश प्राप्त, उल्लसित, पारिवारिक सुख के आकांक्षी गजाधर बाबू के क्षत-विक्षत होते स्वप्नों की कहानी है- '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' | ¯Ö×ÛÖ-पत्नी में साथ न रहने का वर्षों का अन्तराल स्नेहाभाव का कारण बनता है। गजाधर बाबू ने धनोपार्जन हेतु अकेलापन सहा, पत्नी का सहजीवन उन्हें प्राप्त नहीं हो सका, उनके इस त्याग की परिवार के सदस्यों ने उपेक्षा की और स्वयं उनकी पत्नी ने भी उनकी उपेक्षा की जिसे वे सहन नहीं कर पाये। अपनी पत्नी को देखकर "उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके लिए निÛÖÖÛÖ †¯Ö×¸ü×"ÖÛÖÖ Æ |"[20] वास्तव में उनकी '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' पत्नी के कारण ही हुई है।

इस प्रकार विभिन्न कारणों से पति-पत्नी संबंध चरमरा रहे हैं। ऐसी स्थितियों में भी उषा प्रियंवदा ने दाम्पत्य संबंधों को सुरक्षित रखने के उपाय भी बताये हैं। उनके मतानुसार दाम्पत्य संबंधों को तोड़ डालने वाले घटक व्यक्ति निर्मित हैं इसीलिए हर व्यक्ति को यानी पति या पत्नी को विघटित करने वाले घटकों को दूर करना चाहिए। दोनों में सम–ÖÖÛÖÖ †Ö¸ü सामंजस्य स्थापित हो जाने से दाम्पत्य संबंधों में मधुरता स्थापित होती है। पति-पत्नी में स्नेह,

ÃÖ´Ö-ादारी, त्याग, विश्वास, औदार्य आदि गुणों के रहने से विषमतापूर्ण स्थितियाँ दूर हो जाती हैं तथा पुन: दाम्पत्य जीवन सुखमय बन जाता है। उषा प्रियंवदा ने 'मोहबन्ध', 'क™ß»Öß "ÖÆ', '¥ÛÂ™¤ÖÂÖ', 'सागर पार का संगीत', '™™ Æ<', '-ूठा दर्पण', 'नई कोंपल', 'फिर बसंत आया' आदि कहानियों में भी दाम्पत्यगत दूरियों का यथार्थ चित्रण किया है।

३.३ अर्थकेन्द्रित समाज व्यवस्था की क्रूर मानसिकता :

भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ एक आवश्यक साधन है। वै-ानिक, औद्योगिक विकास और भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति बढ़ते आकर्षण से अर्थ प्राप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य बनता जा रहा है। समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान की कसौटी मानवमूल्य न होकर केवल भौतिक समृध्दि होती जा रही है। हमारे सभी सामाजिक संबंधों और पारिवारिक रिश्तों पर अर्थतन्त्र हावी हो गया है। आत्मीय रिश्तों की पहचान और परख तथा उन संबंधों के निर्वाह में अर्थ-प्रधान दृष्टि प्रमुख हो जाने से आज संबंध निभाये नहीं ढोये जा रहे हैं। कभी-कभी मन और आत्मा इन संबंधों को जीने के लिए ललकते हैं किन्तु आर्थिक विवशताएँ उनको रोक देती हैं। दूर-दराज के संबंधों यथा-बुआ, चाची, मौसी, मामा आदि के साथ ही यह स्थिति नहीं है अपितु अत्यंत निकट के पति-पत्नी, बहन-³ÖÖ‡, ³ÖÖ‡-³ÖÖ‡, ´ÖÖ-²ÖÖ¯Ö, ×¯ÖŸÖÖ-पुत्र आदि के संबंधों में भी यह 'अर्थ का विषधर' कुंडली मारे बैठा है। उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में इन सब संबंधों के बीच आयी आर्थिक विवशताओं का बहुत सशक्त रूप में चित्रण किया है। जिससे इस अर्थकेन्द्रित समाज व्यवस्था की क्रूर मानसिकता का स्वयमेव परिचय हो जाता है। अंग्रेज़ी विद्वान ए.ई.डिक्सन की एक प्रसिध्द सूक्ति है जो जीवन में अर्थ के महत्व को प्रतिपादित करती है - "Money is the oil which makes the wheels of life move round smoothly." †£ÖÖŸÖ 'धन ही वह तेल है, जो जीवन के पहियों को तेज़ी से गोल-गोल घुमाया करता है।'

मनुष्य अर्थ के लिए सभी मूल्यों को कुचलता जा रहा है इस स्थिति को देखकर कमलेश्वर कहते हैं - "कितना विचित्र और विकराल है यह दृश्य जो कुछ ही वर्षों में इस देश में उपस्थित हो गया है कि जहाँ ज़हर खाकर आदमी जीवित रह सकता है पर एक कटोरी दाल पीकर मर सकता है, इमारतें बनती जायें और आदमी लुटता जाये, बैंक खुलते जायें और आदमी गरीब

होता जाये, सरकारें बनती जायें और कानून टूटते जायें, आदमी पथराता जाये और खून के आँसू रोता जाये |"[21] आज अर्थ ने मनुष्य की इन्सानियत को भूला दिया है, वात्सल्य, प्रेम, ममता आदि मूल्यों का ह्रास किया है।

आर्थिक संपन्नता या विपन्नता सामाजिक जीवन की बहुत महत्वपूर्ण सच्चाई रही है। जहाँ संपन्न वर्ग अपनी विशिष्ट सामाजिक स्थिति पर गर्व अनुभव करता है, वहाँ निम्न मध्यवर्ग को अपने जीवन के अभाव और कटुताएँ काँटे की तरह चुभती रहती हैं। फिर भी, मानव-मन के सपने तो एक जैसे ही होते हैं। 'कच्चे धागे' कहानी की कुंतल अपनी साधारण स्थिति भूलकर असाधारण सपने देखने लगती है, इस निम्न मध्यमवर्गीय युवती का जीवन अभावों से घिरा हुआ है। खपरैल का छप्पर, घर में जगह-जगह मकड़ी के जाले, दीमक खाई चौखट, बदरंग दीवारें, हरदम टपकता नल और दो वक्त का रूखा-सुखा खाना - ये सब उसके जीवन के कठोर यथार्थ हैं। फिर भी उसका मन अपने पड़ोस के संपन्न परिवार में आए सुंदर, सुशिक्षित युवक के प्रति आकर्षितÖ ÆÖ •ÖÖŸÖÖ Æ | ¬Öß¸-धीरे उसके नादान सपने रंगीन बनते जाते हैं। वह हमेशा पड़ोसिन जीजी के काम करती है। जीजी ने जब तब उसकी प्रशंसा में जो वाक्य कहे थे, उनसे कुंतल का ÆÖÃÖ»ÖÖ ²ÖœÖŸÖÖ है। लेकिन जब विवाह की बात चलाई जाती है, तब अर्थाभाव के कारण जीजी उसे मंज़ूर नहीं करतीं। जीजी के इस इनकार से कुंतल के इंद्रधनुषी सपने उसकी सतरंगी चूड़ियों के साथ टूटकर बिखर जाते हैं।

उषा जी ने स्पष्ट किया है कि पड़ोसियों के संबंध, परिचय, नाते सब कच्चे धागों के समान क्षणजीवी होते हैं। आर्थिक यथार्थ के -ाटकों के सामने ऐसे स्वप्निल भावुक संबंधों की कोई अहमियत नहीं है। आर्थिक विषमता से पीड़ित एक युवती यदि किसी संपन्न वर्ग के युवक की पत्नी बनने का सपना देखती है, तो अंत में उसका सपना टूटता है और उसको अपनी मूर्खता का फल मिल जाता है। अर्थकेन्द्रित समाज व्यवस्था की क्रूर मानसिकता और कुन्तल की भावुकता को इस कहानी में उभारा गया है।

जब तक आज के आदमी के पास '†£Ö' (= धन) रहता है, तब तक ही उसके जीवन का भी कुछ '†£Ö' (= अभिप्राय, आशय) बना रहता है और यह ज़िंदगी भी उसे 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल' कहानी के नायक सुबोध की तरह से ही गुलाब के फूल प्रदान करती रहती है। इसके विपरीत अर्थ का अभाव होते ही ज़िंदगी उसे दिए हुए सभी गुलाब-फूल एक-एक करके लौटा लेती है और वह रिक्त हस्त रह जाया करता है। यही आज के आम आदमी की एक

कारुणिक त्रासदी है, जिसका आख्यान उषा जी ने अपनी इस कहानी के माध्यम से बखूबी किया Æ |

सुबोध की नौकरी छूटने के साथ ही उससे सब कुछ छूटता चला जाता है - उसका स्वाभिमान, सम्मान, उसके प्रति स्नेह, उसकी प्रेमिका शोभा, बहन, माँ सब कुछ। अब पेट भरने के लिए भाई को बहिन पर आश्रित होना पड़ता है। जिसके बदले में उसे उपेक्षा, प्रताड़ना और घृणा मिलती है। उसकी ज़िन्दगी में गुलाब नहीं, अब केवल काँटे ही रह गए हैं। सुबोध सोचताÖ है कि वह जीवन में असफल रहा है। वर्तमान समाज में क्रूर स्थितियों और अर्थाभावों के आगे सर्वत्र ही समर्पणधर्मिता आज के औसत आदमी की एक नियति ही बनकर रह गई है। सुबोध भी इस कटु यथार्थ के आगे सिर -ुका लेता है कि प्यार की भूख, पेट की भूख के सामने दब जाती Æ |

वृन्दा जब नौकरी नहीं करती थी तो भाई के कमरे को गुलाब के फूलों से सजाती थी। भाई की दिनचर्या के अनुसार ही घर के काम होते थे। सुबोध की नौकरी छूटने पर उसके कमरे का सामान वृन्दा के कमरे की शोभा बढ़ाने लगा। वृन्दा की सुख-सुविधा का घर में अब अधिक ध्यान रखा जाता है ; क्योंकि उसकी कमाई से घर चलता है। सुबोध घर का छोटे-ÃÖ ”Ö™Ö काम करता है - सब्जी लाना, वृन्दा की सहेलियों को छोड़ने जाना आदि। ये सब काम करते समय उसका अहं आहत होता है - "आज मैं बेकार हूँ, तो मु-ासे नौकरों सा बरताव किया जाता है। लानत है ऐसी ज़िन्दगी पर।"[22] अपने अफ़सर द्वारा किया गया अपमान न सह सकने के कारण ही उसने नौकरी छोड़ी थी। अब बहिन द्वारा किया गया अपमान सहना पड़ रहा है, क्योंकि बहिन पर वह एक अवांछित भार है। सुबोध को आश्चर्य है कि माँ देखकर भी कुछ क्यों नहीं कहती है ? स्पष्ट है कि आज माँ-2Ö™, 3ÖÖ‡-बहिन के प्रेम संबंध अब '†£Ö' कî ¬Ö¸ÖŸÖ»Ö ¯Ö¸ टिके हैं।

आर्थिक विपन्नता एवम् पारिवारिक ज़िम्मेदारियों के बो-ा तले सामान्य मनुष्य का स्वाभाविक जीवन दम तोड़ देता है। यदि वह जीवित रहना चाहे तो अपनी स्वतंत्रता की आहुति देकर उसे आजीवन विवशता की बेड़ियों में जकड़कर छटपटाना पड़ता है। 'फिर बसंत आया' कहानी में विनायक ऐसा ही पात्र है। वह छाया से प्रेम करता है और किसी भी कीमत पर उसी से विवाह करना चाहता है। छाया भी उससे विवाह करना चाहती है। अर्थाभाव के कारण विनायक की दोनों बहनें अविवाहित हैं। इसलिए विनायक के पिता चाहते हैं कि किसी संपन्न

परिवार की बहू लाएँ, जिससे कि अर्थाभाव दूर हो सके और दोनों बेटियों की शादी करा सकें। अत: वे चाहते हैं कि विनायक उनकी तय की हुई शादी करे। किन्तु विनायक छाया को छोड़ कहीं और शादी नहीं करना चाहता है। गीता को वह अपनी स्थिति भी बताता है - "...¤Ö बहनें हैं ...खूबसूरत भी नहीं हैं। न हमारे पास रुपया ही है। इसीलिए शादी रुकी हैं। अबÖ अगर मैं पिताजी की इच्छा के विरूध्द विवाह कर लेता हूँ तो बहनें बिलकुल निराधार रह जाती Æ |"[23] विनायक द्विधा मन:स्थिति के कारण निर्णय नहीं कर पाता। उसके पिता उस पर इतना ¤²ÖÖ¾Ö >Ö»ÖÖŸÖÖ Æ ×ú †ŸÖ ´Ö ^ÃÖ -ुकना पड़ता है और उनकी इच्छा से विवाह करना पड़ता है। यहाँ पर अर्थाभाव के कारण विनायक की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, सपने एवं प्रेम की पिता द्वारा बलि "Öœ־‡ •ÖÖŸÖß Æ |

जीवन में धन-¤Ö»ात का कठोर और खुरदरा आरा कई बार, 'भावुकता' के 'क¸ÖŠÖ' के †Ö›-तिरछे कोनों को घिस-घिसकर समतल कर देने में पूर्णत: समर्थ हुआ करता है। '–ÖŠÖ दर्पण' कहानी में मीरा भावुकता के क्षणों में बहकर यति से प्रेम-विवाह करती है। लेकिन पतिगृह जाकर उसे अर्थाभाव का सामना करना पड़ता है। उसकी इच्छाएँ, हसरतें सब पर पानी फिर जाता है। ऐसे में गार्हस्थ्य जीवन की गाड़ी सुचारु रूप से चलना संभव नहीं है। यहाँ ¯Ö×ŸÖ-पत्नी में आये दिन बहस होती रहती है। मीरा के मन में एक प्रकार का असंतोष घर कर जाता है। वह अपने अनुभव के आधार पर सखी अमृता को धनी कुँवर से विवाह करने का परामर्श देती है। अर्थाभाव के कारण ही वह अपने पति को छोड़ चली जाती है। पति-पत्नी का पवित्र रिश्ता वह अर्थ के तराजू में तौलती है। इधर यति सोचता है - "यदि मैं किसी अपढ़, निर्धन लड़की से शादी करता तो सुखी रहता। उसके अंदर वह इच्छाएँ, हसरतें न होतीं जो मेरे धनाभाव से मीरा के अंदर घुटकर मर गईं।"[24] इस कहानी में मीरा भौतिक सुख-चैन में ही जीवन का परमानन्द खोजती है। इस स्थिति के लिए ज़िम्मेदार है-आर्थिक विषमता जो दोनों का जीवन नरक बना देती है।

अर्थकेन्द्रित समाज-व्यवस्था में जैसे संबंधों में बदलाव आ जाता है, ठीक उसी प्रकार यह व्यवस्था व्यक्ति की तब उपेक्षा शुरू कर देती है जब उसका अर्थ मूल्य कम या खत्म होने लगता है। महानगरीय या कस्बाई संस्कृति में यह स्थिति धीरे-धीरे क्यों न हो, पर उभर रही है। वापसी के गजाधर बाबू घर में तब तक सब के लिए प्यारे थे जब तक वे प्रतिमाह भरपूर वेतन लाते थे और महीने में मुश्किल से चार-पाँच दिन परिवार के बीच रह पाते थे। आज रिटायर

होने के बाद केवल पेन्शन के कारण वे इस परिवार के लिए बो-न से बन गए। इस कारण गजाधर बाबू फिर से वापिस निकलते हैं। गजाधर बाबू की वापसी भविष्यकालीन परिवार व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगाती है। जिस शक्ति और कलात्मकता के साथ उषा जी ने इस कथ्य को प्रस्तुत किया है वह अपने आप में एक उपलब्धि है। अर्थकेन्द्रित व्यवस्था परिवार की जड़ों को ही काट रही है, जिससे व्यक्ति सबके बीच बेहद अकेला बनता जा रहा है।

स्पष्ट है कि अर्थ के सम्मुख समाज में कोई रिश्ता मायने नहीं रखता। क्योंकि अर्थ के अभाव में समाज उस व्यक्ति को जीने नहीं देता। 'मेनका:रंभा:उर्वशी' कहानी का रवि यह कटु सत्य भली-भाँति जानता है। इसीलिए माँ के द्वारा खोजी गयी सुंदर युवतियों के रिश्ते वह ठुकराता है और एक बदसूरत लड़की के साथ विवाह के लिए राज़ी हो जाता है। क्योंकि लड़की के पिता उसका विदेश जाने का खर्चा उठाने को तैयार होते हैं। उसका विदेश पढ़ने जाने का सपना पूरा करनेवाली लड़की ही उसके लिए सर्वोपरि है। माता-पिता के आश्चर्य पर वह कहता Æ - "मेरे लिए बदसूरत और सुंदर सभी लड़कियाँ बराबर हैं।"[25]

'¯Ö¸´²Ö»Ö™ü¸' कहानी में आर्थिक विपन्नता के कारण अर्थकेन्द्रित समाज व्यवस्था में व्यक्ति को कितनी त्रासद ज़िंदगी जीनी पड़ती है, यह दिखाया गया है। कहानी में पति-पत्नी, परमेश्वरी एवं कालिंदी आर्थिक अभाव से त्रस्त हैं। कालिंदी का एक ही सपना है अपने भावी शिशु के लिए सुंदर पैरम्बुलेटर खरीदना। वह गहने नहीं खरीदती, एक-एक रुपया जोड़कर पैरम्बुलेटर खरीदती है। "और उस क्षण परमेश्वरी को लगा कि अब जीवन में उसे कुछ और नहीं चाहिए।"[26] किन्तु शिशु के बीमार पड़ने पर उसे आर्थिक विपन्नता के कारण पैरम्बुलेटर बेचनी पड़ती है। तब वह दिल मसोस कर रह जाती है। यह कहानी अर्थाभाव के कारण ×¾Ö¾Ö¿Ö एक माँ की करुण अवस्था को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। उषाजी ने प्रस्तुत कहानी में आर्थिक अभाव के कारण यथार्थ विषयक संवेदनाएँ उजागर की हैं।

तात्पर्य, आर्थिक विषमताओं ने आज के मनुष्य को पीसकर रख दिया है। बेकारी और मँहगाई, इन दोनों विभीषिकाओं के बीच आज का मनुष्य अपना चेहरा खो चुका है। स्वल्प वेतनभोगी आज का व्यक्ति प्रतिपल चिंता में डूबा रहता है। आर्थिक स्तर के अन्तर्विरोधों का उस पर इतना दबाव पड़ा कि आदमी आज आदमी नहीं रहा। इस अर्थकेन्द्रित समाज व्यवस्था ने आज हर स्नेहिल संबंधों पर कुल्हाड़ी चलायी है। आर्थिक परिस्थिति के प्रभाव में घुटकर

जीने के लिए अभिशप्त मानवप्राणियों की नियति को 'स्वीकृति', '™™ Æ<', 'सम्बन्ध', '¥ÛÂ™¤ÖÂÖ' आदि कहानियों में भी विवेचित किया गया है।

३.४ आधुनिक और प्राचीन मूल्यों से जू-ाती आज की नारी :

¾Ö-ाानिक दृष्टिकोण को अपनाने के कारण जीवन की प्रत्येक घटना को , मानव-मानव के रिश्तों को विशुध्द रूप से अब बुध्दितत्व से परखा जाता है। इसलिए नए सामाजिक संदर्भ में हमारे पुराने परम्परागत मूल्य असार प्रतीत होने लगे हैं। भारतीय नैतिकता की बात करना अब निरर्थक प्रतीत होता है। आज जब इस नैतिकता की बात की जाती है तब वह दुराग्रह के सिवा और कुछ नहीं लगता- संदर्भहीन सामाजिक मूल्यों का नवीन मूल्यों पर आरोपण। आज वे सारे आदर्श बेकार और थोथे प्रतीत होने लगते हैं जो परम्परा से चले आये हैं। इसके विपरीŸÖ आधुनिक व्यावहारिकता ही मान्यता प्राप्त कर चुकी है। ये व्यावहारिक आदर्श अब भीरुता एवं कायरता के पर्याय लगने लगते हैं। इस तरह पुरानी मर्यादाएं आधुनिक संदर्भ में विकृत हो गई हैं। किन्तु आधुनिक फल-फूल रहा वृक्ष परम्परागत जड़ों की ही बदौलत है। जड़ो को काटने पर वह वृक्ष धराशाही होकर अपना अस्तित्व खो देगा। इस तरह आधुनिक के लालच में प्राचीन को छोड़ा भी नहीं जा सकता। इसी कारण आधुनिक और प्राचीन में एक तरह की कशमकश “Ö»ÖŸÖß ¸ÆŸÖß Æ |

आज की नारी इसी दौर से गुज़र रही है। न वह आधुनिक मूल्यों का पूर्णत: वरण कर पा रही है, और न ही प्राचीन मूल्यों से पीछा छुड़ा पा रही है। उसकी विद्रोही मानसिकता में आधुनिक एवं प्राचीन मूल्यों का द्वन्द्व जारी है। उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में आधुनिक और प्राचीन मूल्यों से जू-ाती आज की नारी के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में स्त्री-स्वातंत्र्य पर आधुनिक एवं प्राचीन दृष्टि से विचार किया है। पाश्चात्य सम्पर्क के कारण उनकी चेतना में भले ही नए के प्रति व्यामोह मौजूद रहे, मगर कहीं भी परम्परागत संस्कारों को नकारा नहीं है। उनके नारी पात्रों में पुरानी रूढ़ियों, टूटती मान्यताओं, परम्पराओं के प्रति '×¾Ö¦ÖÆ' का स्वर होते हुए भी उन्होंने '†ÛÃ´ÖŸÖÖ' के प्रति सजगता और जागरूकता का परिचय दिया है। हाँ 'अतिस्वातंत्र्य' की हानियाँ दिखाते हुए उन्होंने गहरी सू-Ö-²Ö-ा से नारी मनोवि-ान के हर पहलू को स्वाभाविकता के साथ छुआ है, जहाँ नि:सन्देह परम्परा और

आधुनिक मूल्यों का द्वन्द्व जारी रहता है। डॉ.मंगल मेहता लिखती हैं - “उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में यह बताने का प्रयास किया है कि सभी देशों की नारी अपनी वर्तमान स्थिति से विद्रोह कर नई स्थिति में आई ज़रूर है परन्तु उसके लिए अपने को पूरी तरह तैयार नहीं पा रही Æ | †³ी उसके मन में पुराने संस्कारों के प्रति मोह है, वह कुछ भावुक है, और उतना खुला व्यवहार कर नहीं पाती और न उसे -ेल ही पाती है। इसमें ईर्ष्या अभी भी विद्यमान है। बदला लेने का यत्न भी यह करतÖß Æ |”[27]

‘¥ÛÂ™¤ÖÂÖ’ कहानी में एक शिक्षित नारी के जीवन की -ाँकी नये परिवेश में देने की कोशिश की गई है, नये परिवेश से आशय यह है कि नारी रूढ़ियों से मुक्त होना चाहती है, लेकिन जीवन में प्रेम की कामना उसे फिर बंधनों के संसार में लौटा देती है। साम्ब और चन्द्रा दोनों के परिवारों में विचारों और व्यवहारों की भिन्नता है जो पति और पत्नी के जीवन में दूरियाँ ला देती है। चन्द्रा एक आधुनिक नारी है जिसे परम्परावादी परिवार में सास का स्नेह, ननदों का आदर और साम्ब का प्रेम दम घोटने वाला लगता है। वह अपने पति को अपने अनुकूल ढालना चाहती है, लेकिन ऐसा जब वह कर नहीं पाती तो उसे पूरे घर का विरोध सहना पड़ता है। वह अपने भाई के पास रहकर नौकरी कर लेती है और स्वयं को पति और पति के परिवार से काटकर अलग हट जाती है। साम्ब के लिए ऐसा करना संभव नहå Æ, ˆÃÖ अपनी पत्नी और संतान से असीम स्नेह है। वह किसी दूसरी नारी को अपनाने में स्वयं को असमर्थ पाता है। इस तरह उषाजी ने नारी के रोल को पुरुष के हाथ में दे दिया है जो परम्परा ÃÖ Æ™ने की गवाही देता है। अंत में मानसिक द्वंन्द्व में उल-ी चन्द्रा को पुन: पति के पास लौट आना पड़ता है।

‘अकेली राह’ कहानी की जया एक पढ़ी-लिखी आधुनिक विचारों की लड़की है। उसे ×¾Ö-Ö´Öá ¸Æ´ÖÖन से प्रेम हो जाता है। वह रहमान से विवाह करने का निर्णय लेती है। जया के ×»Ö‹ •ÖÖŸÖ-पाँत महत्वपूर्ण नहीं, अपितु व्यक्ति महत्वपूर्ण है। वह पुराने खयालों में उल-कर अपना भविष्य दु:खद नहीं बनाना चाहती । किन्तु उसकी संस्कारवादी माँ को यह रिश्ता मंजूर नहीं। वह अपनी बेटी का धर्मभ्रष्ट नहीं करना चाहती। जया को माँ-³ÖÖ‡, ³ÖÖ³Öß ÃÖ³Öß ÃÖ´Ö-ाते हैं किन्तु वह रहमान को भुला पाने में स्वयं को असमर्थ महसूस करती है। उसे परिवार का घोर विरोध सहना पड़ता है। आये दिन घर में कोई न कोई तमाशा खड़ा होता है। जया न माँ को छोड़ पाती है, न रहमान से विवाह कर पाती है। इस प्रकार वह आधुनिक एवं प्राचीन मूल्यों

ÃÖ •Ö–ाती हुई छटपटाती रहती है। अंत में रहमान की मृत्यु द्वारा लेखिका ने समस्या को हल करने का प्रयास किया है। एक ओर सामाजिक विसंगति पर करारी चोट है तो दूसरी ओर द्वन्द्व ग्रसित नारी मानसिकता की विवशता का यथार्थ चित्रण हो पाया है।

ज़िंदगी में कई बार भूत इतना कटु होता है कि वह न केवल वर्तमान अपितु भविष्य को भी अपनी चपेट में ले लेता है। और व्यक्ति का जीवन अत्यंत त्रासद बन जाता है, जिसे जीया नहीं ढोया जाता है। 'कोई नहीं' में एक ऐसी ही नारी को आधार बनाया है जिसका अतीत विफल है, वर्तमान बो–िल है और भविष्य अनिश्चित। नमिता एक आधुनिक विचारों वाली स्वतंत्र नारी है जो विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करती है। नमिता और अक्षय का प्रेम एक बीती कहानी है, जो अतीत की गहराइयों में विलीन हो चुका है। किन्तु नमिता अपने असफल साहचर्य, प्रेम संबंध को विस्मृत कर पाने में सफल नहीं होती। अकसर उसके मन में ये संबंध एक टीस पैदा कर देते   हैं। फलत: एकाकीपन एवं ऊब से ग्रस्त उसका जीवन नीरस बन •ÖÖŸÖÖ Æ - "रिक्तता का जो सागर मेरे अंदर है वह कभी सूख सकेगा, यह अकल्पनीय लगता है।"[28] दूसरी ओर अक्षय है जिसने विवाह कर लिया है, प्रसन्न है। उसे दु:ख भी है कि वह एक आस्ट्रियन युवती से प्रेम करता था पर विवाह नहीं कर पाया। उसे नमिता का थोड़ा भी खयाल नहीं है। नमिता के लिए उसके मन में कोई भाव नहीं है। नमिता, एक आत्मनिर्भर स्वतंत्र स्त्री होने के बावजूद, अक्षय जैसे व्यक्ति के लिए अपने वर्तमान एवं भविष्य से खिलवाड़ करती है। उसका खंडित प्रेम उसके व्यक्तित्व को बिखरा देता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि एक आधुनिका होने के बावजूद नमिता परम्परागत धारणाओं से ग्रसित Æ | '´ÖÎ¸Ö' के समान वह केवल एक ही पुरुष को अपने मन मंदिर में स्थान देती है।

उषा जी के नारी पात्रों में पुरातनता का वह मोह छूटता जा रहा है, जबकि उसके मन में त्याग, बलिदान, मूक प्रेम जैसी आदर्श और उच्च कोटि की भावनाएँ रहती थीं। आज की नारी की अपनी सोच है। आज वह एक ऐसी आधुनिका के रूप में है जिसके सामने तमाम नैतिकता-अनैतिकता विषयक संस्कार मिट चुके हैं, और विदेशी संस्कृति के प्रभाव से वह बुरी तरह आक्रान्त है। '™™ Æ‹' कहानी की नायिका टीटी एक स्वच्छंद नारी है। वह शराब पीती है, गाड़ी चलाती है, दोस्तों के साथ घूमती है। पति द्वारा उस पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जाता। किन्तु इस आधुनिक स्त्री के जीवन में गहरा विषाद छाया हुआ है। उसकी अवसाद ग्रसित मन:स्थिति का कारण है - उसका एब्नॉर्मल बच्चा। उसकी रिक्तता और मानसिक एकाकीपन

उसको भास्कर की ओर -ुकाता है । वह भास्कर के साथ अनैतिक संबंध जोड़ लेती है। वह चाहती तो आसानी से पति से संबंध तोड़कर भास्कर को अपना सकती थी, किन्तु उसके संस्कार ^ÃÖ ¯ÖxŸÖ †Ö¸ बेटे से जोड़े रखते हैं। वह स्वयं को ही भास्कर से विलगा लेती है। यहाँ स्पष्ट होता है कि भले ही भारतीय नारी विदेश में रहे, वह स्वयं को भारतीयता से विलग नहीं कर पाती बल्कि उसके अन्दर वही संस्कार बड़ी ही प्रबलता से जमे रहते हैं।

नारी चाहे जितनी उच्चविद्याविभूषित हो, आधुनिक विचारोंवाली हो, उसकी नियति-¿ÖÖ¤ß, ‘Ö¸-गृहस्थी, परिवार ही होती है। और यही हमारी संस्कृति भी है। स्त्री चाहे कितना भी आधुनिकता का दंभ भरे वह इससे पलायन नहीं कर सकती। ‘प्रसंग’ कहानी की नायिका ममता डॉक्टर है, विदेश में रहती है। उसने आधुनिक जीवन मूल्यों का अंगीकार किया है। किन्तु अपने परिवार के कारण उसे विदेश से लौटकर बुआ द्वारा तय किया विवाह करना पड़ता है। उसका पति एक अधेड़ उम्र का विधुर है, जिसकी दो बेटियाँ हैं। वह दिवाकर को देखे बगैर विवाह की स्वीकृति देती है। क्योंकि उसकी भी काफी उम्र हो चुकी है। विवाहोपरान्त वह देखती है - “^ÃÖके बगल में एक अपरिचित व्यक्ति सोया हुआ था। ...वह एक बहुत मामूली-ÃÖÖ पुरुष था। अधेड़ उम्र का। उसके बाल अधपके और कम हो चुके थे।...यह मैंने क्या किया ? उसके अंदर कोई चीखा, मगर उसने वह चीख वैसे ही दबा दी जैसे कि दूसरे ने रात को अपनी सुबकी दबा दी थी।”[29] आधुनिका होने के बावजूद वह सब कुछ स्वीकार कर लेती है, क्योंकि उसके भीतर एक परम्परागत स्त्री भी है। इस प्रकार ममता के भीतर आधुनिक और प्राचीन मूल्यों की कशमकश चलती रहती है और वह अनुभव करने लगती है कि - “कुछ भी नहीं बदलता दीखता, वही अंधविश्वास, वही धारणाएँ, भगवान और भाग्य पर अटल विश्वास।”[30]

‘मान और हठ’ कहानी की नायिका दिव्या का विवाह मुकुल से हो जाता है। दिव्या अत्यंत सुंदर है। विवाहोपरान्त जब पहली बार वह अपने पति को देखती है तो उसके मन में घोर वितृष्णा जाग जाती है। क्योंकि उसका पति अत्यंत काला एवं कुरूप है। उसके सारे अरमान चकनाचूर हो जाते हैं। उसे लगता है- “औरत की चाहें, अरमान कुछ महत्व नहीं रखते। यह दुनिया पुरुषों की है।”[31] दिव्या प्राचीन विचारों वाली स्त्री नहीं जो सब कुछ चुपचाप सहे। वह पति को छोड़कर पढ़ाई करने लगती है। उसे अपने सौंदर्य का मान है और पति में पुरुषत्व का हठ। मुकुल दूसरा विवाह करता है और दिव्या पूना में नौकरी करने लगती है। आठ साल बाद पत्नी की मृत्यु के पश्चात् मुकुल अपने शिशु को लेकर दिव्या की शरण में चला

जाता है। आधुनिक अभिमानी दिव्या न जाने कब एक परम्परागत नारी के रूप में ¯Öx¸¾ÖÛÖ¾ÖÖ ÆÖ •ÖÖ¾ÖÖß Æ - "शिशु रोया, और दिव्या ने ञपट कर उसे उठा लिया। कंधे से लगाया और धीरे-धीरे थपकने लगी। दिल में न जाने कैसा सा लगा कि आँखो से आँसू निकल पड़े।"[32] इस प्रकार †Ö¬Öx नक और प्राचीन मूल्यों से जूञती दिव्या अंत में घुटने टेक देती है।

उषा प्रियंवदा नए मूल्यों एवं संदर्भो को अपनी नायिकाओं के माध्यम से समाज के सामने लाना तो चाहती हैं परन्तु स्पष्ट तौर पर प्राचीन मूल्यों की अवहेलना भी नहीं कर पाती। ‡ÃÖßx»Ö< '¥ÛÂ™¤ÖÂÖ' की चन्द्रा, 'अकेली राह' की जया, 'कोई नहीं' की नमिता, '™™ Æ<' की ™ß™ß, 'प्रसंग' की ममता, 'मान और हठ' की दिव्या आदि समाज द्वारा निर्मित दायरों की कैद में "™¯Ö™Ö¾Ößß ¸Æ¾Öß Æ|

३.५ अकेलेपन एवम् अजनबीपन का एहसास :

आपसी प्रतिस्पर्धा, भौतिकवाद और निरर्थकता बोध से संत्रस्त इस संसार में व्यक्ति आज अपने को नितांत अकेला पाता है और दूसरों से सहज ढंग से रागात्मकतापूर्ण संबंधों को विकसित भी नहीं कर पाना उसके लिए एक अजीब सी मजबूरी हो जाती है। यहीं से उसकी अनुभूति में 'अजनबीपन' के भाव गहराते जाते हैं। वह अपने को औरों से सर्वथा अलग सा पाता है और जीवन विषयक अर्थहीन हो रहे मूल्यों के कारण 'आत्मनिर्वासन' जैसी प्रवृत्तियाँ उसके मन में घर करती जाती हैं। ऐसी स्थितियाँ पूँजीवादी समाज व्यवस्थÖ ´Ö †Ö¸ ³Öß ¾Öß¾Ö¾ÖÖ से पनपती हैं। निर्मल वर्मा ने लिखा है - "पश्चिमी संस्कृति का प्रादुर्भाव एक ऐसी खण्डित चेतना में हुआ है जहाँ मनुष्य अपने को प्रकृति, विश्व और दूसरे मनुष्य से बिल्कुल अलग पा¾ÖÖ Æ और उसे अनुभव होता है कि इस अलगाव और विभाजन को महज धार्मिक आस्था और परम्परा द्वारा नहीं पाटा जा सकता।"[33]

अकेलापन एवम् अजनबीपन पश्चिम की देन न होकर हमारे यहाँ की परिस्थितियों ÃÖ उपजा हुआ है। अकेलेपन के संबंध में डॉ.इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं - "अकेलापन का बोध बहुत पुराना है। मध्यकालीन है। शायद इससे भी पहले का है। उपनिषदों में भी आँका जा सकता Æ| †Ö•Ö का अकेलापन मध्यकालीन या रोमांटिक अकेलापन से भिन्न कोटि का है। मध्ययुग में यह आत्मिक स्तर पर है। रोमांटिक युग में वैयक्तिक स्तर पर और आधुनिक युग में स्थिति-नियति के स्तर पर।"[34] ˆÂÖÖ x¯ रियवंदा की कहानियों में अकेलेपन एवम् अजनबीपन की स्थिति

मुख्यत: उनके प्रवासी जीवन की देन है जहाँ, व्यक्ति परिवेश से टूटकर समाज व फिर अंत में खुद से भी टूटा हुआ महसूस करता है । असुरक्षा, मूल्यहीनता व अतीत प्रेम ने उनके अन्दर अजनबीपन, अकेलापन, घुटन, ऊब जैसे भावों को काफी गहराई से पिरो दिया है । डॉ. विद्याशंकर राय ने भी लिखा है - "अजनबीपन की व्यथा को उषा प्रियंवदा ने बौध्दिक और रचनात्मक स्तर पर -ोला है । अजनबीपन की भावना की अत्यंत स्पष्ट और मुखर स्वीकृति उनकी कहानियों और उपन्यासों में देखी जा सकती है । भारतीय समाज में अजनबीपन की स्थिति को वे साहस के साथ स्वीकार भी करती हैं ।"[35]

जीवन और समाज की विसंगतियों के फलस्वरूप व्यक्ति को एकाकीपन, अजनबीपन और ऊब की अनुभूति होती है । यह भी सत्य है कि संबंधों से टूटे हुए स्त्री-पुरुष अधिक ÃÖ अधिक अजनबी या अकेले होते चले जाते हैं । 'चाँदनी में बर्फ़ पर' कहानी में हेम विदेश जाने के पश्चात् मेरी से विवाह कर लेता है । मेरी मूलत: विदेशी है । हेम के सम्पर्क में आने पर भी वह ¯Öुरुष मित्रों के साथ उन्मुक्त विचरण करती है । हेम और मीरा के बीच वह हिमबिन्दु आ चुका है जहाँ संबंध अपनी समस्त उष्मा खो बैठते हैं ।[36] ऐसे में इन दोनों के बीच पियेर आ जाता है । हेम का संस्कारी मन यह सब सह नहीं पाता । वह अपने परिवार को त्याग कर मेरी के लिए विदेश आता है । ऐसे में उस अपरिचित देश में वह स्वयं को नितांत अकेला महसूस करता है - "अब वह नितांत अकेला है... उसकी मß¸Ö-सी पत्नी है, ठीक लेक के किनारे महँगा अपार्टमेंट है, नौकरी , प्रतिष्ठा, पर हेम के लिए यह जीवन कितना अलोना हो आया है ।"[37] एक ओर अकेलेपन का दंश है तो दूसरी ओर पत्नी के साथ रहने के बावजूद अपने घर में वह अजनबी बन कर रह जाता है - "¯Ö×ŸÖ-पत्नी हैं, इसलिए साथ रहते हैं, पर हेम में एक बेगानापन-ÃÖÖ ‘Ö¸ करता जा रहा है ।"[38]

अकेलेपन एवम् अजनबीपन के कई कारण हैं । कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित होती है कि समूचे परिवार का माहौल बदल जाता है और परिवार का प्रत्येक सदस्य अकेलेपन एवं अजनबीपन की समस्या से जू-ÖŸÖÖ ¸ÆŸÖÖ Æ | 'सुरंग' कहानी की माँ अपने बेटे की मृत्यु से इतनी आहत होती है कि अपने दु:ख से उबर नहीं पाती, जिसके कारण वह अपनी बेटियों की ओर ध्यान नहीं देती । अरुणा को याद नहीं है कि- "इन नौ वर्षों में उन्होंने कभी अरुणा के सर पर ÆÖ£Ö ±ê¸Ö Æ या पास आकर बैठी है । बेबी जब कभी रोकर उनसे चिपट जाती थी तो वे उसे सिर्फ़ निर्मम हाथों से अलग कर देती थी ।"[39] माँ और बेटियों के संबंधों में पारस्परिक विरक्ति

आयी है। घर में सदैव श्मशान शांति छाई रहती है। घर का प्रत्येक सदस्य स्वयं को नितांत अकेला महसूस करता है - “बेबी अकेली है और उसे अन्दर कोई बड़ा भारी दु:ख साल रहा है, जो कि रात के बीच, इतने विवश, ह्रदय-विदारक और अनियंत्रित रूप में फूट पड़ा है। वह उस दुख को बाँट नहीं सकती, क्योंकि बेबी अपने को अकेला सम-ÖÝÖß Æ |”[40] वे तीनों एक दूसरे के लिए अजनबी बन गये हैं। इसीलिए कोई अपना दु:ख दूसरे से बाँटने के लिए तैयार नहीं है।

‘¯ÖÜÝÖ’ कहानी में अविवाहित युवती के अकेलेपन की त्रासदी को बताया गया है। कई बार जीवन में किसी अपने के अभाव से भी अकेलापन महसूस होने लगता है। भौतिक साधन-Ö संपत्ति से एकाकीपन को पाटा नहीं जा सकता। व्यक्ति को प्रेम और साहचर्य की आवश्यकता होती है। अपनेपन की कमी से व्यक्ति को खालीपन का एहसास होने लगता है। प्रेम की पूर्ति से व्यक्ति संतुलित तथा स्वस्थ होता है। इसी प्रकार की स्थिति से तारा गुज़रती है। रूप की कमी के कारण उसकी शादी नहीं हुई है। मम्मी की मृत्यु के बाद वह बहुत अकेली हो जाती है। विवाह और साथी का अभाव वह शिद्दत से महसूस करती है। भौतिक दृष्टि से उसे किसी बात की कमी नहीं थी। परन्तु भौतिक साधन तारा को ज्यादा समय तक सुख नहीं दे पाते। उसके मन में एकाकीपन का गहरा बाँध है। वह बहुत दु:खी होती है। दिन-²Ö-दिन बेचैन और तनावग्रस्त होने लगती है। उसे अपनी ज़िंदगी रिक्तता से युक्त लगती है। वह अपने अकेलेपन को तीव्रता से महसूस करती है। नलिन का सामीप्य पाकर तारा प्रसन्न होती है। पुरुष के प्रेम और स्पर्श से तारा का खालीपन भर जाता है तथा उसे नई शक्ति मिलती है। जीवन के प्रति तारा का नज़रिया ही बदल जाता है। “उसकी दुनिया बदल गई थी- सूखे उपवन में हज-ÖÖ¸Ö कलियाँ फूट पड़ी थीं और उसका चेहरा वैसा ही था।”[41] नलिन की स्वीकृति से वह सींची गई है। उसके साथ संबंध स्थापित करके वह पूर्णता को महसूस करती है- “वह अब कभी भी अपने को अकेली महसूस नहीं करेगी क्योंकि वह परिपूर्ण है।”[42] इस कहानी में नारी के अकेले जीवन को अनूठे ढंग से चित्रित किया गया है।

विदेश में रहने के कारण उषा प्रियंवदा पर विदेशी प्रभाव देखा जा सकता है। क‡ ²ÖÖ¸ विदेशी माहौल के कारण भी व्यक्ति स्वयं को अकेला महसूस करने लगता है और उसका मन ²ÖÖ¸-²ÖÖ¸ ^ÃÖ †¯Öनी मिट्टी की ओर खींचने लगता है। ‘सम्बन्ध’ की श्यामला का अकेलापन और असम्बध्दता इतनी गहरी और वैयक्तिक बन जाती है कि वह खुद को कहीं भी जोड़ पाने में असमर्थ रहती है। और यही कारण है कि सर्जन के साथ भी उसके संबंधों में एक ऐसी

अनिश्चितता का बोध गहराया रहता है कि 'एकाकीपन' की कल्पना भी वहाँ मुश्किल जान पड़ती है। ऐसे माहौल में अपने भारतीय माहौल को याद करना बेहद स्वाभाविक बन पड़ता है, तब गरीबी में भी मिल रहे अपनेपन व संबंधों की मधुरता का एहसास उस रूप में भी तसल्ली ¤ÿÖÖ Æ - "ताज्जुब है तब कभी न लगा था कि यही ज़िंदगी के मधुर दिन हैं। सब साथ थे, †Ö¯ÖÃÖ में प्यार था। एक दूसरे का दिल न दुखे इसलिए निरंतर सबका ध्यान रखते थे।"[43]

'एक और बिदाई' कहानी की नमिता भी नारी के अकेलेपन से पीड़ित है।[44] वह एक जगह से उखड़कर दूसरी जगह लग नहीं सकती। उसका कथन है - "धरती यहाँ भी सुन्दर है, फूल हैं, पानी बरसता है, लोग हँसते हैं, पर मेरे अन्दर कुछ परायापन-सा है। यहाँ कभी भी धरती में जड़ें डालकर उग नहीं सकूँगी ... ऐसा हर समय लगता रहता है और ऐसे ही लम्बी, अर्धमृत, अर्धजीवंत दशा में दिन बीतते रहते हैं।"[45] वह नितान्त कमज़ोर नहीं है, बंधन उसके विकास में बाधक बनकर आते हैं। इसलिए वह घर और पति को छोड़कर विदेश चली जाती है, लेकिन वह अधिक अकेली और उदास हो जाती है। इस तरह खालीपन की अनुभूति गहराने लगती है। उसका मन वहीं के लिए भटकने लगता है। वह जिसे छोड़ आई है उसे दोहरानÖ नहीं चाहती, लेकिन वह आगत में स्वयं को भूल भी नहीं पाती। उसे लगता है कि वह कागज़ का केवल एक पन्ना है जिसे फाड़कर उसने छोटे-छोटे टुकडों में बिखेर दिया है। इस तरह नमिता की आंतरिक दुविधा को कहानीकार ने अंकित किया है। अपने परिचितों और मित्रों के घेरे में स्वयं को भुलाना उसके लिए संभव नहीं हो पाता। अक्षय उसके जीवन में आकर चला जाता है। नमिता उसे अपना नहीं पाती। इस तरह इस कहानी में प्रेम का स्वरूप विभाजित रह जाता है। विक्टर से उसके संबंध एक मित्र के हैं और मित्रों तथा परिस्थितियों के दायरे में सघनता की जगह सूक्ष्मता आने लगती है। इस परिवेश में वह अपने को खपा नहीं पाती। सबके मध्य वह स्वयं को अजनबी महसूस करती है। अंत में अपनी अनेक बिदाइयों में वह एक †Ö¸ x²Ö¤Ö‡ •ÖÖ> ¤ÿÖß Æ।

'¾ÖÖ¯ÖÃÖß' की मूल संवेदना भी घर की चारदीवारी में अजनबियत और अकेलेपन की है। गजाधर बाबू के द्वारा आदमी के अकेलेपन को, समय के साथ एक पीढ़ी की बदली हुई मानसिकता को, सामाजिक परिवर्तनों के साथ आदमी के बदलते संबंधों को सच्चाई से †x³Ö¾यक्ति दी गई है। गजाधर बाबू का अकेलापन आधुनिक जीवन के बीच उभरता हुआ विवशता का अकेलापन है। यह संकट हमारे समाज के सामने है। सारी पुरानी पीढ़ी उसे –Ö»Ö

रही है। घर में उनकी स्थिति को सम-ाने के लिए एक प्रसंग ही पर्याप्त है- नरेन्द्र, बसन्ती, बहू के मनो-विनोद में गजाधर बाबू भी भाग लेना चाहते थे किन्तु, "उनके आते ही जैसे सब ही कुंठित हो चुप हो गये, उससे उनके मन ´Ö £ÖÖ>ß-सी खिन्नता उपज आई।"[46] बैठते हुए बसन्ती को चाय के लिए अनुरोध किया किन्तु वह भी फीकी ही मिली। पत्नी के आते-†ÖÝÖ ¾Ö ÃÖ³Ößü गजाधर बाबू के कमरे से खिसक चुके थे और उन्हें अकेला छोड़ दिया गया था। इस प्रकार वे अपने ही घर में तथा अपने सदस्यों के बीच अकेलेपन तथा अजनबीपन की स्थिति का अनुभव करते है - "यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कोई स्थान नहीं; तो अपने ही घर में परदेशी की तरह पड़े रहेंगे।"[47] पत्नी भी उनसे अनजान बनी रहती है और अपने अपार मोहभंग के चलते वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे "उन (पत्नी और बच्चों) के जीवन के केन्द्र नहीं हो सकते..।"[48] कं¤Ö×चत इसी आत्मदंश से बचने के लिए वे सेठ रामजीमल की चीनी मिल में नौकरी करने के लिए जाना स्वीकार करते हैं।

नामवर सिंह गजाधर बाबू के अकेलेपन को व्यक्ति रूप में न स्वीकार कर व्यापक रूप मे स्वीकार कर आधुनिकता की देन मानते हैं - "गजाधर बाबू की वापसी पर किसी की आँख में आँसू नहीं।... इस रिटायर्ड आदमी का अकेलापन जैसे अपरिहार्य है - अकेलेपन से निकलना चाहते हुए भी वह फिर उसी अकेलेपन में वापस जाने के लिए लाचार हो जाता है। और क्या यह अकेलापन गजाधर बाबू का ही है ? क्या ऐसा नहीं लगता कि यह अकेलापन बहुत व्यापक है...।"[49] केवल इतना कहा जा सकता है कि गजाधर बाबू के परिवारवालों ने तो नहीं, हाँ उनके अकेलेपन की यातना ने ही उनका साथ दिया है।

सारांशत: उषा प्रियंवदा की कहानियाँ अकेलेपन और अजनबीपन की स्थिति को आज के मनुष्य की संपूर्ण विवशताओं के साथ उजागर करती हैं। उनकी कहानियों में अकेलेपन और अजनबीपन की स्थिति प्रवासी जीवन की देन है। परिवेश से उखड़ने पर व्यक्ति यहाँ और वहाँ दोनों स्थलों पर अजनबी हो जाता है। अकेलेपन एवम् अजनबीपन का भाव उनकी '•ÖÖ»Ö', '´ÖÖहबन्ध', 'छुट्टी का दिन', 'कोई नहीं', 'सागर पार का संगीत', '×¯Ö'Ö»ÖÝÖß Æ‡ ²Ö±ú', '™™ Æ<', 'नींद', 'स्वीकृति', 'प्रतिध्वनियाँ' आदि कहानियों में भी देखा जा सकता है।

३.६ नारी मुक्ति का स्वर :

आज स्त्रियों की लोकतांत्रिक व्यवस्था युक्त समाज में क्या जगह है? इनसे जुड़े प्रखर ÃÖ¾ÖÖ»ÖÖ ¾ÖÖ ‘Ã¡Öß-¯Ö¹ýÂÖ’ समता के संदर्भों से जोड़कर भी उनकी जटिलता और अनेक प्रकार के मानसिक स्तरों को खोल देने का साहस लेखिका ने बड़े ही साफ-सुथरे ढंग से किया है। अभिव्यक्ति इतनी बेबाक ढंग से की गई है कि सामाजिक विसंगतियों का पर्दाफाश ‘व्यक्ति-स्वातंत्र्य’ की ओट में एक सचमुच का तड़प भरा एहसास भर रह जाता है किन्तु पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति से प्रभावित वैचारिकता से आक्रान्त रूप में ही। डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस संदर्भ में लिखा है- “आज के नारी जीवन में स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद जो परिवर्तन आए हैं और जिन मूल्यों को आत्मसात करने और पुराने मूल्यों को अस्वीकारने के लिए आज की नारी बिना सोचे-ÃÖ´Ö–ने अपनाने के लिए आकुल हो रही है। उसके क्या-क्या परिणाम हुए हैं उषा प्रियंवदा की कहानियों में यह अत्यंत सूक्ष्मता के साथ मुखरित हुआ है।”[50]

ज़ाहिर है कि उषा प्रियंवदा की कहानियों में आधुनिक चेतना से लैस तेवरों वाले ऐसे स्त्री पात्रों का वर्णन है जिनकी जड़ें तो एक मध्यवर्गीय भावुकता से ओतप्रोत भारतीय संस्कारों में निहित हैं किन्तु पाश्चात्य रंग में रंगी वह अपनी अस्मिता की खोज में कहीं -कहीं भटकने लगते हैं। नारी पात्रों में भी बौध्दिकता भरा संयम और दूरदर्शिता के भावों के बावजूद भी अन्ततोगत्वा वह आधुनिका भाव से विलग नहीं हो पाती। कहीं-कहीं नारी सुलभ भावुकता भरी मानसिक स्थिति का अंकन (मछलियाँ), तो कहीं विदेश में रहती भारतीय शिक्षित नारी की एकाकीपन भरी अजनबी बनी स्थितियों का चिंत्रांकन (प्रतिध्वनियाँ) है। आज की स्त्री किन †£ÖÖ ´Ö पढ़ी लिखी आत्मनिर्भर और बौध्दिक हो गई है, उनमें- ‘पर मैं रोउँगी नहीं।’ (एक कोई दूसरा) जैसा चारूता भरा संयम प्रशंसनीय बन पड़ा है। नि:संदेह ये भाव मुक्ति की तलाश के ÆÈß Ã¾Ö¸ Æ | ÆÖ, [2]ाहुधा प्रवासी चेतना प्रधान रहने के कारण कहीं-कहीं उनमें अति स्वच्छंदतावादी व अति वैयक्तिकता भरी प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जिससे नारी मुक्ति की आकांक्षा का पूर्णत: स्वस्थ्य रूप उभरकर सामने नहीं आ पाता बल्कि एक तरह का मानसिक ˆ»Ö–ाावों व द्वन्द्वों के निरूपण भरे स्वर मुक्ति के प्रबल सूत्रधार नहीं बन पाते।

उषा जी की कहानियों में जीवन के प्रति आधुनिक नारी का प्रगतिशील दृष्टिकोण दिखाई ¯Ö›ÌüÖ Æ | ¯ÖÆ»Ö Ã¡Öß-जीवन का उद्देश्य विवाह एवं पारिवारिक ज़िम्मेदारियों का वहन था किन्तु अब आधुनिक नारी इन सब परम्परागत धारणाओं से ऊपर उठ चुकी है। अब उच्च शिक्षा ग्रहण कर आत्मनिर्भर हो रही है। उसकी सोच में परिवर्तन आ रहा है और स्थापित धारणाओं

पर प्रश्न चिन्ह लगता जा रहा है। 'एक कोई दूसरा' में एक शिक्षित पात्र का परिवर्तित दृष्टिकोण नीलांजना द्वारा दिखाया है जिसमें धनोपार्जन के स्थान पर शैक्षिकता को प्रश्रय दिया गया है। प्रो.डॉ.कुमार के सम्पर्क से प्रभावित नीलांजना की परिवर्तित मन:स्थितियों की प्रामाणिक अभिव्यक्तियाँ धनिक वर्ग के प्रति कुछ इस तरह हैं - "क्लब में कभी स्त्रियों की बातें सुनती तो प्राय: सोच उठती कि क्या जयपुर के जड़ाऊ गहनों, चन्देरी और गढ़वाल की साड़िया और लेटेस्ट मॉडल की मोटरों की परिधि में सिमट आया जीवन ही सब कुछ है?"[51] †ŸÖ: नीलांजना अपने जीवन में इन सब चीज़ों को महत्वपूर्ण नहीं मानती और शादी के स्थान पर शिक्षा को प्राथमिकता देती है। यहाँ पर बंधनों से मुक्त होती स्त्री नज़र आती है।

इस प्रकार परिवर्तित जीवन मूल्यों के कारण नारी की प्रगतिशीलता के प्रति आग्रह को दिखाया गया है जो पढ़-लिखकर आत्मनिर्भर होना चाहती है और अब उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य शादी नहीं रहा है। इसी कारण अब उसमें अपने 'जीवन के प्रति' अपनी पहचान बनाने का बोध भी जागा है। वैवाहिक मामलों में निरुत्साह और उदासीनता के पीछे यही बिन्दु कार्य करता है- 'नारी अस्मिता की खोज'।

आधुनिक विचारधारा में आस्था रखनेवाली आधुनिक पत्नी पति को परमेश्वर न मानकर सहयोगी मानती है तथा अनेक पुरुषों से बातें करती हैं। वह पुरुषों के समाज में उठने-बैठने के तरीके में सभी का ध्यान रखती है और चाहती है कि नारी को स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास करना चाहिए। वह प्राचीन विचारधारा के मिथ को तोड़ना चाहती है। '•ÖÖ»Ö' की कौ´ुदी आधुनिक नारी है। लेखिका की मान्यता है कि कौमुदी उन आधुनिक युवतियों में है जो ¯Ö¹ýÂÖÖ ÃÖê ¿ÖŸÖ-प्रतिशत समानता का दावा करती है, अपने व्यक्तित्व को पुरुष के व्यक्तित्व से अलग करके देखती है। विवाहित या अविवाहित पुरुष के साथ मित्रता निभाने में विश्वास रखती है। "¯Ö¹ýÂÖ नामक पति की देखभाल, कि कमीज़ में बटन है, कि खाना समय पर बन गया है, कि कमरे साफ-सुथरे हैं, इन सबसे अपना ठहरावदार यौवन, छोटा-सा घर और अपनी स्वतंत्रता कौमुदी को अधिक प्यारी और मूल्यवान लगती थी।"[52] स्पष्ट है कि पातिव्रत्य मूल्य में निहित सेवाभाव की धारणाओं में नवीन दृष्टि, नवीन मान्यताएँ स्थापित हो रही हैं कौमुदी द्वारा परम्परागत प्राचीन धारणाओं को खण्डित किया गया है।

प्राचीन काल में स्त्री का जीवन पारिवारिक चौहद्दी में कैद होकर रह गया था। वह बंधनों में जकडी हुई छटपटाती रह जाती थी। घर की दहलीज लाँघकर मुक्त हवा में साँस लेना

उसके लिए दुष्वार था। किन्तु आज परिस्थितियाँ बदल गई हैं और पुराने विचार पीछे पड़ते जा रहे हैं। स्त्री आज आत्मनिर्भर होकर, अपरिचित शहर में अकेले रहकर नौकरी करने में भी किसी प्रकार की मुश्किल अनुभव नहीं करÿÖß | 'छुट्टी का दिन' की माया घर से अलग रहकर नौकरी करती है। माया घर से बाहर दूसरे शहर में हिन्दी की प्राध्यापिका है। वह सप्ताह में छ: दिन तो व्यस्त रहती है केवल एक दिन छुट्टी का दिन का बचता है जिसमें उसे सब काम करने पड़ते हैं। वह छुट्टी का दिन मजे में काटना चाहती है। इसलिये वह पुरुषों की भाँति घर से बाहर अकेले घूमती है, पिक्चर अकेले देखने जाती है। यहाँ माया का जीवन पानी के उस निर्बाध स्त्रोत के समान है जिस पर पुरुष रूपी बाँध दूर-दूर तक नज़र नहीं आता, जो उसे अपने बंधनों में जकड़कर उसकी स्वतंत्रता को छीन सके।

आज के इस आधुनिक परिवेश में नारी-जीवन पर पुरुष जाति की पकड़ धीरे-¬Öß¸¡ शिथिल होती नज़र आ रही है। वह हर क्षेत्र में स्वयं को सिध्द कर चुकी है। विवाह आदि में भी परम्परागत मान्यताएँ, जैसे-पुरुष के आगे स्त्री को प्रस्तुत करना और स्त्री की इच्छाओं का गला घोंटकर, सिर -ुकाकर पुरुष की 'ÆÖ' की प्रतीक्षा करना उसे स्वीकार नहीं है। वह अपने जीवन साथी का चुनाव अब स्वयं कर रही है। क्योंकि उसका भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है जिसके प्रति वह आज सतर्क है। '¤Ö †¬Ö¸' की सुमित्रा आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन नारी के साथ-साथ अपने परिवेश में भी अपने को आत्मनिर्भर अनुभव करती है। सुमित्रा नौकरी करती है और अकेली रहती है। उसका शंकर से प्रेम-संबंध है। वह शंकर से शादी करना चाहती है। वह इससे भी संतुष्ट है कि उसकी शादी उस तरह से नहीं होगी जैसी न कमानेवाली लड़की की होती है। इसलिए वह स्वयं सोचती है - "^ÃÖ´Ö जीत केवल सुमित्रा की अपनी जीत होगी। वह वर को दिखाई नहीं जा रही है। आज उसके लिए पिता चिंतित कुछ दीन स्वर में यह नहीं पूछेंगे आपको लड़की पसन्द आयी?"[53] वह अपने पर गर्व अनुभव करती है |

नारी आज परम्परागत दायरे से बाहर निकलती नज़र आ रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति की बदलती परिस्थितियों में पत्नी का परम्परागत स्वरूप भी बदला है। पतिव्रता नारी ने आज जीवन में स्वच्छन्द दृष्टिकोण अपना लिया है, पति के व्यक्तित्व के साथ स्पर्धा भी की है और पति की उपेक्षा भी, इसके साथ ही कहीं-कहीं उसकी वृत्ति स्वच्छन्द रूप से भोगवादी भी हुई है। 'कितना बड़ा -ÖŠ' की किरन अपने पति से -ूठ बोलती है और पति की उपेक्षा करती हुई स्वतंत्र रूप से संबंधों का निर्वाह क¸ÿÖß Æ | 'x™¯Ö' में पत्नी स्वच्छन्द भोग करती है। अपने पति से वह

ÃÖÖ±ú-साफ कह देती है कि वह अपने अफेयर अपने आप कण्डक्ट करेगी; दूसरे वह इस आयु में बच्चे की ज़िम्मेदारी नहीं लेगी। 'सम्बन्ध' की श्यामला सर्जन के साथ नि:संग जीवन जीती है। वह पत्नी की ज़िम्मेदारियों को नहीं निभाना चाहती इसलिए अविवाहित रहकर ही संबंध जोड़ लेती है और गैर-ज़िम्मेदारी से जीवन जीती है। वह सर्जन से कहती है- "क्या हम ऐसे ही नहीं रह सकते प्रेमी, मित्र,बन्धु ! क्या वह सब छोड़ना ज़रूरी है? मैं तो कुछ नहीं माँगती।"[54] आधुनिक सोच से उद्‌भूत इस रिश्ते को क्या नाम दें ? श्यामला अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व में किसी भी प्रकार का बंधन नहीं चाहती- "श्यामला किसी से भी बँधना नहीं चाहती। उसकी शर्त केवल यही है कि वे दोनों एक दूसरे पर प्रतिबंध नहीं लगाएँगे, कोई डिमांड नहीं करेंगे, दोनों ´Ö से कोई भी एक-दूसरे के प्रति ज़िम्मेदार न होगा।"[55] इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक परिवेश में नारी का एक अलग व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है।

वर्तमान समाज का पूरा रूपबंध ही बदल गया है। स्त्री आज पुरुष के समान ही तार्किक बन रही है। स्त्री शताब्दियों से पुरुष की गुलाम रही, उसके अनेक कारणों में से प्रमुख कारण था कि समाज में अर्थ प्राप्ति के सारे स्रोत पुरुष वर्ग के हाथों में थे। परन्तु आज स्त्री आर्थिक रूप से अधिकारी होने से घर में उसका अधिकार है। प्राचीन मान्यता के अनुसार बहन को भाई का कहा मानकर रहना चाहिए था लेकिन बदले हुए संदर्भ से भाई को ही बहन के नियंत्रण में रहना पड़ रहा है। बहन भी घर के संचालन में नियंत्रक बन गयी है, उसका यह रूप पुरानी मान्यताओं के विरुध्द विद्रोह ही है। 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' की वृन्दा आर्थिक स्वावलम्बन के कारण स्वच्छन्द और स्वतंत्र जीवन जीती है। घर में उसका सम्मान बढ़ जाता है। भाई की नौकरी छूटने पर पूरे घर की ज़िम्मेदारी उसी पर आ जाती है। इस कारण भाई के प्रति उसका प्रेम कम हो जाता है। उसका व्यवहार ठीक वैसा ही हो जाता है जैसा कि आम भारतीय परिवार में लड़के का होता है। लड़का कमाता है और घरवालों पर रोब जमाता है। वृन्दा भी ऐसा ही करती है। बेटी के रूप पर आर्थिक स्वावलम्बन के कारण यह बदलाव आया है। वह उपेक्षा से माँ से कहती है - "काम न धन्धा तब भी दादा से यह नहीं होता कि ठीक वक्त पर खाना खा लो। तुम कब तक जाड़े में बैठी रहोगी माँ? उठाकर रख लो, अपने आप खा लेंग |"[56] यहाँ नारी का आर्थिक स्वावलम्बन पुरुष को विचलित करने लगता है। आर्थिक आत्मनिर्भरता से वृन्दा का व्यक्तित्व समर्थ और स्वतंत्र बन गया है। अस्तित्वरक्षा और अस्मिता के लिए स्त्री का स्वावलंबी होना •Öºþ¸ß Æ |

'प्रतिध्वनियाँ' कहानी में एक स्वतंत्र प्रकृतिवाली अत्याधुनिक स्त्री का चित्रण किया गया है। आज के युग में विवाह का परम्परागत अर्थ बदलने लगा है। विवाह अब दो आत्माओं का मिलाप नहीं रहा। आज की नारी पति के व्यक्तित्व में पूर्णत: विलीन होना नहीं चाहती। वह अपनी पृथक सत्ता रखना चाहती है, तथा अपनी मर्जी की ज़िंदगी जीना चाहती है, ऐसा ही प्रयास वसु करती है। वह पढ़ाई के लिए विदेश जाती है। वहाँ उसके संपर्क में कई पुरुष आते हैं। उसका प्रारंभिक जीवन दूसरे द्वारा चुना हुआ था, अब वह अपनी इच्छानुसार जी रही है। उसे इस समय की ज़िंदगी अपनी लगती है क्योंकि यहाँ किसी दूसरे का हस्तक्षेप नहीं है। वह पति, बच्ची और परिवार के बंधन से मुक्त होकर जीने लगती है। वसु व्यवस्था के पाश से मुक्त एक स्वतंत्र और स्वनिर्मित जीवन दृष्टि से जीवनयापन करती है। उसकी यह दृष्टि नारी स्वतंत्रता की चरम अभिव्यक्ति है।

अत: स्पष्ट है कि आज की भारतीय नारी प्राचीन नारी की भाँति त्याग अथवा तप का जीवन न व्यतीत करके व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सर्वाधिक आकांक्षा रखती है। इसीलि‹ 'छुट्टी का दिन' की माया, '¯ÖÙÖ' की ŸÖÖ¸Ö, '¤Ö †¬Ö¸' की सुमित्रा स्वतंत्र रूप से अर्थोपार्जन करके यह ÃÖ´Ö–राती हैं कि अब उसे किसी पुरुष के आश्रय की आवश्यकता नहीं रही ; परन्तु क्या नारी पुरुष का सम्बल धिक्कारकर प्रसन्न रह सकती है? क्या वह इस रिक्तता को भर सकती है ? यह नारी की हार नहीं है एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। उस स्वाभाविक प्रक्रिया से हटना या व्यर्थ का दम्भ करना एक व्यर्थ का ढकोसला खड़ा करना है। इसलिए नारी के लिए यह अपेक्षित हो जाता है कि वह पुरुष का साहचर्य स्वीकार कर आगे बढ़ने की चेष्टा करे। किसी प्रकार का दुस्साहस निश्चय ही उसकी उन्नति में बाधक सिध्द होगा। व्यावहारिक दृष्टि से ऐसा भी होता है। जैसा कि उषा जी ने अपनी कहानियों में चित्रित भी किया है। पुरुष सुख की उपेक्षा करने वाली नारियाँ अंतत: प्रताड़ित, दुखित, कुण्ठित तथा असंतुष्ट रहती हैं। जैसे कि '¤Ö †¬Ö¸' की कौशल्या और '¥ÛÂ™¤ÖÂÖ' की चन्द्रा विवाह करके भी वैवाहिक सुख का उपभोग नहीं कर पातीं जिसके मूल में पुरुष की उपेक्षा है जो उनके मन में क्षोभ उत्पन्न करती है। परिणामत: असंतुष्टि Ã£ÖÖन पा जाती है। अत: अतिरिक्त आक्रामकता भी नारी सुख के पक्ष में नहीं है।

उषा प्रियंवदा की कहानियों में नारी अपने अस्तित्व को पहचानने की कोशिश में है और नारी के अस्तित्व को एक महिला कहानीकार बÖÆŸÖ¸ ÃÖ´Ö–राती है। वह अब पुरुष को साधन मानकर आगे बढ़ना चाहती है, लेकिन भारतीय संस्कार उसके पथ में बाधक बनकर आते हैं।

इस तरह वह अपने आंतरिक विरोधों की शिकार है, उसमें अशान्ति और भटकन का बोध है। 'सम्बन्ध' कहानी इस भटकन और शक्ति का आधार है।

३.७ प्रेम में मोहभंग की स्थिति :

एक विशेष अवस्था में स्त्री-पुरुषों का निकट आना और एक-दूसरे की ओर आकर्षित हो जाना यह प्रकृति का नियम ही है। इन दो में से किसी एक में अथवा दोनों में एक-दूसरे के प्रति प्रेमभाव जागृत होना भी स्वाभाविक है। यह एक वैश्विक और शाश्वत सत्य है। एक-दूसरे को पाने के लिए छटपटाना अथवा एक-दूसरे की याद में आखिरी साँस तक जीना इन प्रेमियों की नियति बन जाती है। किन्तु युग-बोध के बदलने के साथ-साथ प्रेम की वस्तु भी बदलती रही है। नर और नारी के आपसी संबंधों को युग की परिस्थितियाँ नया मोड़ देती रही हैं। आज व्यक्ति विदेशी प्रभाव में अपने रागात्मक संबंधों को भूलता जा रहा है। वह काम वासना, अर्थप्राप्ति तथा शारीरिक तृप्ति चाहता है। उसके मानवीय संबंध नÆà ¸Æ | Ã¾ÖÖ£Ö¯ÖÙÖ †Ö¸ †ÖŸ´ÖÖ¯Ö»ÖÛ²-Ö तक सीमित हो गए हैं। अत: प्रेम भी अब एक पावन संबंध नहीं रहा। इससे पहले नर-नारी के प्रेम की जब कल्पना की जाती थी तो दोनों ही प्रेम के बंधन में बँधकर अपने को धन्य मानते थे। किन्तु आज प्रेम की पवित्रता पर इतना बल नहीं दिया जाता जितना सेक्स की भावना पर। प्रेम आज केवल मनोरंजन का साधन बन कर रह गया है। सफल प्रेम के उदाहरण आज क´Ö मिलते हैं। अधिकतर प्रेमी आज मोहभंग के शिकार होते पाये जाते हैं।

उषा प्रियंवदा समाज की नब्ज़ पर हाथ रखकर कलम चलानेवाली रचनाकार हैं। वे अपनी रचनाओं में परिस्थितिजन्य यथार्थ को कभी -ुठलाती नहीं हैं। उन्होंने प्रेम के उदात्त स्वरूप से युक्त कुछ चित्र खींचे अवश्य हैं किन्तु उनकी अधिकतम नायिकाएँ प्रेम में मोहभंग की ÛÃ£Ö×ŸÖ ÃÖ •Ö-ाती पायी जाती हैं। वे स्वतंत्र-स्वच्छंद प्रेम को मान्यता देती हैं और इसके लिए किसी भी प्रतिबंध या नैतिक मान्यता को स्वीकार नहीं करतीं। उनके अधिकांश पात्र पीड़ा को ÃÖÆ»ÖÖŸÖ Æ | †ÖŸ´Ö-पीड़न में ही संभवत: उन्हें सुख मिलता है। हलके-हलके, मधुर ¯Ö´Ö-ÃÖ²Ö¬Ö, जिनकी परिणति विवाह में न होकर वैयक्तिक क्षेत्र तक ही सीमित रहती है कितनी हृदयद्रावक है, इसका चित्रण उनकी बहुत-सी कहानियों में मिलता है। उषा जी अंतत: इस निष्कर्ष पर

¯ÖÆ“ÖÜÖß Æ कि - “किसी को प्यार करना अपने को ही दु:ख देना है। प्यार में दु:ख के सिवा कुछ नहीं।”[57]

‘कोई नहीं’ नमिता और अक्षय के असफल प्रेम की कहानी है। नमिता अक्षय से अटूट प्रेम करती है किन्तु अक्षय उसे छोड़कर विदेश चला जाता है और वहीं शादी भी कर लेता है। नमिता अपने प्रेम को विस्मृत नहीं कर पाती। अक्षय के बिना वह अपने अकेलेपन को स्वीकार कर लेती है, क्योंकि अब वही उसका साथी है और उसी में जीना सीख लेती है। वह एकरस जीवन बिताती है। यह उषा प्रियंवदा की कहानी में युवती की नियति है जिसे इन्होंने अनेक बार दोहराया है। इसे इन शब्दों में व्यक्त किया गया है - “साल के सÖ»Ö ²ÖßŸÖÖ “Ö»Ö •ÖÖŸÖÖ Æ, ÃÖ³Öß नियमित रूप से होता रहता है। नोट्स पीले पड़ जाते हैं, फिर भी हम वही पढ़ाये चले जाते है। इस जीवन में कोई गति नहीं बची।”[58] नमिता के हाथ केवल दुख और उदासी लगी है और उदासी का बोध भी मधुर है। अतीत की याद उसे विफल बना डालती है और यही कारण है कि नमिता अतीत को अनकहा ही रहने देना चाहती है। उसका खंडित प्रेम उसके व्यक्तित्व को बिखरा देता है। इस तरह विश्वविद्यालय के जीवन में एक बुध्दिजीवी नारी में विफल प्रेम के परिणामस्वरूप उदासीनता कितनी गहरा सकती है, इसकी कलात्मक अभिव्यक्ति इस कहानी में ^¯Ö»Ö²¬Ö Æ |

क³Öß-कभी प्रेम की असफलता के लिए प्रेमी-प्रेमिका ज़िम्मेदार होते हैं तो कई बार समाज एवं परम्परागत सामाजिक धारणाएँ। प्रेम की असफलता के कारण चाहे जो भी हों किन्तु परिणाम केवल लड़की को ही भुगतने पड़ते हैं | ‘बिखरे तिनके : नया नीड़’ कहानी के मणि और यश एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और विवाह करने का भी निर्णय लेते हैं। समाज इन दोनों के बीच रोड़े डालता है। ठाकूर और तिवारी खानदान के चलते दोनों का विवाह नहीं होने दिया जाता। मणि यश के बच्चे की माँ बन जाती है। यश को सूचना दी जाती है कि मणि की मृत्यू हो गई है। मणि नवजात शिशु को अनाथाश्रम छोड़कर अनजान शहर में नौकरी करने लगती है। उधर यश का विवाह हो जाता है। मणि को उँचे प्रेम के सपनों की जगह कटु यथार्थ मिलता है। अपने अकेलेपन से वह त्रस्त हो जाती है , परिवार वाले भी उसे बीच म-Ö-ÖÖ¸ ´Ö ”Ö› ¤ŸÖ Æ - “मणि का ह्रदय हाहाकार कर उठा। कोई नहीं, कोई नहीं। इतनी बड़ी दुनिया में कोई अपना नहीं, सगा नहीं जिन्होंने ज़िंदगी भर साथ देने का वादा किया था, जब वही अपने न हुए तÖÖ...”[59] इतना ही नहीं जिस मिश्रा जी के घर उसने आश्रय लिया था वहाँ यश के

पिता पहुँच जाते हैं। मणि को वहाँ देख वे उसे ज़लील करते हैं, उसे लांछना देते हैं, और उसे मिश्राजी के घर से निकाल बाहर करते हैं। मणि अपमान और लांछना सबकुछ हलाहल की तरह पी लेती है। क्योंकि - "चोट खाते-खाते दिल पत्थर हो जाता है। फिर कितना ही तिरस्कार , अनादर, अपमान और लांछना मिले, कुछ बुरा नहीं लगता।"[60] इस प्रकार मणि के जीवन के तिनके फिर से बिखर जाते हैं, और वह नये नीड़ के निर्माण हेतु निकल पड़ती है। उषा जी ने इस कहानी के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि प्रेम में मोहभंग के कारण स्त्री की स्थिति कितनी दयनीय हो जाती है।

जहाँ एक ओर प्रेम में चोट खाने पर अपमान एवं लांछना को हलाहल के समान पी कर भी चुप रहने वाली नारी है, वहीं दूसरी ओर प्रतिशोध की अग्नि में जलती नारी के भी दर्शन ÆÖŸÖ Æ | 'मछलियाँ' की विजी ऐसी ही नारी है। आज प्रेम भावना में उदात्तता या समर्पण नहीं, प्रतिशोध की भावना है। प्रेम आज स्पर्धा का विषय बन चुका है। विजी मनीष की मंगेतर है और उसके लिए अपने परिजनों को छोड़कर वह विदेश चली आती है। मनीष की विजी में रुचि न होने से वह उसे छोड़कर कनाडा चला जाता है। विजी का नटराजन से संपर्क आने पर दोनों का प्रेम हो जाता है लेकिन इस प्रेम को दोनों में से कोई स्पष्ट नहीं कर पाता। बाद में नटराजन और मुकी की सगाई हो जाती है। मुकी वही स्त्री है जिसकी ओर मनßÂÖ आकर्षित था, मुकी के कारण ही विजी और नटराजन का प्रेमभंग हुआ था। अब फिर से मुकी के कारण ही विजी नटराजन का प्रेमभंग हो रहा है। किन्तु इस बार विजी प्रेम में हुए मोहभंग का प्रतिशोध लेती है। वह मुकी और नटराजन के संबंधों में दरार पैदा कर भारत लौटती है। अत: यहाँ प्रेम में असफल शिक्षित स्त्री प्रतिशोध की आग में कैसे जलती रहती है और मौका आने पर कैसे प्रतिशोध लेती है यह स्पष्ट किया गया है। यहाँ नारी मानसिकता की जटिलता को प्रस्तुत किया गया है।

विवाहपूर्व प्रेम के साथ-साथ उषा जी ने विवाहोत्तर प्रेम का निरुपण भी किया है। जो तर्क और जो स्थितियाँ विवाह पूर्व प्रेम के लिए कारणीभूत होती है, ठीक वही स्थितियाँ विवाहोत्तर प्रेम के लिए कुछ सीमा तक कारणीभूत हो सकती हैं अथवा इसके अलावा भी कई कारण हो सकते हैं। कितना बड़ा -ूठ कहानी की किरन विवाहित है और नौकरी करती है। किरन को मैक्स से प्रेम हो जाता है। पति विश्वेश्वर पत्नी के इस प्रेम से अनजान है। ढाई महीने की छुट्टी के बाद घर लौटने पर किरन को पता चलता है कि मैक्स का विवाह वारिया से

हो गया है। वह भीतर से टूट जाती है। उसकी मन:स्थिति का सुंदर वर्णन लेखिका ने किया है - “एकाएक उसने चाहा कि वह चीखकर रो पड़े वैसे ही जैसे पति की अर्थी उठते हुए देख सद्य: ×¾Ö-Ö¾ÖÖ ¸Ö ˆšÖÖß Æ |”[61] वह एक भारतीय स्त्री है जो अपने-आपको अकेली तो पाती है, लेकिन इतना साहस नहीं बटोर सकती कि वह मैक्स के साथ जाकर लड़े और गालीगलौज करे। उसका ×¾Ö्श्वास टूट जाता है और इसमें प्रेम के मोहभंग की स्थिति को उजागर किया गया है।

उषा प्रियंवदा अपनी कहानियों में टूटती और बिखरती नारी को केन्द्रित करने में लगभग ÃÖ±ú»Ö ÆÖ •ÖÖŸÖß Æ | Ã¡Öß †Ö¸ पुरुष में बदलते संबंधों को ‘मोहबन्ध’ कहानी में भी उजागर किया गया है। इस कहानी में नीलू और राजन पति-पत्नी हैं, अचला नीलू की सहेली है जो कि अविवाहित है। इन दोनों के संबंध अतीत में पुरुÂÖÖ ÃÖ ¸Æ Æ- अचला का संबंध देवेन्द्र से और नीलू का कुँवर इन्द्रजीत से। नीलू स्वच्छंद प्रवृत्ति की होने के कारण वह कुँवर को छोड़ अपनी सहेली के प्रेमी देवेन्द्र को ही अपने प्रेम जाल में फँसा लेती है। जिसके कारण देवेन्द्र और अचला के प्रेम संबंध टूट जाते हैं। प्रेम में हुए मोहभंग से अचला पूर्णत: टूट जाती है। उसके भीतर एकाकीपन गहराने लगता है। वह अविवाहित रहने का निर्णय लेती है। अचला नीलू के घर रहने आती है। नीलू बाहर के जीवन में व्यस्त होने से राजन स्वयं को अकेला महसूस करने लगता है। वह अचला की ओर आकर्षित हो जाता है। अचला अगर चाहती तो राजन को नीलू से छीन सकती थी किन्तु वह प्रतिशोध जैसे विषाक्त भाव से अपना दामन परे रखकर एक महान त्याग का ही परिचय देती है। जिस पर-¯Ö1úÂÖ-मोह के बंधन को नीलू तोड़ नहीं पाई थी, उसे एक भुक्तभोगिनी होने के कारण अचला सफलता से तोड़ देती है। इस प्रकार अचला का व्यक्तित्व ‘मछलियाँ’ की विजी से भिन्न रूप में उभरकर सामने आता है और लेखिका भी नारी मानसिकता की भिन्न-×3Ö®Ö ”™Ö‹ ¯Ööस्तुत करती है।

उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में प्रेम में मोहभंग की स्थिति को -ोलती नारी का ही चित्रण किया है ऐसा नहीं है। उन्होंने अपनी कहानियों में मोहभंग की स्थिति से त्रस्त पुरुषों का भी यथार्थ अंकन किया है। जैसे - ‘नष्ट नीड़’ का समीर, ‘•ÖÖ»Ö’ का राजेश्वर, ‘×¯Ö‘Ö»ÖŸÖß Æ‡ ²Ö±ú’ का अक्षय, ‘ज़िंदगी और गुलाब के फूल’ का सुबोध, ‘चाँदनी में बर्फ़ पर’ का¾Ö Æ´Ö, ‘†Ö×ÁÖŸÖÖ’ का शेखर, ‘¾ÖÖ¯ÖÃÖß’ के गजाधर बाबू आदि। प्रेम दोनों ओर पलता है अत: प्रेम संबंधों के टूटने पर स्त्रियों के साथ-साथ पुरुषों का भी मोहभंग की स्थिति से गुज़रना स्वाभाविक Æß Æ |

स्पष्ट है कि उषा प्रियंवदा ने प्रेम जैसे अत्यंत सूक्ष्म व्यक्तिगत और संवेदनशील विषय को विभिन्न आयामों के साथ चित्रित किया है। उन्होंने अपनी अधिकतर कहानियों में असफल प्रेम के चित्रण द्वारा प्रेम की निरर्थकता को ही उजागर करने का प्रयास किया है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उन्होंने उदात्त प्रेम-भावना से युक्त कहानियाँ नहीं लिखीं। उनकी ऐसी कहानियाँ भी हैं, जो प्रेम की महत्ता को प्रतिपादित करती हैं। वास्तव में रचनाकार यथार्थ को -ाुठला नहीं सकता। आज सफल प्रेम से ज्यादा असफल प्रेम के दृश्य दिखायी पड़ते हैं। और उषा प्रियंवदा ने इसी वास्तविकता को शब्दबध्द करने का सफल प्रयास किया है।

३.८ निर्बाध यौन-जीवन की स्वीकृति :

Ãj̈Öß-पुरुष के प्राकृतिक आकर्षण को नकारा नहीं जा सकता। इसके परिणामस्वरूप वे निरन्तर एक दूसरे का साथ चाहते हैं। आधुनिक स्त्री-पुरुष सदियों से चली आ रही वर्जनाओं और बन्धनों को स्वीकारना नहीं चाहते। नैतिक-अनैतिक, पाप-पुण्य, अच्छाई-बुराई की व्याख्याएँ बदल रही हैं, इस कारण सभी प्रकार के स्थापित मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन हो रहा है। यौन-संबंध इसके लिए अपवाद नहीं हो सकते। नारी की नई भूमिका के कारण वह, नारी संबंधी परम्परागत मान्यताओं, धारणाओं और नैतिकता के नियमों को नकारने लगी है। यौन भावना, काम संबंध, दाम्पत्य जीवन आदि के संबंध में उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को सुरक्षित रखना चाहती है। उसके मन में जन्म जन्मान्तर के पातिव्रत्य धर्म या पतिपरायणता जैसी कोई ग़लतफ़हमी नहीं है। यौन संबंधों को लेकर अब उसके मन में वैसा पापबोध नहीं उभरता जैसे पहले उभरता था। नारी भी एक व्यक्ति है और व्यक्ति होने के नाते उसकी अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं को पूर्ण करने का उसे अधिकार है। वह पुरुष की भोग्या नहीं बल्कि सहभोक्ता बनकर जीना चाहती है। परिणामस्वरूप विवाहपूर्व और विवाहोत्तर दोनों स्थितियों में पवित्रता, एकनिष्ठता, शारीरिक एवं मानसिक शुध्दता की नैतिकता का ह्रास हो गया है। अत: नर और नारी दोनों ही यौन संबंधों के प्रति बेलगाम घोड़े की तरह उन्मुक्त हो गए हैं। वैसे साहित्य में यौन चित्रण अस्वाभाविक नहीं है, लेकिन इसका कथ्य कहीं परिवर्तित सामाजिक बोध की अभिव्यक्ति होना चाहिए, इससे हटकर यौन चित्रण पोर्नोग्राफी बन जाता है और समूचा वर्णन अश्लील हो जाता है। मुंशी प्रेमचंद और उनके

सहलेखकों का ध्यान भी इस ओर गया था, पर उन्होंने सांकेतिक भाषा में ही ऐसे प्रसंग चित्रित किए। आदर्श पर चोट होने तथा साहित्य के अमर्यादित होने की वजह से ही उन्होंने अश्लील यौन संबंधों को अधिक उभार नहीं दिया। किन्तु आधुनिक महिला लेखिकाओं ने यौन संबंधों का उन्मुक्त चित्रण किया है। डॉ.पुष्पपाल सिंह के अनुसार - “महिला कथाकारों ने आत्मा के शाश्वत मूल्यों की परवाह न कर छायावादी रोमांस शैली से सर्वथा विमुक्त होकर, देह सत्यों को स्वीकाÖ¸ÖÖ Æü।”[62]

उषा प्रियंवदा की अधिकांश कहानियों में नारी तथा पुरुष संबंधों की अभिव्यक्ति यौन तथा प्रेम की भूमिका पर ही हुई है और उन्होंने बड़े सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ इन संबंधों को निरूपित किया है। नर-नारी के ये प्रेम संबंध वैचारिक भूमिका के आधार पर बुध्दिवाद के सहारे यौन-परम्पराओं को निभाने में समर्थ सिध्द हुए हैं। नर-नारी संबंधों में प्रतिस्पर्धा, अस्मिता की रक्षा तथा व्यक्तिपरक भोगवाद को वाणी दी गयी है। शारीरिक पवित्रता-अपवित्रता अथवा नैतिकता-अनैतिकता आदि के प्रश्न इनके लिए महत्वपूर्ण नहीं हैं। यही कारण है कि पुरुष की तरह इनकी नारी भी यौन स्वच्छंदतावादिनी है जिसमें कहीं कोई दबाव नहीं है। रूढ़ियों के प्रति आग्रह नहीं हैं। प्रेम के विस्तृत प्रांगण में इनके नर-नारी स्वच्छंद रूप से विचरण करते हैं। शायद लेखिका के पाश्चात्य देशों में रहने के कारण, उनकी कहानियों में, पाश्चात्य परिवेश में प्राप्त यौन संबंधों का मुक्त रूप से चित्रण प्राप्त होता है।

मध्यवर्गीय परिवारों की आर्थिक स्थिति ने उन्मुक्त यौन संबंधों के लिए भूमि तैयार की है। अधिकतर परिवारों में महिलाएँ नौकरी करने लगी हैं। घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर अब उन्हें उन्मुक्त रूप से पुरुषों से मिलने जुलने के अवसर मिले हैं। आज की नारी के लिए दूसरे व्यक्ति के साथ शरीर संबंध रखना सहज हो गया है। दाम्पत्य जीवन में भी नारी का मन पूर्ण काम-सुख भोगने के लिए ललकता है अत: वह पति से छिपकर परपुरुष से कामतृप्ति का आनंद लेती है। ‘कितना बड़ा –ÖŠ’ कहानी की किरन अपनी यौनेच्छा पूर्ति के लिए विवाहबाह्य संबंध रखती है। पति विश्वेश्वर के परोक्ष मैक्स नामक पुरुष से संबंध स्थापित कर अपनी यौनेच्छा की तृप्ति करती है। जब मैक्स विवाह कर लेता है तो किरन को लगता है मैक्स ने उसके साथ छल किया है। अपने पति से किए गए छल का उसे ध्यान नहीं आता। ‘स्वीकृति’ कहानी में सत्य के लिए जपा केवल एक माध्यम बन कर रह जाती है। अर्थोपार्जन हेतु वह उसे दूसरे शहर में नौकरी के लिए भेज देता है। वहाँ जपा वाल के संपर्क में

आती है और उसे यह तीव्र अनुभूति होती है कि वह अपने पति के लिए पत्नी न रहकर उसकी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति का माध्यम मात्र रही है। मानसिकता के ऐसे धरातल पर पति से दूर, न केवल उसकी अपेक्षाओं का तिरस्कार ही करती है प्रत्युत उसे उसकी संपूर्णता में अस्वीकार भी करने लगती है। ऐसे में उसके और वाल के संबंध अधिक घनिष्ठ होने लगते हैं। इसीलिए पति के साथ एकान्त द्वीप पर होने पर भी वह निरंतर वाल से जुड़ी रहती है।

'x™¯Ö' कहानी के पति और पत्नी में मधुर क्षणों की समाप्ति हो चुकी है। पत्नी के जीवन में स्टीफ़ान नामक एक तीसरा व्यक्ति प्रवेश करता है। पत्नी स्टीफ़ान से वह सब पाना चाहती है जो कभी उसके अपने पति से पाया था। पति पत्नी के अनैतिक संबंधों के बारे में जान •ÖÖÝÖÖ Æ | ˆसकी शिराओं में रक्त नहीं खौलता और न ही पत्नी या स्टीफ़ान के प्रति वह क्रूर होता है। वह अपनी गृहस्थी बचाने के लिए तथा बच्चों के भविष्य के लिए पत्नी के अवैध संबंधों को स्वीकार कर लेता है। तात्पर्य पुरुष की मानसिकता किसी हद तक पत्नी की अनैतिकता को स्वीकारने के लिए तैयार हो चुकी है। आज की नारी के लिए दूसरे व्यक्ति के साथ संबंध रखना सहज हो गया है। वह पातिव्रत्य धर्म की पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर नये मूल्यों को अपना रही Æ |

दरअसल पुरुष भी इस स्थिति के लिए कम ज़िम्मेदार नहीं है। वह विवाहित होते हुए भी दूसरी स्त्री के साथ संबंध रखता है, स्त्री भी बिना विवाह पुरुष के साथ रहने से व शारीरिक संबंध स्थापित करने से हिचकिचाती नहीं है। 'ÃÖ²Ö-Ö' कहानी में एक कुँआरी नारी का शादीशुदा तीन बच्चों के पिता सर्जन से प्रेम करना और शारीरिक संबंध रखना पश्चिमी सभ्यता का द्योतक है। श्यामला बंधे-बंधाये जीवन से मुक्त होकर उसे अपने ढंग से जीना चाहती है। वह परिवार से कटाव में है और एक निर्जन एकांतवास ले रही है। वहीं उसका पुरुष मित्र सर्जन †ÖÝÖÖ-जाता है। सर्जन श्यामला के लिए घर लेना चाहता है और अपनी पत्नी को छोड़ने के लिए भी तैयार हो जाता है। किन्तु श्यामला सर्जन की पत्नी को किसी भी प्रकार संत्रस्त नहीं करना चाहती। वह सर्जन से अप्रतिबध्द और प्रतिबन्धहीन धरातल पर जुड़ना चाहती है। वह उससे यौन संबंध तो रखना चाहती है किन्तु अपने रिश्ते को कोई नाम नहीं देना चाहती। अर्थात् वह उसे बिना जुड़े ही पाना चाहती है। आधुनिक परिवेश में रिश्तों के परिवर्तित रूप देखने को मिलते हैं।

विवाहपूर्व यौन संबंध का चित्रण '¯ÖÌÝÖ' कहानी में भी देखा जा सकता है। तारा अविवाहित प्राध्यापिका है। उसके भीतर भी स्वाभाविक इच्छाएँ हैं। परन्तु वह कुरूप है इसी कारण अविवाहित है। विवाह की कमी को वह महसूस करती है। तारा को नलिन का सहवास मिलता है। अचानक एक रात तारा और नलिन कमरे में थे कि बिजली चली जाती है और इस बीच नलिन का स्पर्श और फिर काबू न पाने की स्थिति - "नलिन के हाथों ने तारा के हाथ छुए... अन्त में तारा शिथिल हुई...नलिन की भुजाओं में अपने को खिंच जाने दिया।"[63] कामसुख की तृप्ति के बाद वह महसूस करने लगी कि अब वह अकेली नहीं है, वह परिपूर्ण है। प्राकृतिक इच्छा की पूर्ति हो जाने पर वह संतुलित हो जाती है। स्त्री भले ही कितनी भी स्वावलंबी, आत्मनिर्भर तथा स्वतंत्र हो परन्तु स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति से वह अछूती नहीं रह सकती। अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर लेना कामकाजी आविवाहित स्त्री को सहज संभव है, भले ही वह कुरूप हो। और उसे अपराध-²ÖÖ¬Ö ³Ößü नहीं होता।

'"ÖÖ¤ü "Ö»ÖÝÖÖ ¸üÆüÖ' कहानी में मनोवै-ïानिक दृष्टि से प्रेम के उन्मुक्त रूप को उजागर किया गया है और यह उषा प्रियंवदा की कहानी को एक नया आयाम देता है। कहानी में अरविन्द ने एक स्थिति में विवाह से पूर्व रोहिणी से समर्पण चाहा था परन्तु रोहिणी अपनी नैतिकता के कवच कुंडल पहने रहती है और इन्कार कर देती है। दो दिन बाद अरविन्द की मृत्यु हो जाती है। इस गहरे घाव को भरने के लिए वह नैतिकता की चादर उतार फेंकती है। जिस शरीर ने अरविन्द को एक अस्वीकार दिया था वही शरीर अब अनेक पुरुषों के आगे स्वीकार भरी मुद्रा में समर्पित होने लगता है। कभी शिमला में, कभी कर्नल की भुजाओं में और कभी विनय के संपर्क में। परन्तु वह इन संपर्कों में अपने को अणु-अणु रेतती है और खंड-खंड रूप में शीत मृत्यु पाती है - "हर बार जब मैं किसी की शय्या पर सोती हूँ, मेरा एक अंश मर जाता है। ...¾ÖÆü ÆüßÔ¸ü के टाप मु-ïे पन्द्रह दिन शिमले रहने के बदले में ही मिले थे। इस तरह से मैं अपने से ²Ö¤ü»ÖÖ »ÖêÝÖß Ææü - क्योंकि मैंने उस रात अरविन्द को डिनाई किया था। मैंने केवल उन्हीं को चाहा था, केवल उन्हें।"[64] इस कथन में अपराध के बोध का स्वीकार है, स्वयं को सज़ा देने की कोशिश है। वह अपने अन्तर के खालीपन को विभिन्न पुरुषों के साथ यौन-संबंध स्थापित कर भरना "ÖÖÆüŸÖß Æü।

'प्रतिध्वनियाँ' कहानी की वसु यौनाकर्षण की तीव्र लालसा के कारण ही तलाक़ लेने के बाद मुक्ति का एहसास महसूस करती है और उसके बाद एक के बाद एक पुरुषों के साथ

शारीरिक संबंध रखती है। हर पुरुष के द्वारा यौनतृप्ति का आनंद लेने में वह जीवन का अनुभव करती है- "और कितने मादक थे वे अस्थायी संबंध- नलिन, पटनायक, विंस...! बेटी पास लेटी हुई है और वह अपने जीवन में आये पुरुषों के नाम गिन रही है।"[65] उसके मन में कहीं भी ग्लानि नहीं है। 'सागर पार का संगीत' कहानी में एक विवाहित स्त्री अपने पति की गैर मौजूदगी में इतनी निर्लज्ज हो जाती है कि वह परपुरुष के सामने अनावृत्त होकर उसके साथ ¿ÖÖ¸ßरिक संबंध रखने में हिचकिचाती नहीं है - "भागकर आया यास्पर कमरे की दहलीज पर ठिठक गया। अर्ध्द अनावृता देवयानी ने उसके गले में अधीर बाँहें डालकर अपनी ओर खींच लिया।"[66] '™™ Æ८' कहानी में भी उषा जी ने नर और नारी के उन्मुक्त व्यवहार का चित्रण किया है, जो कि केवल विदेशों में ही संभव हो सकता है, भारत जैसे देश में नहीं।

स्पष्ट है कि आधुनिक परिवेश में यौनतृप्ति को एक आवश्यकता के रूप में स्वीकार किए जाने पर विवाहपूर्व एवं विवाहोत्तर यौन संबंध को उदार दृष्टि से देखा जाने लगा है। इसीलिए आधुनिक कहानियों में भी इन संबंधों की बे–Ö–ाक अभिव्यक्ति पायी •ÖÖÝÖß Æ।

३.९ वैयक्तिकता का आग्रह :

जीवन के प्रति नितान्त वैयक्तिक दृष्टिकोण को लेकर चलने की प्रवृत्तियाँ अस्तित्ववादी विचारधारा के मूल में हैं। यूरोप में जहाँ वै-ाानिक अनुसंधानों का ज़ोर ²Öœ ¸ÆÖ £ÖÖ, ÃÖ¾Ö¡Ö - ाान-×¾Ö-ाान का प्रसार अपनी चरम सीमा पर था। डॉ.श्यामसुन्दर मिश्र के अनुसार भी- "±ÎÖÃÖ की राज्यक्रान्ति के पश्चात् समूचे यूरोप में स्थापित उत्तरदायी प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में क्रान्तिकारी व्यक्तिवादी चिन्तन की प्रधानता को नवीन प्रतिक्रियात्मक धरातल प्रदान किया था।"[67]

महायुध्दों के बाद की स्थितियों का प्रभाव सारे विश्व पर पड़ा। विकसित और विकासशील दोनों ही देशों की स्थितियों में इतना तो स्पष्ट हो ही गया था कि व्यक्ति अपनी नियति का निर्माता स्वयं है क्योंकि संघर्ष के उस दौर में विदेशी शासन से मुक्ति का आग्रह सभी के मन में था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी वैयक्तिक स्वतंत्रता की आकांक्षा ने ही वैयक्तिक भावना को प्रश्रय दिया। चारों ओर से घिरी विभिन्न परिस्थितियों में यांत्रिकता इस कदर हावी है कि उस व्यवस्था के बीच 'व्यक्ति' द्वारा स्वयं को खोजना व पहचानना काफी मुश्किल लगने

लगा है। पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा पैदा हुई जटिलता इस संदर्भ में काफी मायने रखती है जिसने यांत्रिकता की परिधि द्वारा काफी गहराई से वैयक्तिक चेतना को बढ़ावा दिया। वैयक्तिक चेतना को स्पष्ट करते हुए डॉ.प्रेमपाल ने लिखा है - "वैयक्तिक चेतना से युक्त व्यक्ति स्वहित साधन को बौध्दिकता तथा तर्क की कसौटी पर कसकर परखता है और वैयक्तिक आग्रह, मूल्यों, मानदण्डों, विचारों को दृढ़ता से वाणी प्रदान करने लगता है।"[68]

उषा प्रियंवदा की कहानियों में हम यही वैयक्तिक चेतना भिन्न-भिन्न रूपों में देखते हैं। चाहे प्रेम संबंधों का वर्णन रहा हो, या वर्तमान विसंगतियों पर चोट करना - ÃÖ¾Ö¡Ö ÃÖ²Ö¬ÖÖ ´Ö वैयक्तिक आग्रहों के प्रति ही प्रधान स्वर जाता है। नारी पात्रों में जिस आत्म-सजगता और बौध्दिक चेतना को दिखाया जाता है , उनमें भी वैयक्तिक घेरे में आबध्द अनुभूतियाँ ही प्रधान रही हैं। जिसका एक प्रधान कारण पाश्चात्य पृष्ठभूमि ही रही है जिसने व्यक्तिगत संदर्भो में ही हर चीज़ को जाँचने-परखने की दृष्टि दी। इनकी कहानियों में अति वैयक्तिकता देखकर कहीं न कहीं यह महसूस होने लगता है कि जैसे ज़िन्दगी के पर्याय यहीं वैयक्तिक घेरे में आबध्द होकर रह गये हैं जो कि युगीन अभिव्यक्तियों में सार्वजनिकता से विलग अनुभूति है। जैसे- "पर एक पीड़ा उसकी अपनी है बिल्कुल अपनी और उस पीड़ा का स्रोत है यह बोध कि वह यदि चाहता तो बीरू को बचा सकता था।"[69] इस तरह की वैयक्तिकता के बोध, एकाकीपन, शून्यता और रिक्तता की अनुभूति दिखाना ही रचनाकार का दायित्व नहीं बल्कि इनसे भी परे कुछ और है। फिर भी लेखिका की विशिष्टता इस बात में है कि उनके पात्रों में यथार्थ बोध के आधार पर वैचारिक संयम की विवेक भरी बौध्दिक पहचान कायम रही है फिर भी लेखकीय दृष्टि में वैयक्तिकता के प्रति आग्रह-³ÖÖ¾Ö ÃÖ¾Ö¡Ö ´ÖÖ•Ö¤ ¸ÆÖ Æ |

दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी भारतीय संस्कारों के अनुसार अपने व्यक्तित्व को दूसरे के व्यक्तित्व में विलीन कर दो शरीर एक प्राण, एक मन हो जाते हैं, परन्तु आज की नारी पति के व्यक्तित्व में अपने 'Ã¾Ö' को विलीन नहीं कर पाती है। वह स्वयं को जानना-खोजना चाहती है कि वह भी एक व्यक्ति है। ऐसा न होने पर दाम्पत्य संबंधों में शिथिलता और टूटन आ जाती है |

'प्रतिध्वनियाँ' की वसु का विवाह अपनी उम्र से बड़े पुरुष श्यामल के साथ हुआ था। श्यामल के लिए वह मात्र खिलौना थी। किसी अनजान क्षण में रुचि गर्भस्थ हुई। श्यामल के साथ विदेश पहुँचकर पहली बार उसे लगा था कि- "वह मुक्त है, वह भी आकर्षक है, एक युवती

है। उसकी उमंगें, कामनायें मरी नहीं हैं। श्यामल के अंकुशों से निकलकर कितना हलका-हलका लग रहा था। अपने में निहित, स्वतंत्र, पूर्ण व्यक्तित्व को पाना कितनी बड़ी उपलब्धि £ÖÛ ।"[70] वह सोचती है घर कहाँ है अब मेरा-श्यामल, रुचि या मैक्सिको में उसका दो कमरों ¾ÖÖ»ÖÖ °»Ö™ । "उसे श्यामल का प्यार नागपाश-सा लगता था। वह उसे बंधन जानकर छटपटाती थी। श्यामल की पत्नी होने के संदर्भ से कट कर वह जानना चाहती थी कि वह असलियत में क्या है। अब वह मुक्त है और कुछ मानों में उसने अपने को पा भी लिया है, जैसा कि वह जानती है कि वह आकर्षक भी है, और बौध्दिक भी।"[71]

¾ÖÆ डॉ.जूलियन के पचासों मरीज़ों में से एक भारतीय युवती नहीं थी, वह वसु थी-अपना अलग व्यक्तित्व और अपनी अलग समस्याएँ लिए हुए। वह भारत आकर पति और अपनी पुत्री से मिलती है, पुराना प्यार जागता है, परन्तु वह उसके तन-मन प्राणों को बाँध नहीं पाता। वह वापस लौट जाती है। उच्च शिक्षा और पश्चिमी संस्कृति ने नारी में अपने व्यक्तित्व के प्रति जागरूकता उत्पन्न कर दी है, वह अपनी मनपसन्द ज़िन्दगी जीना चाहती है जो बंधनों ÃÖ ´ÖŒÝÖ ÆÖ ।

वैयक्तिक-चेतना से युक्त कहानी लेखिका होने के नाते इन्होंने नारी पात्रों की वैयक्तिक चेतना को वाणी दी है। आत्मजागरूक बनाने के लिए इन्होंने नारी-पात्रों को संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया है। इस संघर्ष करने की स्थिति में निराशा, दु:ख, शोक, संताप आदि की मार्मिक अभिव्यंजना स्वाभाविक है। और इन्हीं स्थितियों में इनके पात्रों के साथ संवेदना उभरने लगती है। इनके पात्र सामाजिक उपेक्षा के बो–Ö ÃÖ 2ÖÖx–ाल एकरस जीवन जीते हैं। उस एकरसता में इन्हें शून्यता और असफलता का बोध अधिक होता है। अत: समायोजन की समस्या उत्पन्न होती है। पुरुष को पराजित करने की बलवती इच्छा, आत्म जागृति की अद्भुत कामना, सामाजिक दायित्व का बोध इनकी नारियों को प्रबुध्द बनाता है। परिस्थितियों का वैषम्य इन नारियों के प्रति सहानुभूति जगाता है। स्पष्ट है कि वैयक्तिक-चेतना की समर्थ सफल कहानीकार होने के नाते उन्होंने व्यक्ति की वैयक्तिक समस्याओं तथा राग-विराग का अधिक चित्रण किया है। नारी होकर नारी के मन की थाह लेने के कारण गार्हस्थ्य जीवन की विडम्बनाओं को यथार्थ परक दृष्टि से रूपायित किया है। इनकी कहानियों का गार्हस्थ्य जीवन अपेक्षित रूप से सफल नहीं है। आधुनिक युग की मिसफिट होने की प्रवृत्ति स्पष्ट –ालकÝÖÛ Æ ।

संवेदनापरक वैयक्तिक चेतना से युक्त कहानियों में 'मछलियाँ', '-ूठा दर्पण', '•ÖÖ»Ö', '¯ÖÙŸÖ', 'कोई नहीं' आदि दृष्टव्य हैं।

'मछलिया' की नायिका विजी के प्रति लेखिका पहले तो पाठकों में संवेदना जागृत करती है। विजी का मस्तिष्क सक्रिय है परन्तु उसका नारी पक्ष विवश है। उसमें पति के प्रति संबंधों को लेकर राग और बुध्दि में वैमनस्य बना रहता है। परन्तु कहानी के अंत तक आते-†ÖŸÖ उसका बुध्दिपक्ष पूर्णतया जागृत हो जाता है और वह अपने मित्र की होने वाली पत्नी से ऐसा प्रतिकार लेती है जो अप्रत्याशित है जिसकी कल्पना पाठक नहीं कर सकता। यहाँ लेखिका नारी को उसके परम्परागत संस्कारों से मुक्त कर देना चाहती है। "जाने से पहले विजी मेरे पास आई थी। जिससे सदा से उसने नफरत की, उसे यह बताये बिना कैसे चली जाती। उसी ने बताया कि तुमने उसे पन्द्रह सौ डालर दिये हैं, डॉक्टर के पास जाने और इण्डिया लौट जाने के लिए।... ´Ö-ने ख्याल भी नहीं था कि तुम इतने आगे बढ़ जाओगे।.... न अब कुछ नहीं सुनूंगी। मैं भी बहुत मानिनी हूँ नटराजन। बहुत दर्प मेरे अन्दर भी है।.... गो अवे ! यह विवाह नहीं होगा।"[72] मुकी के इन शब्दों को सुनकर नटराजन हिल जाता है। वह सम-ा नहीं पाता कि विजी ने •ÖÖŸÖ-जाते ऐसा क्यों किया। यही स्वर '-ÖŠÖ ¤¯Öण' ŸÖ£ÖÖ 'कोई नहीं' में भी देखा जा सकता है।

'¯ÖÙŸÖ' कहानी भी नारी के अकेलेपन की व्यथा और उसके जीवन में पुरुष की अनिवार्यता को उद्‌घाटित करती है। इस कथा की स्वच्छंद प्रकृति नायिका 'ŸÖÖ¸Ö' का •Ö²Ö नलिन का ध्यान आता है तो वह अपने को दुर्बल नहीं बनाना चाहती और सोचती है - "´Ö सुखी हूँ-सुखी हूँ,मु-ने अपना काम अच्छा लगता है- ´Ö Ã¾ÖŸÖ¡Ö Æ-मेरे पास धन है-मैं सुखी हूँ- लेकिन साथ ही वह जान रही थी कि इन सबके बावजूद उसके जीवन में एक बहुत बड़ा अभाव है।"[73] लेकिन जब नलिन अपनी प्रेम भावनाओं को अभिव्यक्त कर देता है तो वह आत्मविभोर हो उठती है और अपने भीतर एक गहरी तृप्ति का अनुभव करती है; क्योंकि वह जानती थी कि "उसका नद अब उसी के जीवन को सिंचित करता रहेगा; क्योंकि इसी दुनिया में किसी जगह नलिन भी है जिसने उसे निर्गन्ध फूल सम-ाकर मुँह नहीं फेर लिया है।"[74] लेखिका ने यहाँ तारा की वैयक्तिक-चेतना तथा उसके प्रति संवेदना को भी रूपायित किया है।

आज के व्यक्ति को मानव नहीं कहा जा सकता। मानव शब्द से सामाजिकता की गंध आती है तथा मानव-जीवन से समष्टिपरक जीवन का प्रत्यय-बोध होता है। परन्तु यह मानव

अब तो व्यक्ति में परिणत हो गया है और उसका जीवन वैयक्तिक हो गया है। मानव से व्यक्ति रूप में परिणत हुआ आज का व्यक्ति वैयक्तिक-चेतना के उद्‌बोधनों से जैसे दुगुनी प्राणशक्ति प्राप्त कर गया हो। उसकी वैयक्तिक-चेतना अस्मिता को बलवती बनाती है। जीवन के प्रति आकर्षण उत्पन्न करती है। स्वच्छंदता, स्वतंत्रता का मंत्र फूँकती है। अर्थ और यौन इस वैयक्तिक-चेतना के मुख्य आधार हैं। आर्थिक रूप से विषम हो जाने पर व्यक्ति कभी आक्रोशयुक्त होता है, तो कभी अंतर्मुखी। पेट की भूख उसे जितना क्षुब्ध बनाती है, उतना ही यौन-लालसा उसे पिपासु बना देती है। दोनों बुभुक्षाओं से आक्रान्त हुआ व्यक्ति असंतुष्ट होकर †¯ानी चेतना को ललकारता है, तो कभी उसी की अपनी परिस्थितियाँ उसे दबोचती हैं।

आर्थिक मूल्य अर्थकेन्द्रित समाज में जन-जीवन के उतार-चढ़ाव का कारण होता है। किसी भी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्णय आज उसकी आर्थिक स्थिति में निश्चित होता है। तात्पर्य आज अर्थ व्यक्ति तथा समाज के विकास का मेरुदण्ड बन गया है। ऐसे में अर्थाभाव के कारण व्यक्ति का कोई महत्व शेष नहीं रहा। व्यक्ति अपना पथ खोजने में स्वयं को समर्थ ÃÖ´Ö-ाते हुए भी असफल रहता है। वैयक्तिक-चेतना के कारण समाज का हस्तक्षेप उसे स्वीकार्य नहीं है। परिणामस्वरूप वह भटक गया है। भटके हुए इस व्यक्ति को और आश्रय नहà´ मिलता। संबंधों में विकृति आ जाने के कारण उसे माता-×¯ÖŸÖÖ, ³ÖÖ‡-बहन, पुत्र-पुत्री का प्यार नहीं मिलता। इस अभाव की पूर्ति यदि वह पत्नी से करना चाहता है , तो वह भी मुँह फेर लेती Æî। टूटा हुआ मन यदि बच्चों को प्यार करना चाहता है, तो वे अपनी अस्मिता का डंका पीटते हैं, खाली मन जब उँचा उठना चाहता है, तो बड़े-बड़े दफ्तरों के दरवाज़े बन्द हो जाते हैं। मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव में व्यक्तिमन केवल अहम् की सुरक्षा में जुट जाता है। उसकी एकमात्र सम्पत्ति उसका अस्तित्व है। जिजीविषा की भावना उसके अस्तित्व संरक्षण में सहायक होती है और वह चोट खाकर भी जीता है। '¾ÖÖ¯ÖÃÖß', 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल', '–ÖŠÖ दर्पण', '¥ÛÂ™¤ÖÂÖ' आदि कहानियों में मानव मन की इन्हीं सूक्ष्म परतों को उघाड़ा गया है।

पश्चिमी साहित्य के प्रभाव के कारण उषा जी की कहानियों में अर्थ की समस्या उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी यौन समस्या। कामोत्तेजना पाश्चात्य देशों के लोगों में भारतीयों की अपेक्षा अधिक है। भारतीय जनता में प्रभावस्वरूप यह भावना बढ़ गयी है। संबंधों में ×¾Ö¸»ÖŸÖÖ तथा टूटन, यौन वर्जनाओं के कारण अधिक आयी है। पश्चिम का स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण व्यक्ति के मन में टूटन की तीव्रता जागृत करता है। निराशा, भग्नाशा, असफलता,

असंतोष आदि भावनाएँ कामोत्तेजना के कारण अधिक पनपती हैं। परिणामस्वरुप वैयक्तिक-चेतना कभी कुण्ठित तो कभी आक्रामक हो जाती है। '“ÖÖ¤ “Ö»ÖŸÖÖ ¸ÆÖ', 'सागर पार का संगीत', '™™ Æ‹', 'x™¯Ö', 'ÃÖ²Ö¬Ö', 'स्वीकृति' आदि कई कहानियों में इस प्रकार की स्थितियों का चित्रण हुआ है।

†ÖŸ´Ö-चेतना की प्रधानता होने के कारण उषा जी के पात्र प्रेम के क्षेत्र में भी सक्रिय बने रहते हैं। जीवन की असह्य परिस्थितियों को एक चुनौती के रूप में स्वीकार कर इनके पात्र उनका सामना निर्भीकता एवं सहजता से करते हैं, तथा प्रेम के सूक्ष्म-ÃÖ-सूक्ष्म स्पन्दन को अनुभूत करते तथा भोगते हैं। 'क´™ß»Öß ”ÖÆ', 'कितना बड़ा –ÖŠ', 'अकेली राह', 'चाँदनी में बर्फ़ पर', '™™ Æ‹' आदि कहानियाँ प्रेम की दृष्टि से उषा जी की विशिष्ट कहानियाँ हैं जो स्त्री-¯Ö1ÿÂÖ संबंधों को वर्तमान युग के धरातल पर अभिव्यक्ति देती हैं।

सारांशत: इनकी वैयक्तिक-चेतना पर भारतीय तथा अभारतीय वातावरण का प्रभाव पड़ा है। संभवत: यही कारण है कि इनकी कहानियों के पात्रों में मुक्त होने की प्रवृत्ति अधिक है। एक विचित्र प्रकार की उन्मत्तता है जो जीवन की असफलता या निराशाजन्य परिस्थितियों को अनुभूत नहीं करने देती। इनकी कहानियों के पात्र सक्रिय हैं; परन्तु कभी-कभी वातावरण से पूर्ण सम-ग़ौता नहीं कर पाते। इनकी कहानियों में एक आवेग है जो वैयक्तिक-चेतना के कारण उत्पन्न हुआ है, यहाँ व्यक्ति अस्मिता की खोज में भटकता रहता है।

३.१० विवाह के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण :

आधुनिक मनुष्य की संपूर्ण दृष्टि और विचार प्रक्रिया में परिवर्तन आने के कारण उसकी नीति विषयक धारणाओं में भी परिवर्तन आया है। आज हर चीज़ की उपयोगिता-अनुपयोगिता तार्किकता के आधार पर निश्चित की जाती है। भौतिक और वै-ानिक दृष्टि के कारण ज़िंदगी को सही अर्थों में भोगने का दृष्टिकोण इधर पनप रहा है। इस कारण कहीं भी अपने आप को दबाने की, कुढ़ने की, त्याग की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती है। वह अपनी इच्छा और समय के अनुसार अपना बर्ताव करना चाहता है। ऐसे समय उसकी सारी स्थापित नैतिक धारणाओं को ठेस पहुँचती है। आधुनिक मनुष्य की नैतिकता की अपनी व्याख्या है, जो स्थापित नैतिकता की व्याख्या से कहीं भी मेल नहीं खाती। इसी के अनुषंगिक विवाह की ओर

देखने का दृष्टिकोण बदल रहा है। विवाह स्त्री-पुरुषों को बन्धन लग रहा है, एक मीनिंगलेस रस्म लग रही है, यह रस्म उन्हें ज़िंदगी भर साथ रखने में असफल सिध्द हो रही है। विवाह के उद्देश्य में आज किसी का विश्वास नहीं रहा है। विवाहोपरान्त यदि पति-पत्नी में न बने , तो विवाह विच्छेद कोई अस्वाभाविक या अनहोनी बात नहीं सम-ी जाती। प्यार की परिणति विवाह में होना जितना स्वाभाविक है, उतना ही स्वाभाविक है अनबन की परिणति विवाह विच्छेद में हो। आज यह घटना बड़े ही तटस्थ रूप में घटित होती है। अब ˆÃÖ स्थापित धारणा को पूर्णत: तिलांजलि दी जा रही है कि बस एक बार विवाह कर लो और उसे सात जनम निभाओ - जैसे भी हो। उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में इन्हीं सब स्थितियों को शब्दबध्द कर विवाह के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण से परिचय कराने का सफल प्रयास किया है। पाश्चात्य देशों में रहने के कारण उनकी कहानियों पर पाश्चात्य प्रभाव देखा जा सकता है।

'प्रतिध्वनियाँ" की वसु को लगता है कि श्यामल से विवाह के बाद वह अपने व्यक्तित्व को खो रही है। अपने आप को पहचानने के लिए वह विवाह के बंधन से मुक्त होती है। श्यामल से संबंध विच्छेद के बाद उसने पहली बार जाना कि वह युवती है, उसकी उमंगें और कामनाएँ मरी हुई नहीं हैं। उसे लगता है कि श्यामल के साथ मादकता का अनुभव नहीं हो सकता। अन्य कई पुरुषों के साथ हुए अस्थायी संबन्ध ही उसे मादक लगते हैं। वह स्थाxˉÖÿÖ नैतिक धारणाओं से मुक्त होना चाहती है। वसु को न श्यामल से लगाव है न रुचिरा से। उसके विचार में विवाह एक मीनिंगलेस रस्म और रुचि का जन्म एक बायोलॉजीकल घटना के अलावा और कुछ ÖÆßÓ Æî |

आधुनिक समाज में विवाह, प्रेम और सेक्स की व्याख्याएँ नया अर्थ पा रही हैं। पहले यह आम धारणा थी कि जिस व्यक्ति से ब्याहे गये हैं, उसी से प्यार करते रहो उसी से ही भोग करो और निर्माण भी। विवाहपूर्व या उसके बाद किसी स्त्री या पुरुष का किसी दूसरे स्त्री या पुरुष के साथ प्रेम और सम्बंध सहे नहीं जा सकते थे। परन्तु स्वतंत्र विचार, वै-ानिक दृष्टिकोण, शिक्षा का प्रचार-ˉÖÃÖÖ¸ü, Ã¾ÖÖÔÖ¡Öता की भावना आदि के कारण विवाह, प्रेम और सेक्स की स्थापित धारणाओं में अन्तर आ रहा है। विवाह को बन्धन के रूप में स्वीकारने के लिए आधुनिक स्त्री-पुरुष तैयार नहीं है। विवाह और उसके साथ जुड़ी पवित्रता, प्रामाणिकता आदि की व्याख्याएँ बदल रही हैं। संबंध- विच्छेद की स्थिति में दोनों भावनात्मकता से उपर उठ रहे हैं। कहीं भी एक-दूसरे पर दोषारोपण नहीं किये जाते और न कहीं रोने-धोने और कन्विंस्ड

कराने कि कोशिशें। 'स्वीकृति' की जपा और सत्य पति-पत्नी हैं। जपा को सत्य के आग्रह के कारण नौकरी करनी पड़ती है। नौकरी के कारण दोनों अलग-अलग रहते हैं। यहाँ जपा की अेंट वाल से होती है। जपा स्वयं और वाल के स्वभाव में समानता पाती है। परिणामस्वरूप वह वाल से आकृष्ट होती है। सत्य को इस बात की भनक मिलती है, तब वह जपा को विवाह की पाँचवी वर्षगाँठ पर वहाँ ले जाता है , जहाँ आकर एक तो संम्बंध विच्छेद होता है या फिर संम्बंध दृढ़ होते हैं। यहाँ आकर सत्य और जपा में संम्बंध विच्छेद होता है। पर कहीं भी दोषारोपण या एक दूसरों को कन्विंस्ड कराने की कोशिश नहीं की जाती।

आज पैतृक संबंधों की विश्रृंखलता के साथ-ÃÖÖ£Ö ¯Ö×ŸÖ-पत्नी के संबंधों में भी पर्याप्त वैमनस्य आ गया है। दोनों में अहं भाव समान रूप से बढ़ जाने से एक दूसरे को सहन नहीं कर सकते। विवाह आज पति-पत्नी के लिए 'व्यक्ति स्वातंत्र्य का हनन' बनता नज़र आ रहा है। इसी कारण पति-पत्नी विवाहपूर्व स्वातंत्र्य के लिए छटपटाते नज़र आ रहे हैं। '•ÖÖ»Ö' कहानी में कौमुदी और राजेश्वर विवाह से पूर्व अपने-अपने एकान्त में संतुष्ट और सुखी थे। एक-दूसरे की ओर आकर्षित होकर दोनों विवाह कर लेते हैं। विवाह के पश्चात् उन्हें लगता है उनका स्वातंत्र्य उनसे छिना गया है। अत: दोनों अपने जीवन को पुराने ढर्रे पर लाने के लिए छटपटाते रहते हैं। वे विवाह को मकड़ी के जाले की सं-ÖÖ ¤ŸÖ Æ - "अपने पुराने ढर्रे पर जीवन फिर लौटा लेने को ¾ÖÖÆ Æ¸ ÃÖÖ´Öय छटपटाते रहते। उनको लगता कि वह मकड़ी के जाले में घिरकर रह गये हैं, जिसके तार दूरसे बहुत सुकुमार, बहुत आकर्षक लगते हैं, पर एक बार फँस जाने के बाद निष्कृति की कोई आशा नहीं रहŸÖß |"[75]

नारी जीवन का एक महत्वपूर्ण सोपान विवाह हुआ करता था। पुत्री के जन्म के साथ ही पिता उसके विवाह की चिंता में डूब जाता था। बिना विवाह की स्त्री यह विचार तो अकल्पनीय था। किन्तु आज विपरीत परिस्थितियाँ दिखाई पड़ रही हैं। स्त्री आज विवाह को अनिवार्य नहीं मानती। स्त्री-पुरुष संबंधों की अनिवार्यता पर तो वह बल देती है , परन्तु वैवाहिक प्रतिबध्दता की जड़ता को अनिवार्य घोषित नहीं करती। स्त्री-पुरुष के संबंध इसलिए अनिवार्य हैं ता कि स्त्री के मन में पुरुष के प्रति आकर्षण बना रहे , और मन में जन्म लेती हुई यौन भावनाएँ या अन्य कोमल भावनाएँ पुरुष के सानिध्य से शांत हों। किन्तु इसके लिए विवाह ही एकमात्र मार्ग नहीं है। 'ÃÖÖ²Ö-Ö' कहानी में इस स्थिति को भली-भाँति स्पष्ट किया गया है। कहानी में अविवाहित श्यामला और विवाहित तथा तीन बच्चों के पिता सर्जन के अनैतिक

संबंधों को चित्रित किया गया है। सर्जन अपनी पत्नी को छोड़कर श्यामला से विवाहबध्द होकर जीवन यापन करना चाहता है। किन्तु श्यामला सर्जन के विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार करती है। वह बिना किसी प्रतिबन्ध के पूर्णरूप से स्वतंत्र प्रेमी बनकर रहना चाहती है। उसके सर्जन स ÃÖ²Ö-Ö ¯Ö×ŸÖ-पत्नी की तरह ही हैं किन्तु इन संबंधों को विवाह में परिणत करना उसे स्वीकार नहीं। पाश्चात्य सभ्यता में रंगी हुई श्यामला अपने प्रेमी सर्जन से अति आधुनिका की तरह कहती है - "क्या हम ऐसे ही नहीं रह सकते जैसे प्रेमी, मित्र, बन्धु।"[76]

'कितना बड़ा -ÖŠ' कहानी विवाह संस्था पर एक प्रश्न चिन्ह - सी लगाती नजर आती है। लेखिका ने स्पष्ट किया है कि आज कितने ही लोग '¯Ö´Ö' †Ö¸ '×¾Ö¾ÖÖÆ' का -Ö¸ÖŸÖ»Ö ¯Ö¸ 'कितना बड़ा -ÖŠ' ही तो जी और भोग रहे हैं, प्रतिदिन। वे जीवन - यात्रा में प्रेम तो एक से करते हैं, पर विवाह किसी दूसरे व्यक्ति के संग करने के लिए, किसी-न-किसी कारण से वि¾Ö¿Ö ÆÖ जाया करते हैं। जिससे दाम्पत्य जीवन में बिखराव या ठण्डापन आ जाता है और रिश्ता मात्र एक सम-ा़ौता बनकर रह जाता है। कहानी की नायिका किरन विवाह से पूर्व मैक्स नामक एक युवक से अत्यंत प्रेम करती थी, किंतु उसका विवाह अनिच्छापूर्वक विश्वेश्वर के साथ संपन्न हो गया था। ऐसे में उसके लिए विवाह से तात्पर्य है - किसी से बाँध देना। जबकि वह मन से अब भी अपने प्रेमी मैक्स को ही चाहती है और उससे यौनसुख प्राप्त करती है। मैक्स के विवाह के पश्चात उसकी ओर से वंचित होने पर किरन अपने पति के प्रति पतिव्रता होने की आत्मवंचना को ढोती है। उसमें किसी भी प्रकार का अपराध-²गोध नहीं है।

लेखिका ने स्पष्ट किया है कि पश्चिमीकरण की दिनोंदिन बढ़ती हुई लहर के ही प्रभाव स्वरूप भारत जैसे देश में भी इसी दोरंगीपन या दुमुँहेपन वाली 'प्रेम भावना' का दूषित विष अनुदिन फैलता ही चला जा रहा है। मानो हंसस्वरुप भारतीय जन उन विदेशी बगुलों की नक्ल करने की धुन और होड़ में अपने ही नीर-क्षीर-विवेक को भूलते चले जा रहे हैं। इससे अधिक कारुणिक त्रासदी और क्या होगी ?

स्पष्ट है कि विवाह से संबंधित परम्परागत धारणाओं में अब परिवर्तन पूर्णत: दृश्यमान है। आज की युवती यह प्रश्न कर रही है कि "क्या बाजे बजने से ही, अग्नि के चारों तरफ घूमने ÃÖ ÆÛ ¿ÖÖ¤Û ÆÖŸÖÛ Æ?"[77] अत: उसके अनुसार किसी के प्रति तन-मन से समर्पित हो जाना ही विवाह है। क्योंकि अग्नि के चारों तरफ घूमने के बावजूद समर्पण के अभाव में वह विवाह नहीं कहा जा सकता। इसीलिए विवाह न होने पर भी प्रेमी की मृत्यु हो जाने पर या उसके द्वारा त्याग

दिए जाने पर 'बिखरे तिनके नष्ट नीड़' की मणि, 'अकेली राह' की जया तथा 'कोई नहीं' की नमिता एक विधवा का जीवन व्यतीत करते हैं। अत: उषा प्रियंवदा आधुनिक विचारों को वाणी देने वाली लेखिका होने से उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से परिवर्तित समाज की परिवर्तित सोच को शब्दबध्द करने का प्रयास किया है। विवाह संबंधी परिवर्तित दृष्टिकोण को उन्होंने यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

उषा प्रियंवदा की समस्त कहानियों के अवलोकन के पश्चात् हम केवल इतना कह सकते हैं कि उनका प्रयास जीवन को सुखदतम एवं सुन्दर से सुन्दरतम बनाने का रहा है। परन्तु यथार्थ इतना तिक्त है कि वह अपना विष घोल जीवन को पिलाता रहता है। उषा जी ने इसी तिक्त यथार्थ को अपनी कहानियों द्वारा अभिव्यक्त किया है। वास्तव में वे नारी को जागरुक बनाना चाहती हैं, जिसके लिए उन्होंने नारी को नारी की वास्तविक स्थिति में उपस्थित कर, यथार्थ का संस्पर्श कराकर, वैचारिकता एवं बौध्दिकता प्रदान कर, व्यर्थ की भावुकता एवं आदर्शवादिता से बचा लिया है। इसे बचाने में उन्होंने विदेशीपन का भी सहारा लिया है। इनकी अभिव्यक्ति संयमित एवं मार्मिक है तथा अनुभूति प्रामाणिक एवं यथार्थपरक है, जो अपने आप में सराहनीय है। रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास साहसपूर्ण है। लगभग सभी कहानियों में एक ऐसा विवेकपूर्ण ¾Öतावारण बना रहता है, जहाँ उच्छृंखलता या उदंद्डता, अतिरिक्त आक्रामकता या अतिरिक्त साहस का बोध नहीं होता। अत: इनकी बौध्दिक मानसिकता या संयत आत्म-चेतना दृष्टि को विश्रृंखलित नहीं होने देती। यथार्थ इतना स्थिर होकर उपस्थित होता है जिससे चिंतन प्रक्रिया पुष्ट होती है। हम जहाँ खड़े होते हैं, उसी स्थान पर रुक कर चार दिशाओं का अवलोकन करते हैं और इसी अवलोकन में कोई कल्पनात्मक प्रासाद नहीं खड़ा करते ; क्योंकि कल्पना का प्रासाद बनाना स्वत्व की ओर से आँख मूँदना है और जागृत अवस्था में स्वत्व की ओर से आँख मूँदना एक मूढ़ प्रकृति है जो आज के लेखक, पाठक तथा भोक्ता को स्वीकार्य नहीं है। इनकी कहानियों में व्यक्ति यथार्थ से टकराता है, रोता है, सिसकता है; परन्तु संयत होने का साहस, अपनी ही अन्तर प्रेरणाओं के बल पर जुटा लेता है तथा परिस्थितियों के साथ ÃÖ´Ö-गौता कर लेता है। निराशापूर्ण स्थितियों में भी आज का मनुष्य अपने को साहसी और अपराजित देखना चाहता है- हताश और दीन नहीं। उषा प्रियंवदा में इस प्रवृत्ति का चित्रण विदेशी प्रभावस्वरूप हुआ Æ |

समग्रत: उषा प्रियंवदा की कहानियों में नैतिक मूल्यों के ह्रास के कारण पारिवारिक रिश्तों में आये टूटन एवं उसके दर्द को अभिव्यक्ति मिली है। विशेषकर पति-पत्नी संबंधों में बढ़

रही दूरियों को भी इन्होंने लक्ष्य किया है। आर्थिक समस्याएँ भी इसके मूल में हैं। धीरे-¬ÖßÖ¸ê आज की नारी इस पुरुषप्रधान भारतीय समाज में आर्थिक स्वावलम्बन की ओर उन्मुख हो रही है और अपनी स्वतंत्रता का उद्घोष कर रही है। किंतु आधुनिका होने के बावजूद अपने प्राचीन मूल्यों को तिरोहित कर पाने में वह स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रही है। अत: उसके मन में आधुनिक एवं प्राचीन मूल्यों की कशमकश जारी है। साथ ही अजनबीपन, अकेलापन, निरर्थकता बोध, घुटन, निराशा ये सब आज के जीवन की विडम्बनाएँ बनती चली जा रही हैं। औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण समाज में अमानवीयता आ गयी है। इसी अमानवीयता के कारण प्रेम जैसे पवित्र क्षेत्र में भी मोहभंग के बादल मँडरा रहे हैं। प्रेम एवं यौन दृष्टिकोण में आज परिवर्तन आ गया है। आज बे-Ö-ाक निर्बाध यौन जीवन को स्वीकृति दी जा रही है और किसी के भी मन में अपराध-बोध नहीं है। व्यक्ति की परिधि 'ÃÖ¾Ö' ÃÖ सीमित होकर 'Ã¾Ö' तक केंद्रित हो गई है। सर्वत्र वैयक्तिकता व्याप्त हो गई है और व्यक्ति अस्मिता की खोज में भटक रहा है। इसके कारण आधुनिक मनुष्य की संपूर्ण दृष्टि और विचार प्रक्रिया में परिवर्तन आया है। फल स्वरूप उसकी नीति विषयक धारणाओं में भी परिवर्तन आया है। अत: विवाह की ओर देखने का दृष्टिकोण भी बदल रहा है। इन सारी आधुनिक स्थितियों का बोध हमें उषा प्रियंवदा की कहानियों में होता है।

स्पष्ट है कि उषा प्रियंवदा ने देशी-विदेशी परिवेश में मानवीय रिश्तों, विशेषतया स्त्री - पुरुष के संबधों को हिंदी कहानी में एक नये रूप में प्रस्तुत किया है। कितने ही वर्जित मानवीय सत्यों को वाणी दी है। वे बड़े सहज और स्वाभाविक रूप में अपने वैयक्तिक जीवनानुभवों को एक प्रामाणिक सच्चाई के साथ सामने रखती हुई गहरी करुणा से मानवीय स्थितियों को रेखांकित करती चली जाती हैं।

ÃÖ¤ü³Ö ÃÖæ“Öß

1. डॉ.शिवकुमार शर्मा : हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ.६५३
2. सुरेन्द्र चौधरी : नई कहानी प्रकृति और पाठ, ¯Ö.31,32
3. >Ö. ¯ÖÂ¯Ö¯ÖÖ»Ö ØÃÖÆ : समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ, पृ.९५
4. डॉ.गोरधनसिंह शेखावत : नई कहानी : उपलब्धि और सीमाएँ, पृ.३११
5. उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूü»Ö, ¯Ö.104

6. ¾ÖÆß, ¯Ö.104

7. ¾ÖÆß, ¯Ö.104

8. ¾ÖÆß, ¯Ö.105,106

९. उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.40

10. ¾ÖÆß, ¯Ö.103

11. ¾ÖÆß, ¯Ö.100

१२. उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.११

13. ¾ÖÆà, ¯Ö.11

14. ¾ÖÆà, ¯Ö.38

१५. उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.82

16. ¾ÖÆà, ¯Ö.87

17. ¾ÖÆß, ¯Ö.27

१८. उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.९५

१९. उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.59

२०. उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.१००,१०१

२१. कमलेश्वर (सं.) : सारिका, अक्तूबर-१९७४ में प्रकाशित समांतर संसार, पृ.९

२२. उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.१११

२३. उषा प्रियंवदा : फिर बसंत आया , पृ.१४२

२४. उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.४०

२५. उषा प्रियंवदा : फिर बसंत आया, पृ.१०

२६. उषा प्रियंवदा :ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.१०

२७. डॉ.मंगल मेहता : स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी, पृ.११६

28. ^ÂÖÖ ×¯्रयंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.५०

२९. उषा प्रियंवदा : शून्य तथा अन्य रचनाएँ, पृ.३०,३१

30. ¾ÖÆß, ¯Ö.34

३१. उषा प्रियंवदा : फिर बसंत आया, पृ.४३

32. ¾ÖÆß, ¯Ö.48

३३. निर्मल वर्मा : दूसरी दुनिया, पृ.१६

३४. इन्द्रनाथ मदान : आधुनिकता और हिंदी साहित्य, पृ.७४

३५. डॉ.विद्याशंकर राय : हिंदी उपन्यास और अजनबीपन, पृ.३६

३६. उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.९५

37. ¾ÖÆß, ¯Ö.101

38. ¾ÖÆß, ¯Ö.95

३९. उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –Öš, ¯Ö.76

40. ¾ÖÆß, ¯Ö.77

४१. उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.६३

42. ¾ÖÆß, ¯Ö.64

४३. उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –Öš, ¯Ö.15

४४. नई कहानियाँ : मई १९६३

45. ¾ÖÆß, ¯Ö.25

४६. उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.९८

47. ¾ÖÆß, ¯Ö.103

48. ¾ÖÆß, ¯Ö.103

४९. डॉ.नामवर सिंह : कहानी : नई कहानी, पृ.१४२,१४३

५०. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुध्दोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.१९१

५१. उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.२०

५२. उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.३०

53. ¾ÖÆß, ¯Ö.74

५४. उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –Öš, ¯Ö.13

55. ¾ÖÆß, ¯Ö.13

५६. उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.१०८

57. ¾ÖÆß, ¯Ö.84

५८. उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.५२

५९. उषा प्रियंवदा : फिर बसंत आया, पृ.१२८

60. ¾ÖÆß, ¯Ö.129

६१. उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.44

62. ›Ö.¯ÖÂ¯Ö¯ÖÖ»Ö ØÃÖÆ : समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ, पृ.९६

६३. उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.६२,६३

64. ¾ÖÆß, ¯Ö.86

६५. उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.34

६६. उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.७०

६७. डॉ.श्यामसुंदर मिश्र : अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर साहित्य, पृ.१६

६८. डॉ.प्रेमपाल : नयी कहानी में वैयक्तिक चेतना, पृ.०२

६९. उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.९३

७०. उषा प्रियंवदा : कितना बड़Ö –ÖŠ, ¯Ö.34

71. ¾ÖÆß, ¯Ö.35

72. ¾ÖÆß, ¯Ö.127,128

७३. उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.५६,५७

74. ¾ÖÆß, ¯Ö.64

75. ¾ÖÆß, ¯Ö.38

७६. उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.13

७७. उषा प्रियंवदा : फिर बसंत आया, पृ.१२९

चतुर्थ अध्याय

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में आधुनिकता बोध

चतुर्थ अध्याय

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में आधुनिकता बोध

आज की वै-ाानिकता, यांत्रिकता और ठोस बौद्धिकता के कारण मानसिक स्तर से लेकर ठोस भौतिक स्तरों तक, सभी प्रकार के मानों, मूल्यों में इतनी तीव्र गति से अंतर आया और अनवरत आ रहा है कि आज हम इसके लिए कोई भविष्यवाणी कर पाने की स्थिति में नहीं हैं, कि परिवर्तन का यह चक्र कहाँ जाकर रुकेगा। एक ओर -ाान-x¾Ö-ाान ने हमें अंधविश्वासों, परंपरागत रूढ़ियों, अन्ध श्रद्धाओं की परिधियों से निकालकर जीवन का यथार्थ-बोध देकर उपकृत किया है, तो दूसरी ओर इन्हीं सब कारणों से आज सहज हृदय-¤श भी कहीं बहुत पीछे छूट गया है, वह अतीत की एक विस्मृत-प्राय कहानी-सी बनता जा रहा है। स्थूल भौतिकता, बौद्धिकता ने आज व्यक्ति के अहं को विस्फोट की स्थिति तक विकसित कर दिया है। उस पर ¾Öयक्तिक सुखों की प्राप्ति भी शैतान की आँत-सरीखी प्रलम्ब एष्णाएँ, महत्वाकांक्षाएँ उनकी आपूर्ति की एक अबू-ा विवशता, औद्योगीकरण की प्रवृत्ति के कारण बाह्य मूल्यों में बदलाव, उसके परिणामस्वरूप जीवन जीने के साधनों का अभाव या महँगापन आदि दबावों ने व्यक्ति की चेतना को इस सीमा तक आहत कर दिया है कि वह अपने-आप से ही कटकर एक असाधारणता, अस्वाभाविकता के आल-वालों से निरंतर घिरता जा रहा है। यह घिराव इतना †²Ö-ा, सूक्ष्म और ठोस है कि उसने व्यक्ति को घर-परिवार और समाज से बड़ी तीव्र गति से काटना आरंभ कर दिया है। ठोस सत्य तो यह है कि मानों, मूल्यों के परिवर्तन ने जब व्यक्ति को अपने ही व्यक्तित्व से, अपनी ही सहज मानवीय चेतना से काटकर अलग-अलग करके रख दिया है, तो फिर वह अन्य किसी के साथ जुड़कर रह भी कैसे सकता है? एक विचित्र-ÃÖß, अनिश्चित एवं नितान्त अयाचित स्थितियों से अवांछित रूप से जू-ाते जाना, जू-ाकर जीते जाना ही आज के मानव के व्यक्ति-स्तर से लेकर सामाजिक स्तर तक एक अमिट लगने वाली नियति बन चुकी है।

इन अवश्यम्भावी स्थितियों का परम्परागत और सहज मानवीय संबंधों, मानों और मूल्यों पर भी सीधा प्रभाव पड़ रहा है, इसमें संदेह की तनिक भी गुंजाइश नहीं। इस समूचे परिवर्तन की जड़ है-आधुनिकता। इसी आधुनिकता के चलते मानव ने स्थापित मूल्यों के प्रति विद्रोह कर दिया है। कमलेश्वर के अनुसार-"मेरे हिसाब से आधुनिकता की सबसे बड़ी

शुरूआत यहाँ से होती है, जहाँ हम सबसे पहले स्थापित मान्यताओं और धारणाओं को क्वॅश्चन करना शुरू करते हैं” |[1]

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में आधुनिकता के प्रश्न को सर्जनात्मक स्तर पर हल किया गया है। यहाँ नये परिदृश्य और जीवन की चुनौतियों को गहरे स्तर पर सम-ाा गया है। आधुनिकता का अनिवार्य संबंध आधुनिक काल की आधुनिक चेतना से है, जिसके अंतर्गत जीवन के परिवर्तन और विकास को उसकी समग्र ऐतिहासिक प्रक्रिया में सम-ाने के लिए संघर्ष किया जाता है। इस दृष्टि से आधुनिकता अतीत से विच्छिन्न अथवा वर्तमान से आक्रान्त या भविष्य से सम्मोहित आर्तवादी दृष्टि नहीं है, अपितु इसके अंतर्गत जीवन को समग्रता में देखने का प्रयत्न सन्निहित है, और उन मूल्यों के लिए संघर्ष जारी है जो मानव समाज के परिवर्तन और विकास को शक्ति प्रदान करते हैं।

आधुनिक रचना का प्रस्थान बिन्दु रचना के उपजीव्य के रूप में कल्पित और अयथार्थ के स्थान पर यथार्थ का स्वीकार है। इस दृष्टि से आधुनिक रचनाशीलता भोगे जाते हुए जीवन के भीतर उतरकर उसकी जटिल द्वन्द्वात्मक आन्तरिकता को आत्मसात करती है। साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास में अधिकाधिक यथार्थ के प्रति रु-ाान पाया गया। इस यथार्थ का प्रवाह नवीनता से आधुनिकता की ओर रहा। साठ के बाद आधुनिकता का बोध और भी अधिक गहराने लगा। इस सशक्त मानसिकता ने उपन्यास को तोड़कर अधिक से अधिक अन्वेषक तथा सशक्त बना दिया। इस आधुनिकता के बल पर ही उपन्यास सही मायने में इस मायावी मस्तिष्क की तहें खोलने में समर्थ हो पाया। इन उपन्यासों में आधुनिकता जीवन - मरण संबंधी मत-मतांतरों की चुनौती, महानगरीय अकेलापन, अत्यधिक निकटता में अजनबीपन, विसंगति, संत्रास, यांत्रिक तटस्थता आदि के द्वारा आयी है। इस आधुनिकता में सेक्स को भी बहुत अधिक स्थान मिला है। कुल मिलाकर आधुनिक युग के मूल्य पक्ष और नियति पक्ष दोनों ने साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास को बहुत अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय बना दिया है। प्रेमचन्द और गोर्की की धारणा को कि “उपन्यास जीवन छवि है।” इस युग के उपन्यास ने न केवल पुष्ट किया है अपितु उसे सम्यक विकास भी दिया है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य प्रवृत्तिगत परिवर्तनों के अनेकों पड़ावों को पार कर आज एक महत्वपूर्ण, उपलब्धि के सोपान पर आ पहुँचा है। हिन्दी उपन्यासों में महिला लेखन एक महत्वपूर्ण पहचान बनकर उभरा है। स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी कथा साहित्य में नारी की

लेखकीय संवेदना अत्यधिक मुखर होकर प्रकट हुई। हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में महिला लेखन अपनी भिन्न पहचान बनाने में बहुत अधिक सफल रहा। साठ के दशक में हिन्दी उपन्यासों में अनेक महिला लेखिकाओं ने अपने साहसपूर्ण, मौलिक चिन्तन के साथ जीवन की विषमताओं को अपनी दृष्टि से विश्लेषित किया और विशेषकर भारतीय नारी जीवन के लगभग सभी पहलुओं को बड़ी बेबाकी के साथ उकेरा। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, सूर्यबाला, मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, मालती जोशी, निरूपमा सेवती, राजी सेठ, दीप्ति खंडेलवाल, शशिप्रभा शास्त्री, सुनीता जैन आदि अनेक लेखिकाएँ उत्तर शती के हिन्दी कथा साहित्य में अनेक नवीन साहित्यिक अवधारणाओं की स्थापना में अपना अमूल्य योगदान ¤ŸÖß Æî |

महिला उपन्यासकारों में उषा प्रियंवदा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी साहित्यिक अभिव्यक्ति, सामाजिक रूढ़ियों, कुप्रथाओं एवं विसंगतियों के प्रति विद्रोहात्मक तो निश्चित रूप में है ही, साथ ही युगीन बोध के अनुरूप सापेक्ष परिलक्षित होती है। व्यक्ति के सूक्ष्म मन को टटोलना, उसे खोजना, मन की व्यथा की गाथा चित्रित करना उनकी एक प्रमुख विशेषता है। जीवन की नवीन परिस्थितियों के साथ सम-ौता न कर पाने के कारण आज स्त्री और पुरुष दोनों किस प्रकार असंबद्धता, अजनबीपन, तलखी एवं जीवन की विसंगतियों का अनुभव कर रहे हैं और तनाव -ेल रहे हैं इसका यथार्थ चित्रण उषा जी ने किया है। आज के जटिल सामाजिक परिवेश में संघर्ष में उल-ी नारी की विभिन्न मनःस्थितियों का यथार्थ अंकन उन्होंने किया है। मूलतः उन्होंने पारम्परिक और आधुनिक जीवन मूल्यों के बीच लटकती नारी की मानसिक छटपटाहट, वेदना और पीड़ा को गहरी अनुभूति के साथ अभिव्यक्त किया है। साथ ही पारिवारिक मूल्य, बदलते स्त्री-पुरुष के संदर्भ में नारी की विविध समस्याओं को विस्तृत °þ¯ü ×¤या है। उन्होंने व्यक्ति, परिवार, स्त्री-पुरूष संबंध आदि का चित्रण भी सहज और स्वाभाविकता से किया है। समग्रतः आज के मानव जीवन की समग्रता एवम् उसके परिवेश को उपन्यास के विराट केनवास पर कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास उषा प्रियंवदा ने अपने पाँचो उपन्यासों के माध्यम से किया है। डॉ.रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं - "आपके (उषा प्रियंवदा) उपन्यासों में नयी कविता दौर की आधुनिकता के सारे तत्व-अकेलापन, संत्रास, ऊब, घुटन, अजनबीपन - विद्यमान हैं।"[2] उषा प्रियंवदा की औपन्यासिक सरंचना में आधुनिकता बोध के प्रतिफलन को हम निम्न शीर्षकों के अंतर्गत विवेचित करेंगे।

४.१ नारी अस्तित्व का मौलिक अन्वेषण :

स्वतंत्रता के बाद भारतीय नारी नव-जागरण तथा आधुनिक शिक्षा के फलस्वरूप अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग हुई। वह अपने जीवन के प्रति गहनता से सोचने लगी है, †पने निर्णय स्वयं लेने लगी है, आर्थिक प्रश्नों के कारण परावलंबन आता है इसलिए वह स्वयं अर्थोपार्जन करके स्वावलंबी तथा स्वाभिमानी होने लगी है। अब वह प्रेम की नैसर्गिक धारा को अपनी इच्छा के अनुसार प्रवाहित करने से नहीं ि–Ö–ाकती और उससे उत्पन्न घुटन, दर्द, पीड़ा तथा तनावों के यथार्थ का सामना करने के लिए भी वह प्रस्तुत दिखाई देती है। वह पति से गुलामी नहीं बल्कि बराबरी का, सहधर्मिणी का रिश्ता चाहती है। परिवार तथा उसकी सभ्यता की बागडोर अपने हाथों में लेकर भी वह विश्व के उन्मुक्त प्रांगण में विचरण करने की आकांक्षा लिए हुए है। वह अपने स्वतंत्र विचारों को महत्व देकर, अपन 'ईगो' को सुरक्षित रखकर अपने व्यक्तित्व को नयी दिशा देने में प्रयत्नशील है। युग-युग से उपेक्षित नारी के मौलिक अस्तित्व का अन्वेषण कर उसके व्यक्तित्व, उसके स्वतंत्र विचारों और उसकी पीड़ा कुंठाओं को अपने उपन्यासों में अत्यधिक महत्व देकर उद्घाटित करने का उल्लेखनीय कार्य महिला उपन्यासकारों ने किया है।

इधर काफ़ी बहसें चली आ रही हैं कि लेखन में पुरुष-दृष्टि एवं नारी-दृष्टि का भेद नहीं होना चाहिए या होना चाहिए। प्रभा खेतान जैसी लेखिका जहाँ इसके होने को अनिवार्य मानती हैं, वहीं मृदुला गर्ग जैसी लेखिका एवं निर्मला जैन जैसी समीक्षक इस फ़र्क को उचित नहीं सम-ातीं। मृदुला जी का कहना है कि "नारीवादी लेखन का संबंध लिंग से नहीं, भावबोध, जीवन-दृष्टि और चेतना से है।" लेकिन विचार्य यह है कि उस भावबोध जीवनदृष्टि व चेतना का निर्माण जिन जीवनानुभवों से होता है, उसमें लिंग-वर्ण व वर्ग आदि का बहुत कारगर योगदान होता है। वरना क्या कारण है कि छायावाद में नारी दुखों की जिस निजता की पहचान महादेवी जी कर सकीं, उसे 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' की आदर्शवादिता एवं 'संग में पावन गंगा स्नान' की पवित्रता में भी प्रसादजी एवं पंतजी तो नहीं ही कर सके, '×¾Ö-Ö¾ÖÖ' ¾Ö 'ŸÖÖ>ŸÖß ¯ÖŸ£Ö¸ü' जैसी कविताएँ लिखने वाले निराला जी भी वर्गीय दुखों की परिधि पर ही रह गये। अंतरंगता में तो महादेवीजी ही पहुँचीं। उन्होंने लिखा भी-"पुरुष द्वारा नारी का चरित्र अधिक

आदर्श बन सकता है, परन्तु अधिक सत्य नहीं। विकृति के अधिक निकट पहुँच सकता है, परंतु यथार्थ के अधिक समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है, परंतु नारी के लिए अनुभव। अत: अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी, वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरान्त शायद ही दे सके।"[3]

यहाँ नारी-¥ÛÂ™ <¾Ö ¯Ö1⁄ÂÖ-दृष्टि के भेद में न उल-तकर हम केवल इतना कह सकते हैं कि नारी-दृष्टि ही यथार्थ के उस दंश को जानती है, जिससे पुरुष अनजान हैं। इसीलिए पुरुष की तुलना में महिला लेखन अधिक जीवंत है। इन महिला लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा का नाम अग्रगण्य है। एक जागरूक महिला लेखिका होने के कारण सामाजिक तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में नारी के बदलते-बिगड़ते-संवरते अनेक रूपों से वे पूर्णतया अभि-Ö Æ। ˆन्होंने नारी के अस्तित्व को सम-ाने और सम-ााने का जो प्रयत्न किया है वह उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने उपन्यासों में उस आधुनिक नारी का चित्रण किया है जो अपने पैरों पर खड़ी होती जा रही है। इतना Æß नहीं नारी मध्यवर्गीय परिवारों के भार को स्वयं ढो भी रही है। अपने नारी पात्रों की सृष्टि से उषा जी ने इन नारी जीवन के पहलुओं को अच्छी तरह उजागर किया है। परिवारों के बीच अपनी ज़िम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए अपने स्वतंत्र अस्तित्व की खोज में टूटती और बिखरती हुई नारी का चित्रण अत्यंत सहज और स्वाभाविक है।

'रुकोगी नहीं राधिका' की उच्च मध्यवर्गीय नायिका अपने अस्तित्व एवं स्वतंत्रता की खोज में भटकती रहती है। माता की मृत्यु के उपरान्त पिताजी उसे बड़े लाड़-प्यार से बढ़ाते हैं। लेकिन जब राधिका विवाहयोग्य हो जाती है तब पिताजी विद्या नामक युवती के साथ पुनर्विवाह करते हैं। राधिका विमाता के आगमन से दु:खी होती है। पिता के पुनर्विवाह पर वह अपने अस्तित्व को घर में निरर्थक सम-ाती है। पिता का विमाता की ओर आकर्षित होना उसे बुरी ŸÖ¸Æ -ाक-ÖÖ¸ ¤ŸÖÖ Æ। अब तक पिता पर अकेली राधिका का एकाधिकार था, पर अब विमाता के आगमन से यह एकाधिकार समाप्त हो जाएगा, इस भय से राधिका पलायन करके अपने वैयक्तिक अस्तित्व का बोध कराती है। पिताजी उसे अपने पास रहने के लिए आग्रह करते हैं, तब अपने स्वतंत्र अस्तित्व का बोध कराती हुई राधिका कहती है, "•ÖÖ †Ö¯Ö "ÖÖÆŸÖ Æ ¾ÖÆß हमेशा क्यों हो? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं है? मैं आपकी बेटी हूँ, यह ठीक है, ¯Ö¸ †²Ö ´Ö बड़ी हो चुकी हूँ और मैं जो चाहूँगी वही करूँगी।"[4]

राधिका डेनियल पीटरसन के साथ विदेश जाती है, परंतु उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने में असमर्थ रहती है। स्वदेश लौटने पर एअरपोर्ट पर किसी आत्मीय संबंधी जन को न देखकर उसे अपने अस्तित्व की निरर्थकता का बोध होता है। वह बार-बार अनुभव करती है कि "वह तीन वर्ष बाद घर लौट आयी है, और उससे मिलने कोई भी नहीं आया है - घर यदि घर है |… पापा का घर? बड़े भाई का घर? दोनों में से किसी ने यह ज़रूरत अनुभव न की कि राधिका से कोई मिलकर उसे साथ लाये।"[5] पापा से मिलने पर वह आशा करती है कि वह उसे रोकेंगे परंतु उनके यह कहने पर कि "जैसा तुम ठीक सम-ÖÖ | †²Ö ŸÖÖ ŸÖ´Ö ÃÖ´Ö-ादार हो गई हो।"[6] राधिका अलग रहने का प्रबंध कर अपने अस्तित्व को बचाये रखती है। वह महसूस करती है कि "अब मैं स्वतंत्र हूँ, परिपक्व भी; और गढ़ सकती हूँ अपना जीवन, अपना भविष्य।"[7]

राधिका का ऐसे व्यक्ति से विवाह करने का निश्चय, जो उसे उसके अवगुणों तथा अतीत सहित स्वीकार कर ले, उसकी अस्तित्वबोध की तीव्र आकांक्षा को व्यक्त करता है। अक्षय उसे चाहकर भी उसके अतीत को नहीं भूल पाता, कि न जाने वह कितने पुरुषों के साथ रही हो। अक्षय द्वारा प्रस्तुत किए गए साथ ले जाने के प्रस्ताव को राधिका शीघ्रता में किया गया निश्चय ÃÖ´Ö-ाकर अस्वीकार करती है। मनीश उसे रिवर्स कल्वरल शॉक से ग्रस्त मानता है जो विदेश से वापस आने वाले व्यक्ति को लगता है। वह अनुभव करता है कि राधिका मित्रों में प्रेमी नहीं पिता को ढूंढ़ती है जो संरक्षण प्रदान करता है, देखभाल करता है, सहयोग देता है। वह कहतÖ Æ - "तुम जीवन में लंगर चाहती हो, उसे पूरी तरह स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं हो।"[8] ¾ÖÆ राधिका को उसके मूड्स, समस्याओं और विगत सहित स्वीकार करने का निर्णय करता है। राधिका विमाता की मृत्यु के पश्चात् पिता के यह आकांक्षा व्यक्त करने पर भी कि वह वहाँ पहले की भाँति रहे, इन्कार कर अपने अस्तित्व का तीव्र बोध कराती है - "नहीं पापा, मैं जाना चाहती हूँ। मनीश ... मेरे एक बन्धु ..."[9] वह बात बीच में छोड़कर रुक जाती है। इस प्रकार आदि से अन्त तक हर परिस्थिति में वह अपने अस्तित्व के लिए सचेत रही है।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में मध्यवर्गीय परिवार, उनकी बढ़ती आर्थिक कठिनाइयाँ तथा पुरुष के साथ-साथ उन्हें -ोलती हुई नारी का चित्र-यथार्थ की ज़मीन पर प्रस्तुत किया गया है। नारी जो कल तक घर की चारदीवारी तक ही सीमित थी या जो केवल पुरुष (पिता, पुत्र या पति) के लिए मात्र बो-Ö ÃÖ´Ö-ाी जाती थी, आज अपने पैरों पर खड़ी होती जा रही है। यही नहीं, कई मध्यवर्गीय परिवारों की युवतियाँ संपूर्ण परिवार के भार को स्वयं ढो भी रही हैं।

सुषमा एक ऐसी ही शिक्षित व आत्मनिर्भर नारी है। निम्न मध्यवर्गीय परिवेशों की आर्थिक जकड़न में छोटी-सी स्वतंत्रता की आकांक्षा तथा अपने पृथक अस्तित्व निर्माण हेतु वह छटपटाती रहती है। उसके ऊपर अपने छोटे भाई-बहन, रिटायर पिता व माता की खाने-पीने व अन्य सारी ज़िम्मेदारियाँ हैं। अपने परिवेश और मजबूरियों के कारण इन सभी ज़िम्मेदारियों को निभाने के लिए उसे अपनी आकांक्षाओं का गला घोटना पड़ता है। अपने दायित्व निर्वाह के लिए वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व को भी विस्मृत कर जाती है।

सुषमा के शान्त जीवन में नील के प्रवेश से तूफ़ान आ जाता है। उसके भीतर की प्यासी नारी नील के स्पर्श से जाग उठती है। उसके भीतर नील को पा लेने की चाह उभरती है। पर समाज उसके सहज नारी स्वभाव के आड़े आ जाता है। सामाजिकता के हावी होने पर उसे लगता है कि उसे तो अपने दायित्व, पद की गरिमा और समाज के कारागार में रहकर सीखचों से आती धूप और मद्धिम प्रकाश के सहारे ही अपने जीवन की साँसें पूरी करनी होंगी। परिवार के बो–ा से आक्रांत सुषमा के लिए सभी का एक ही उपदेश है कि तुम एक सम–दार लड़की हो, भावुकता तुम्हें शोभा नहीं देती। उत्तरदायित्व की विवशता, पद की गरिमा, भली और ÃÖ´Ö–ादार लड़की बनी रहने की विवशता, सुषमा से उसके नारी होने का सहज अधिकार छीन लेती है, उसे बंदिनी बना देती है। उसकी नियति अपने कॉलेज के इन पचपन खम्भों और लाल ¤ß¾ÖÖ¸ों के बीच घुट-घुट कर मरना ही है। और इस तरह वह समाज में नारी के अस्तित्व की नगण्य स्थिति से क्षुब्ध होकर सोचती है कि समाज असहाय, निरीह नारी को स्वतंत्रतापूर्वक जीने नहीं देता और उसके अस्तित्व को कुचलता रहता है।

'शेष यात्रा' की अनु प्रणव द्वारा संबंध तोड़ दिए जाने पर एक बेबुनियाद इमारत की तरह ढह जाती है। तलाक़ से पूर्व उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है- "यह बात मु–Ö Æü¸ü ¾ÖŒŸÖ कचोटती थी कि मैं व्यक्ति की हैसियत से कुछ भी नहीं रही; जो कुछ थी, वह सब श्रीमती कुमार की हैसियत से।"[10] अत: ऐसी स्थिति में अनु का टूटना तो स्वाभाविक था। उसकी सहेली दिव्या प्रगतिशील विचारों की है। वह अन्याय सहन नहीं कर सकती। वह भारतीय सुसंस्कृत पत्नी बनना चाहती है परंतु अगर पति उसके अस्तित्व को ठेस पहुंचाता है, तब विद्रोही बनकर विरोध करने लगती है। वह अनु से कहती है कि उसका पति जयंत यदि उसके साथ ऐसा करता ŸÖÖ- "मैं कहूँगी, 'जाओ जयंत, इफ आम नॉट गुड एनफ फॉर यू, यू आर नॉट गुड एनफ फॅार मी

|' और फिर मैं जयंत को दिखा दूँगी कि मैं भी कुछ हूँ, कि मैं उन पर निर्भर नहीं हूँ। मैं अपनी ज़िंदगी से हर मायने में जयंत को निकाल फेंकूँगी।"[11]

दिव्या अनु की प्रेरणा बनकर अन्याय का सामना करने की शक्ति उसमें निर्माण कर देती है। वह अनु को नये तरह से ज़िंदगी गढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती है। अनु के विचारों का प्रबोधन कर उसके अस्तित्व रक्षा का बोध करती है। दिव्या के इन विचारों से प्रभावित होकर अनु पति से तलाक़ लेने के पश्चात् डॉक्टर बन जाती है। पुरुष के आश्रय में स्व-अस्तित्व को तिरोहित करनेवाली अनु अब अपने जीवन में पुरुष के अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिन्ह लगा देती है- "स्थाई रूप से पुरुष जीवन में न हो, तो न हो। ज़रूरत भी किसे है।"[12] किंतु फिर भी दीपांकर के प्रति उसका आकर्षण विवाह में परिणत हो जाता है। प्रणव जब इस परिवर्तित स्त्री से मिलता है तब आश्चर्यचकित हो जाता है -"कहाँ गई वह भोली-³ÖÖ»Öß, ´ÖßŠß-मीठी लड़की, गुड़िया जैसा जगमगाता चेहरा । अब पहली नज़र में वह रूप आँखों में नहीं टकराता। दीखती है एक आत्मविश्वासी, संतुलित, लापरवाह - सी सादगी से भरपूर एक पूर्ण युवती।"[13] इस प्रकार अनु पति से विमुख होकर कमज़ोर नहीं बनती बल्कि अपने अस्तित्व और स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए डॉक्टर बनकर स्वच्छंदता से जीवन जीती है। अनु के संदर्भ में डॉ.शीला रजवार लिखती हैं - "अनु अपने समस्त सामाजिक, मानसिक ग्रंथियों से छुटकारा पाकर स्वतंत्र व्यक्तित्व प्राप्त करने की 'शेष यात्रा' पूरी कर लेती है।"[14]

'†ÝÖ¾Ö¿Öß' की वाना सहज एवं स्वाभाविक इच्छाओं के साथ संपन्न जीवन जीने और सभी सुखों का आनन्द उठाने के लिए लालायित रहती है और भरसक प्रयत्न भी करती है। आदिम प्रकृति के अनजाने प्रवाह में खिंचकर वह अपने पति शिवेश के बच्चों की माँ बनती है; वात्सल्यमयी माँ बनकर सुखी भी होती है। एक सद्गृहिणी की भाँति और माँ की जैसी सद्भावना के साथ सबका ध्यान रखती है। किंतु उसके जीवन के अभाव उसे खलने लगते हैं। पति और बच्चों के बीच उसका अस्तित्व नगण्य है। उसके भीतर कई सवाल उमड़ने लगते हैं - "कौन हूँ मैं? क्या पत्नी, माँ के परे भी कोई पहचान होती है?"[15] उसे लगता है कि क्या "'Ö¸-कपड़ों की धुलाई, -ाड़ू, बिस्तर लगाना, दाल-चावल। यही है चुनमुन पांडे। वनश्री मिशिर की पहचान। उसका अस्तित्व।"[16]

सारिका की योग्यता और प्रगतिशील विचार वाना के जीवन में नयी स्फूर्ति पैदा कर देते हैं। सारिका ही उसे यह एहसास दिलाती है कि रसोई के आगे भी एक ÃÖÃÖÖ¸ ±ú»ÖÖ Æ†Ö Æ,

अनन्त। वाना को आगे पढ़कर आत्मनिर्भर होने के लिए भी वह प्रवृत्त करती है। गर्भनिरोधक गोलियाँ भी वाना सारिका के सम-ााने के बाद से ही लेना शुरू करती है और अपने व्यक्तित्व को नया रूप देने का प्रयत्न करने लगती है। सारिका की बातों का असर वाना पर गर्म लोहे पर हथौड़े का काम करता है। हीनभावना से ग्रस्त वाना सारिका के कहने पर ही अंग्रेज़ी बोलना सीखती है। पति की अनिश्चित नौकरी और तज्जनित अनेक प्रकार के अभावों की यातनाओं में •ÖßÖß Æ‡ ¾ÖÆ ”Ö™-मोटे अनेक प्रकार के काम करती है। आगे बढ़ने और सम्पन्न अमरीकी जीवन की सभी लालसाओं की पूर्ति करने के लिए वह आगे पढ़ती है, ड्राइविंग सीखती है, सेक्रेटरी का कोर्स करती है, मकान बेचनेवाली एजेंसी में काम भी करती है। शिवेश के कोकीन की तस्करी में फँसने पर वह स्वयं परिवार की ज़िम्मेदारी उठाती है। और अन्त तक इतनी हिम्मत भी संचित कर लेती है कि वह शिवेश से कह देती है, 'आइ अम लीविंग यू।'[17] ´Ö ÝÖ´Æ छोड़ रही हूँ। अपने अस्तित्व-बोध के कारण ही दो बच्चों की माँ होने के बावजूद वह शिवेश को त्याग कर राहुल का जीवन साथी के रूप में वरण करती है। उपन्यास की एक और स्त्री पात्र अंजी भी आधुनिक नारी का परिवर्तित चित्र पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करती है। पति द्वारा त्याग दिए जाने पर भी वह हिम्मत न हारते हुए अकेले सिलाई-कढ़ाई का काम करके अपने परिवार को पालती है।

इस प्रकार उषा प्रियंवदा ने नारी-मन की आधुनिक जिजीविषा, सूक्ष्म मनोविकारों और उसके अनेकविध व्यक्तित्व के पहलुओं को अपने उपन्यासों में रूपायित करके आधुनिक नारी के स्वतंत्र अस्तित्व को नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में चित्रित नारियाँ स्वतंत्र प्रवृत्तियों से अपनी समस्याओं से जू-ाकर आत्मसम्मान और गौरव प्राप्त करना चाहती हैं। अपनी व्यक्ति-चेतना का स्वच्छंद बहाव चाहती हैं। इसीलिए वे आत्मनिर्भर रहना चाहती हैं। स्पष्ट है कि उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों में नारी की व्यक्तिगत तथा परिवेशगत, मानसिक एवं शारीरिक समस्याओं को व्यापक अभिव्यक्ति देकर युग-युग से उपेक्षित नारी के अस्तित्व का मौलिक अन्वेषण करने का प्रामाणिक प्रयत्न किया है। हिंदी उपन्यास साहित्य में यह एक सर्वथा नयी चेतना का प्रमाण है जिसकी ओर आँखें मूंदकर उपन्यास की समीक्षा को गरिमा प्राप्त नहीं हो सकती।

४.२ भौतिक युग के स्वार्थावरण से मण्डित रिश्ते :

______जब तक भारतीय संस्कृति पर कृषि व्यवसाय, ग्रामीण जीवन और संयुक्त परिवार व्यवस्था का प्रभाव रहा वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक रिश्ते घनिष्ठ, प्रगाढ़ एवं स्थायी रहे, किन्तु बीसवीं शताब्दी में जैसे ही पाश्चात्य प्रभाव से औद्योगीकरण और नगरीकरण बढ़ने लगा और संयुक्त परिवार टूटने व बिखरने लगे, उक्त तीनों प्रकार के रिश्ते भी शिथिल, दुर्बल और अस्थायी होने लगे । औद्योगीकरण ने अर्थ का महत्व बढ़ाया, जिसने व्यक्तिवाद और स्वार्थपरता को बढ़ावा दिया । इसका सीधा प्रभाव सभी प्रकार के रिश्तों पर पड़ा, या तो वे टूट गए या दरक गए । रिश्ते सिली हुई जिल्दबंद किताब से न होकर आल्पिन से जुड़े खुले पÖ®ÖÖ ÃÖ ÆÖ गए, जो हवा के छोटे हल्के -ोकों से फड़फड़ाने लगते हैं या आल्पिन से अलग होकर बिखर •ÖÖŸÖ Æ |

संयुक्त परिवार के विघटन और एकल परिवार की स्थापना ने व्यक्तिवादी विचारधारा को बढ़ावा दिया । फलत: मनुष्य का दायरा संकुचित होता जा रहा है और भौतिक उन्नति के प्रति आस्था उसको और अधिक स्वार्थी बनाती जा रही है । 'भौतिक साधनों को हासिल करने की इस दौड़ में पारिवारिक संबंध अपने आप में शिथिल हो रहे हैं ।'[18] ऐसी बदलती स्थितियों के नये परिप्रेक्ष्य ने पुराने रिश्तों की प्रकृति बदल दी है । नाम वही हैं पर उनके भीतरी अर्थ बदल गए हैं । शब्द और अर्थ के बीच जो असंगति आ गई है, स्थितियों और उनकी वाचक भाषा के बीच जो फाँक पैदा हो गई है उसे सम-ना और व्यक्त करना अपने आप में एक बहुत बड़ी चुनौती है । उषा प्रियंवदा ने इस चुनौती को स्वीकार कर रिश्तों के परंपरागत, परिचित रूपों के बीच से न जाने कितने नए पहलुओं को उभारा है । संबंधों के टूटते, बनते-बिगड़ते तंतुओं को तथा वर्तमान बदलाव को सही ढंग से पकड़ने, सम-ने और व्यक्त करने की ज़िम्मेदारी को उषा जी ने बखूबी निभाया है । उन्होंने भौतिक युग के स्वार्थावरण से मण्डित रिश्तों को उघाड़कर रख दिया है ।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास की माँ अपनी सन्तान के सुखद भविष्य के लिए अपनी बड़ी कमाऊ बेटी सुषमा के अरमानों की बलि देने में तनिक भी संकोच नहीं करती । बेटी की कमाई पर इस सीमा तक अधिकार कि उसकी निजी ज़िंदगी के विषय में सोचने का तनिक 3ÖÌ †¾ाकाश उसके पास नहीं होता । कन्यादान के प्रति अमिट आस्था की मान्यता और जोंक की तरह खून चूसकर बेटे-बेटियों के भविष्य को सँवारने की ललक एक अजीब सा विरोधाभास

प्रस्तुत करती है। विडम्बना तो यह है कि सुषमा की सूनी आँखें और बु-ाा चेहरा कृष्णामासी, मामी , मीनाक्षी, नील सभी को नज़र आता है लेकिन माँ को नहीं क्योंकि उसका उससे कोई सरोकार नहीं, उसे तो रुपया चाहिए वेतन के रूप में भी, कर्ज़ के रूप में भी, बेईमानी से भी आ जाए तो उसे तनिक परहेज़ नहीं। कृष्णा मौसी द्वारा सच्चाई से परिचित कराने पर "तो क्या दीदी, सुषमा को कुँआरी रखोगी? इसका ब्याह नहीं करोगी ... जब लड़की की उमर थी तब तो आज़ादी नहीं दी। अब वह कहाँ ढूंढ़ने जाएगी। लड़कियाँ सभी की होती हैं, शादियाँ भी सभी करते हैं। तुम्हारी तरह हाथ पर हाथ रखकर बैठनेवाला कोई नहीं देखा।"[19] ´ÖÖ ¯Ö¸ कोई असर नहीं होता। छोटी बहन से फटकार सुनकर भी बड़ी बहन के पास कोई उत्तर नहीं क्योंकि स्वार्थ में अंधी माँ के लिए व्यंग्य ताने के मायने अब कोई महत्व नहीं रखते हैं और अपनी ग़ैर ज़िम्मेदारी का उत्तर कोई दे भी क्या सकता है। ज़िक्र गहनों का हो या कपड़ों का माँ को छोटी बेटियों के सिवाय और कुछ नहीं सू-ाता। तरुण किशोरी का स्वप्न अनुकूल जलवायु के अभाव में कुम्हला कर रह जाता है। अब शेष है पहनने - ओढ़ने का शौक जो माँ को फूटी आँखों नहीं सुहाता "तुम फिजूलखर्च होती जा रही हो। ज़रा हाथ दबाकर खर्च किया करो। नीरू की शादी भी तो करनी है|"[20]

नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि स्थान देने वाली, उसूलों के साथ कोई सम-ौता जिसे स्वीकार्य नहीं, आत्मसम्मान के आगे जीवन की सुख सुविधाओं के प्रति उपेक्षा का भाव जिसके मन में हो <ÃÖß ÃÖ¿Ößȫ †Ö¸ †Ö¤¿Ö ²Ö™ß ¯Öर गर्व करने की बजाय माँ अपनी स्वार्थ लिप्सा में अन्धी होकर बेटी को बेईमानी करने की नसीयत देती है, "आखिर इतनी गृहस्थी फैलाने की ज़रूरत क्या है सुषमा? भौरी को निकाल दो और होस्टल के नौकरों से काम कराओ। होस्टल में कुर्सी-´Ö•Ö बनें तो घर के लिए भी कुछ सामान बनवा लो। पलंग है, अलमारी, खाने की मेज़ें-सब देने के काम आएगा - इतनी ज़मीन बेकार पड़ी है। साग सब्जी लगवाओ।"[21]

नील के प्रति सुषमा के बढ़ते आकर्षण को देखकर माँ के तन बदन में आग लगती है, शायद भविष्य में घटने वाली आशंका के बादल मँड़राते दिखाई देने लगते हैं। खुदा न करे अगर सुषमा और नील की घनिष्ठता इसी तरह बढ़ती गई तो उसकी सन्तान का क्या होगा। अब दो शस्त्रों का प्रयोग करने की योजना उसके स्वार्थी मन में जन्म लेने लगती है। अगर तीर निशाने पर लग गया तो भय और आशंकाओं से उत्पन्न खतरे हमेशा के लिए टल जाएँगे। नीरू के साथ नील की शादी और दुनियादारी की दुहाई देकर किस तरह एक माँ अपना उल्लू सीधा कर सकती

है यह विशेष रूप से दर्शनीय है, “ŸÖ´Ö ÃÖ´Ö-ादार हो, कभी ऐसा कुछ न करना जिससे किसी को कुछ कहने का अवसर मिले। तुम्हारी वजह से अभी हम चार जनों में सिर उँचा करके रह रहे हैं ...।”[22]

सुषमा अपनी माँ के प्रयोजन स्वार्थ और सांकेतिक सूत्रों से भली-³ÖÖ×ŸÖ ¯Ö×¸×“ÖŸÖ Æ “ÖÖÆ वह दोष सुषमा के ही सिर डाल कर मुक्त हो जाती है। लेकिन सच्चाई तो यही है कि यदि परिस्थितिवश सुषमा का विवाह न टला होता तो आज उसका भी एक घर, साथी और बच्चे ÆÖêŸÖ। अकेलेपन का दंश भोगने के लिए वह विवश न होती। माता-पिता लाख प्रयत्न करके बेटी के ब्याह का सामान जुटाते हैं। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया क्योंकि सुषमा की शादी से उनके घर की आर्थिक व्यवस्था पूरी तरह गड़बड़ हो जाती। सुषमा के इस त्रासद जीवन के लिए उसके पिता का स्वार्थ भी इतना ही ज़िम्मेदार है। सुषमा की करीब-करीब तय हुई शादी पिता के ढील देने के कारण ही टूट जाती है। पिताजी का रिटायरमेंट नज़दीक आ रहा था। अत: रिटायरमेंट के पश्चात् परिवार का आधार सुषमा ही थी। ऐसे में पिताजी भी नहीं चाहते थे कि सुषमा का विवाह हो। कृष्णा मौसी ने ठीक ही कहा £ÖÖ, “यदि पिता जी चाहते तो क्या विवाह नहीं कर सकते थे। ... बात असल यह थी कि उन्होंने यह चाहा ही नहीं कि सुषमा की शादी हो, उनके अंतर्मन में यह बात अवश्य होगी कि सुषमा से उन्हें सहारा मिलेगा।”[23] नील सुषमा से सच ही कहता है, “´Ö-ो लगता है कि तुम्हारा परिवार तुम्हारा अनड्यू एडवांटेज लेता है। ŸÖ´ÆÖ¸ ³ÖÖ‡-बहन, तुम्हारे माता-पिता की ज़िम्मेदारी हैं, तुम्हारी नहीं।”[24]

सुषमा के चेतन और अवचेतन में परिवार का आंतक इस कदर हावी हो चुका है कि वह स्वतंत्र रूप में कोई निर्णय ले पाने में स्वयं को पूरी तरह असमर्थ पाती है। मुट्ठियाँ खोलकर अपनी निधि लुटाना ही उसकी नियति है। किंतु दूसरी ओर सुषमा की माँ और पिता का चरित्र इस भौतिक युग के स्वार्थावरण से मण्डित दिखते हैं। सुषमा से उनके संबंधों का आधार केवल पैसों का ही रह गया है, स्नेह का नहीं। अत: वर्तमान परिवेश में कृष्णा मौसी की बात अधिक ÃÖÖगत लगती है, “यह भाई-बहन किसी के नहीं होते। सब अपने-अपने घर के होंगे। आज की दुनिया में कौन किसका होता है।”[25]

‘रुकोगी नहीं राधिका’ में भी रिश्तों का सतही रूप उभरता है। राधिका के वि¤ê¿Ö ÃÖ लौटने के पश्चात् उसे लेने कोई आत्मीय एअरपोर्ट नहीं पहुँचता। उसे एक अनजान व्यक्ति के घर आश्रय लेना पड़ता है। अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात् लगभग अठारह वर्ष तक राधिका

पिता के खाली क्षणों की संगिनी और पूरे जीवन की धुरी बनती है। किंतु पापा द्वारा उसकी समवयस्का विद्या के साथ विवाह की घोषणा किए जाने पर उसके जीवन में भूचाल आता है। विमाता को माँ के रूप में स्वीकारना राधिका के लिए चुनौती का विषय बन जाता है। वह पापा को आघात पहुँचाने के लिए घर छोड़ने की बात करती है, किंतु इसका भी पापा पर कोई असर नहीं होता। उसके दिल्ली जाकर अकेले रहने की बात पर भी पापा कोई प्रतिक्रिया नहीं देते। पापा उसके प्रति इतने निर्मम और कठोर बन जाएँगे इसकी राधिका ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। पापा का वात्सल्य भरा रूप धीरे-धीरे दूर होता है और राधिका के मन में पापा के प्रति वितृष्णा उत्पन्न होती है। अंत में वह पापा के साथ रहने से मना करके उन्हें पुन: आघात पहुँचाकर प्रतिशोध लेती है।

राधिका और उसकी विमाता विद्या के रिश्ते में भी अनबन है। विद्या का व्यवहार राधिका के प्रति सौहार्दपूर्ण और संतुलित है। किंतु राधिका स्वार्थ में इतनी अंधी हो जाती है कि विद्या के प्रति उसका व्यवहार हमेशा वितृष्णापूर्ण रहता है। इसीलिए पापा को राधिका से कहना पड़ता है कि, "मैं चाहता हूँ कि तुम विद्या से सभ्यता से व्यवहार करना सीख लो। तुम दोनों को अब साथ ही रहना है।"[26] किंतु राधिका पर पापा की बातों का कोई असर नहीं होता। उसे विद्या को मानसिक त्रास देने में ही विचित्र प्रकार की आनन्दानुभूति होती है। यथा - "रात्रि के उस प्रथम प्रहर में पापा की स्टडी में काम करते हुए राधिका को यह -ान 30»08-भाँति रहता है कि विद्या अपने कमरे में अकेली है। और इससे उसे थोड़ा-सा सुख होता |"[27] परंतु अंत में विद्या द्वारा नींद की गोलियाँ खा लेने पर राधिका को पछतावा भी होता है।

राधिका के बड़दा विवाहोपरान्त अपने परिवार को त्याग कर श्वसुर पक्ष की संपन्नता में इस कदर खो जाते हैं कि उन्हें अपने पिता और बहन के प्रति ज़िम्मेदारियों का स्मरण ही नहीं रहता। एक तरह से अपने परिवार के लिए वे पराये हो जाते हैं। पापा के पास जाते समय राधिका को लखनऊ से ट्रेन बदलनी पड़ती है। लखनऊ में बड़दा रहते हैं। राधिका की आँखे न चाहते हुए भी भीड़ में बड़दा को खोजती हैं। उसे लगता है कि किसी कारणवश भले ही बड़दा X¤ल्ली न आ पाए हों, किंतु स्टेशन पर उससे मिलने ज़रूर आएँगे। स्टेशन पर राधिका से मिलने मामा-मामी पहुँच जाते हैं, किन्तु बड़दा को इन फालतू कामों के लिए फुरसत नहीं है। उनके लिए रिश्तों के मायने बदल गए हैं। बड़दा राधिका से मिलने दिल्ली जाते हैं और

राधिका के हाथों में कुछ रुपए थमा कर अपने कर्तव्यों से मुक्त होना चाहते हैं। उनका लोभी मन रुपए-पैसों से आगे नहीं सोच पाता। राधिका उन रुपयों को सहर्ष लौटा देती है।

राधिका और भाभी के रिश्ते में भी स्नेह का अभाव है। भाभी राधिका का बड़े उत्साह के साथ स्वागत करती है, इसलिए नहीं कि उसे अपनी ननद से बहुत प्रेम या लगाव है, बल्कि इसलिए कि सभा-सोसायटियों में 'फारिन-रिटर्न' ननद के कारण उसके अहं की तुष्टि होती है। भाभी को हमेशा यह भय था कि राधिका या पापा उसके पास आकर जम न जाएँ। भाभी अकसर राधिका पर तानें कसतीं - "भाई, इन्हें हमारा घर रास नहीं आता। अभी दो दिन रज्जू के घर रह आएँ, तो देखो चेहरा चमक जाए।"[28] वास्तव में भाभी उस आधुनिक पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती हैं जिन्हें परिवार से जुड़कर नहीं अपितु कटकर रहने में आनन्दानुभूति होती है। परिवार से कटकर ही इनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता सुरक्षित रहती है। बड़दा ने पापा की इच्छा के विरुद्ध भाभी के साथ विवाह किया था। राधिका अकसर भाभी के बारे में सोचती कि भाभी में पसंद आने लायक बात बड़दा को क्या लगी? बड़दा ने अपने लोभी स्वभाव के कारण ही बेशुमार दौलत वाली भाभी से विवाह किया था। भाभी का अहंकार राधिका से सहा न जाता। उसे लगता, "मानवीय संबंध कितने शाश्वत होते हैं; पर लोग यह भुला भी कितनी जल्दी देते हैं। यह भाभी, जिन्होंने कई मिलों की स्वामिनी होने के मद में सब कुछ भुला रखा है, क्या अंतरतम में अकेली नहीं होगी?"[29]

उपन्यास के ये सभी पात्र एक - दूसरे से उदासीन-से हैं। सबमें एक परायापन, एक नैतिक व्यावहारिकता और तटस्थता है। सब पर सम्भ्रान्तता और अभिजात्यता का मुखौटा लगा Æ - कोई भी ह्रदय को निरावरण करके सामने नहीं आता। यहाँ उच्चवर्गीय जीवन की भावनाहीनता, बौद्धिकता तथा भौतिकता के परिणामस्वरूप पारिवारिक संबंधों की टूटन को 3Ö»Öß-भाँति रेखांकित किया गया है। राधिका यह अनुभव करती है कि पापा, बड़दा, भाभी आदि सभी घोर व्यक्तिवादी एवम् स्वार्थी हैं।

'†ÿÖ¾Ö¿Öß' में भी वर्तमान भौतिकवादी परिवेश में रिश्तों के परिवर्तित रूप पर प्रकाश डाला गया है। सारिका और शालिनी दोनों मौसेरी बहनें हैं। दोनों उच्चविद्या विभूषित हैं। एक डॉक्टर है, एक पी-एच.डी। किंतु दोनों के परिवार में प्रॉपर्टी को लेकर अनबन है। शालिनी सारिका की माँ के संबंध में कÆÿÖß Æ, "मौसी हैं, बरसों से अनबन है, नाना की प्रॉपर्टी को लेकर।"[30] प्रॉपर्टी के -ागड़े के कारण दो सगी बहनों का रिश्ता टूट चुका है। वे

एक दूसरे के सुख-दु:ख में भी शामिल नहीं होतीं। यहाँ तक कि सारिका की मौत की खबर सुनकर शालिनी तो पहुँच जाती है, किन्तु शालिनी के माता-पिता अंत्यविधि में नहीं पहुँचते। क्योंकि शालिनी के माँ-बाप ने अभी भी अनबोला नहीं तोड़ा है। ऊपर से शालिनी -ूठ बोलकर सच पर परदा डालने का प्रयास करती है - "मौसी! पापा को डॉक्टर ने मना किया है। अभी बाईपास सर्जरी से उभरे नहीं है, मम्मी उन्हें अकेला छोड़ नहीं सकतीं।"[31] शालिनी की मौसी ‡ÃÖ -ूठ को ताड़ लेती है और कटु स्वर में कहती है - "²ÖÖµÖ ´ÖµÖ बनाओ शालिनी। मैं सब सम-ाती हूँ। छोटे दिल की है तेरी अम्मा।"[32] यहाँ एक बहन के साथ इतना बड़ा हादसा हो जाता है, किंतु दूसरी बहन उसे सांत्वना देने भी वहाँ नहीं पहुँचती। क्योंकि यहाँ रिश्ता नहीं, रुपया-पैसा अधिक महत्वपूर्ण है।

वाना और विकास के माध्यम से लेखिका ने पाश्चात्य रंगों में रंग रहे माँ-बेटे के रिश्ते का एक चित्र पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। इसे देखकर पाठकों का दिल अवश्य दहल जाता है। और वह सोचने पर विवश होता है कि यदि वर्तमान ऐसा है तो भविष्य कैसा होगा ! निखट्टू बाप और बेमुरव्वत बेटों के साथ संसार की गाड़ी खिंचते-खिंचते वाना तंग आ जाती है। एक दिन वाना थकी-हारी घर लौटती है और विकास दाल-चावल न खाने की ज़िद करता है। वह ˆÃÖ ÃÖ´Ö-ााने-मनाने का प्रयास करती है, किंतु वह ज़िद पर अड़ जाता है। तब वह उसे गुस्से में भूखे रहने को कहती है। विकास उसे दो टूक जवाब देता है - "मैं क्यों भूखा रहूँ? यह कोई भारत है? यह अमेरिका है, अमेरिका।"[33] यह संपूर्ण भारतवर्ष पर तमाचा है। बेटे की भारत के प्रति इस अमेरिकन दृष्टि से क्रोधित हो वाना एक चाँटा जड़ देती है। किंतु इस पर बेटे की प्रतिक्रिया देखकर वह हतबुद्धि-सी खड़ी रह जाती है। माँ के चाटा मारने के कारण विकास फोन की ओर बढ़ जाता है - "´Ö †³ÖÖß पुलिस को फोन करता हूँ कि मेरी माँ मु-Ö ´ÖÖ¸-¯Öß™ ¸ÆÛ Æ -"[34] माँ का प्रेम, ममता आदि का बेटा अच्छा सिला देता है। और इस वर्तमान को देखकर रिश्तों के भविष्य की कल्पना न करना ही बेहतर है।

उषा प्रियंवदा ने सामाजिक स्थितियों में आने वाले बदलाव और उनके रिश्तों पर पड़ने वाले प्रभाव को नए सिरे से पारिभाषित करने का प्रयास किया है। आज रिश्ते भावुकता से नहीं उपयोगिता और व्यावहारिकता के तर्कों से निर्धारित होने लगे। परिवार के सदस्यों के बीच नई स्थितियों से उत्पन्न असमंजस, कुंठा, अस्वीकार, तर्कातीत व्यवहार आदि के साथ संगति बैठाने की लाचार कोशिशें सामने आने लगीं। और उषा प्रियंवदा ने इन स्थितियों का सटीक विवेचन

अपनी रचनाओं में किया है। आज पति-पत्नी संबंधों में भी उष्मा नहीं रही। इसमें भी दरारें साफ़ नज़र आ रही हैं। उषा प्रियवंदा ने इस रिश्ते पर भी कलम चलायी है, किंतु इसका विवेचन पृथक किया जाएगा।

४.३ अकेलापन और अजनबीपन :

______आधुनिक मनुष्य प्रकृति, ईश्वर और समाज से कट गया है। आज का मनुष्य एक ओर दूसरे ग्रहों पर अपना अधिकार जमाना चाहता है और दूसरी ओर अपनी मिट्टी से उसका संबंध टूटता जा रहा है। मनुष्य प्रतिक्षण विश्व के रहस्यों को उद्‌घाटित करने में लीन है। नियमतः इस प्रक्रिया में उसे इस दुनिया से और जुड़ना चाहिए, किन्तु उसके ठीक विपरीत ही घटित होता Æ, 'सामान्य अर्थों में मनुष्य पूरे विश्व से परिचित है। पर दूसरी तरफ वह अपने पड़ोसी से †¯Öx¸x“ÖŸÖ Æ |'[35] वर्तमान काल में वि-ज्ञान और प्रौद्योगिकी के द्रुत प्रसार से गाँव और शहर के पारंपरित ढाँचे में ज़बरदस्त बदलाव आया। वै-ज्ञानिक सभ्यता के गहरे संघात के फलस्वरूप नए-नए संबंध विकसित हुए। पर सही अर्थों में मनुष्य उससे जुड़ नहीं पाया| 'पारस्परिक रिश्ते से जड़ उखड़ने से पुराने किस्म के संबंध अर्थहीन हो गए और मनुष्य निराधार हो गया।'[36] मशीनीकरण, वस्तुपरकता, आपसी प्रतिस्पर्धा और भीषण भागदौड़ में यह संसार आकृतिहीन हो गया।

³ÖÖ¸ŸÖ ´Ö ¾Ö-ज्ञानिक उन्नति और औद्योगीकरण के फलस्वरूप पुरानी मान्यताएँ अर्थहीन हो गईं तथा व्यक्ति ने पूरब-पश्चिम की सांस्कृतिक टकराहट में अपने को मूल्यों के स्तर पर अकेला पाया। नई चेतना के संस्पर्श और नए विचारों की सुगबुगाहट से जब आस्थाएँ ढहने लगती हैं तब उन सारी मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया जाता है। परिणामस्वरूप अकेलेपन एवम् अजनबीपन की समस्या धीरे-धीरे उसके मानस में गहराने लगती है। इस प्रकार मशीनी सभ्यता ने आज मनुष्य और जगत के बीच अलगाव की स्थिति उत्पन्न कर दी। इससे उबरने के लिए मनुष्य छटपटा रहा है। उषा प्रियंवदा की रचनाओं में भी यÆ ”™¯Ö™ÖÆ™ मौजूद है। उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर महानगरीय वातावरण में मानवीय संबंधों की अर्थहीनता, अकेलेपन तथा अजनबीपन की अनुभूति को अपनी रचना का विषय बनाया है। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि खण्डित पात्र, खण्डित व्यक्तित्व केवल महाभारतोत्तर पात्रों की ही

नियति नहीं, प्रत्युत बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध्द के मनुष्यों की भी नियति है। यह आज की महानतम त्रासदी है कि व्यक्ति भीड़ में भी अकेला होता जा रहा है। मनुष्य सिमट रहा है और जीवन पोषक मानवीय मूल्यों से निरंतर कटता जा रहा है। इस कटते जाने की प्रक्रिया से उत्पन्न छटपटाहट को उन्होंने अपने अनुभव की कसौटी पर देखा-परखा है।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' अकेलेपन और अजनबीपन की भावना को कलात्मक ढंग से रूपायित करने वाली एक सशक्त कृति है। प्रस्तुत उपन्यास में पारिवारिक सीमाओं में जकड़ी, निम्न मध्यवर्गीय शिक्षिता नारी की सामाजिक-आर्थिक विवशताओं से उपजी मानसिक यंत्रणा का मार्मिक अंकन हुआ है। छात्रावास के पचपन खम्भे और लाल दीवारें उन परिस्थितियों की प्रतीक हैं जिनमें रहकर सुषमा को ऊब तथा घुटन का तीखा अहसास होता है। फिर भी वह इससे मुक्त नहीं हो पाती क्योंकि उसकी संस्कारबध्दता के कारण उन परिस्थितियों के बीच जीना ही उसकी अंतिम नियति है।

अपने चारों ओर के परिवेशगत सन्नाटे और अकेलेपन के बीच फँसी सुषमा को आभास होता है कि बाहर का अभेद्य, सर्वग्रासी अंधकार उसके जीवन में सिमटता आ रहा है। इस अकेलेपन और रिक्तता की अनुभूति को तोड़ने के लिए वह संवेगों की दहलीज पर खड़ी होकर †ÿÖ߯Ö ´Ö -ाँकने और मन की संकुल गलियों में भटकने का प्रयास करती है। अब वह उस स्थान पर आ पहुँची है जहाँ पीछे मुड़कर देखने से आशाएँ बड़ी खोखली नज़र आती हैं †Ö¸ü •ÖÆü यथार्थ की प्रखरता में कोमल स्वप्न कुम्हला जाते हैं। अविवाहित सुषमा की आय पर घिसटकर चलने वाले घर-परिवार के बीच प्राय: वह अपने को अकेला और उपेक्षित-सा अनुभव करती है।

नारायण, जिसको केन्द्र में रखकर उसने बचपन में एक स्वप्न संजोया था; के पुत्र होने के उपलक्ष्य में जब वह उसके घर जाती है तो लोगों की शुभकामनाओं और आशीषों की वर्षा के मध्य एक अपरिचित मात्र बनी, बहुत दूर से यह सब देखती है। यह परायापन उसके मन में ज़िंदगी के प्रति कितनी कड़वाहट घोल देता है। मीनाक्षी अपनी शादी तय हो जाने के बाद सुषमा को लिखती है कि वह अपने इस लेक्चर्स और ट्यूटोरियल में बंधी संकुचित ज़िंदगी से ऊब गई थी। इसी से "जब एक द्वार मेरे सामने खुल रहा है तो मैं उससे क्यों न निकल भागूँ।"[37] लेकिन सुषमा सोचती है, सोचती क्या है बल्कि उसके भीतर से एक आह उŠÿÖß Æ - "जिसके चारों ओर द्वार बन्द हों वह क्या करे?"[38] उसकी नियति यही है कि वह उसी कारागार ´Ö ¸Æ, "सींखचों से आती धूप और मद्धिम प्रकाश के बल पर साँसें लेती रहे।"[39] ‡ÃÖ ×¾Ö¾Ö¿ÖÿÖÖ

के क्रोड से उपजती हुई अजनबीपन की भावना से अपने को मुक्त रखने के लिए कामों का अम्बार लगाकर व्यस्तता का ढोंग रचती है पर इन सबके बावजूद वह अक्सर अनमनी, गुमसुम हो जाती है। सहज स्नेह की उष्णता की कमी उसे बराबर खलती रहती है।

'अकेलेपन में हरेक के मन में एक मूर्ति उपज आती है, चाहे वह काल्पनिक हो या यथार्थ - उस क्षीण तंतु के बल पर ही लंबे, अकेले पल कटते जाते हैं।'[40] सुषमा के उदास जीवन में भी नील के प्रवेश से नव चैतन्य निर्माण होता है। पारिवारिक - सामाजिक बंधनों में छटपटाती और अपने जीवन की एकरसता से उकताई सुषमा नील के कारण प्रसन्न और आत्मविभोर हो जाती है। किंतु सुषमा के लिए जो अमूल्य और स्वर्गिक था, दुनिया की आँखों में वह कितना सस्ता और उपहासास्पद बन गया था। उसकी अपनी छात्राएँ जिन्हें वह प्यार से सम–ÖÖÝÖß Æ, उनकी सुख-सुविधाओं का ख्याल रखती है, आवश्यक न हो तो दंडित भी नहीं कं¸ÝÖß; ¾Ö Æß छात्राएँ उसके कमरे में –ाँकती हैं; उसके बारे में अनर्गल किस्से कहती हैं और इसकी शिकायत प्रिंसिपल से करने की धमकी आपस में देती हैं। सुषमा के भीतर कुछ टूट जाता है। क्या टूटता Æ - विश्वास? प्रेम? आस्था? और वह पूरे परिवेश में अपने को अजनबी पाती है।

खिलखिलाती लड़कियाँ, सब की निगरानी करनेवाली और रस ले लेकर सबके चरित्र की कथा कहने वाली मिस शास्त्री, वार्डन बनने का ख्वाब देखने वाली मिसेज राय चौधरी, मिसेज अग्रवाल, रोमा, घर पर उससे आशा लगाये माँ, उसकी बहनों का उछलता यौवन, सब सुषमा को अजनबी बना देते हैं और उसको सबकुछ अर्थहीन लगने लगता है। अकेलेपन व अजनबीपन का बोध उसकी चेतना को जकड़ लेता है। यही अजनबीपन उस समय और गहराने लगता है जब वह टैक्सी मँगवाकर नील को विदा करने एअरपोर्ट नहीं जाती और टैक्सी लौटा देती है।

'रुकोगी नहीं राधिका' एक अत्याधुनिक और असामान्य (एबनॉर्मल के अर्थ में नहीं) युवती के निजी परिवेश से उखड़ने और अजनबी होने की व्यथा को संवेदनात्मक रूप में उभारता है। जहाँ सुषमा पक्षाघात से पीड़ित मध्यवर्गीय पिता की ज्येष्ठ पुत्री होने के कारण अकेलेपन के दंश से पीड़ित है, वहाँ राधिका अपने उच्च-मध्यवर्गीय संस्कारों से परिचालित होकर उस अकेलेपन को ओढ़ती है। सुषमा के अकेलेपन की पीड़ा में उसका आर्थिक पक्ष प्रबल है, जबकि राधिका में मानसिक पक्ष। 'राधिका का अकेलापन स्वेच्छा से अपनाया गया है और उसमें आधुनिकता और अजनबीपन का बोध है। इस लघु उपन्यास में विदेशी और देशी जड़ता का बोध लेखिका को जकड़ लेता है।'[41]

¸Ö̈धिका ने बचपन में माँ की मृत्यु के बाद अठारह साल से अकेलेपन को जाना है, कि वह कितना भयावह होता है। यही कारण है कि पिता के प्रति उसका गहरा आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। किंतु ढलती उम्र में पिता द्वारा उसकी हम उम्र विद्या के साथ विवाह से उसको मानसिक आघात लगता है और वह बिखर जाती है। अपने पापा से -ागड़कर वह विदेश चली जाती है और एक पत्रकार डैनियल पीटरसन की संरक्षता में रहती है। किंतु दोनों भावनात्मक रूप से जुड़ नहीं पाते। डैन के साथ संबंधों में तनाव आने पर अलग से अपनी कलात्मक संभावनाओं को विकसित करने का प्रयत्न करती है। मिसेज़ होमर के घर रहते समय अपने अकेलेपन की भयावहता के संदर्भ में अपने पापा के अठराह वर्षों के अकेलेपन के दंश का अनुभव करती है। उसे लगता है कि पापा से संपूर्ण एकाग्रता की कामना करके उसने भूल की £Ö̈ß | पाश्चात्य परिवेश से अपने को न जोड़ पाकर, तीन वर्ष बाद वह स्वदेश लौटने का निर्णय लेती है; और यहाँ भी वह अपने को मिसफिट और अजनबी पाती है।

भारत आने के बाद वैचारिक, भावनात्मक, परिवेशगत यहाँ तक कि अपने निजी संबंधों में राधिका को अलगाव की अनुभूति होती है। वह स्वयं को नितांत अकेली पाती है। उसे लगता है उसकी भावनाओं को कोई सम-ाना नहीं चाहता, पापा, बड़दा, विद्या, भाभी शायद सब उससे पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं। अतीत की कड़वाहट और वर्तमान का दंश उसका अनवरत पीछा करते रहते हैं। विदेश से लौटने के बाद उससे मिलने के लिए आई ताई पूछती है कि सिगरेट-शराब तो राधिका पीने लगी होगी। इसी तरह उसकी भाभी पूछती है कि इतने दिन उस मर्द के साथ रहकर वह बाल-बच्चों से कैसे बरी रही, और उनके पति चटखारे लेते हुए पूछते हैं कि क्या वहाँ सचमुच ऐसे क्लब हैं जहाँ लोग अपनी पत्नियाँ सप्ताहांत के लिए बदल लेते हैं। इस तरह के बेतुके प्रश्नों से गुज़रने के कसैले स्वाद से उसका चिरपरिचित परिवेश सहसा अजनबी हो उठता है। पापा के स्वर की औपचारिकता और दूरी तथा महत्वाकांक्षी और अनुदार बड़दा का व्यक्तिवादी और स्वार्थी रूप उसकी अजनबियत को और बढ़ाता है। वह स्वयं अपनी अर्थहीनता का अनुभव करती है - "´Ö̈¸Ö̈ ¯Ö̈×¸¾Ö̈Ö̈¸, ´Ö̈रा परिवेश, मेरे जीवन की अर्थहीनता और मैं स्वयं जो होती जा रही हूँ, एक भावनाहीन पुतली-ÃÖ̈ß ...|"[42]

राधिका को लगता है कि वह अपने परिवेश से जुड़ी हुई नहीं है इस भीड़, शोर-¿Ö̈¸Ö̈²Ö̈ †Ö̈¸ "Ö̈Æ»Ö̈-पहल से एकदम कटी हुई है। वह समाज में रहते हुए भी 'निर्वासिता' है। उसने सोचा था कि स्वदेश लौटने पर उसके अन्दर का अजनबीपन का जमा 'हिमखण्ड' शायद पिघल

जाएगा। उसकी बेचैनी, अकुलाहट, ऊब समाप्त होगी और वह शान्ति का अनुभव करेगी। ‘¯0̈¸ कुछ भी नहीं’ बदलता। उसके भीतर का अजनबीपन इस अपने परिवेश में और बढ़ता जाता है। अंतत: वह अपने को मनीष जैसे व्यक्ति से बाँधने का निर्णय लेती है जो विचारों में प्रगतिशील होने के साथ ही पश्चिम को काफ़ी नज़दीक से देख चुका है। मनीष राधिका के दर्द को सम-0̈Ÿ0̈0̈ है। वह अन्त में भारत में बसने का निश्चय कर लेता है। अपने और राधिका के सामाजिक अलगाव और विवशताओं से टकराने का हल्का सा विश्वास उसमें उभरता है-“तुम वहाँ नहीं रह सकी, न तुम्हें यहाँ ही स्वीकारा गया। मैं भी अपने को पृथक, अलग, कटा हुआ पाता हूँ। सोचा, कि हम दोनों इकट्ठे रह सकेंगे - क्योंकि हम एक-दूसरे को बहुत समय से जानते हैं, बहुत सारे संदर्भों में ... पर यदि तुम ... ।”[43]

राधिका इसी विश्वास को पकड़कर, पापा के अकेलेपन और आग्रह क0̈ -ाटकते हुए, सारे अनिश्चय और ऊहापोह की स्थितियों को कुचल, अपने इर्द-गिर्द जमे अकेलेपन एवम् अजनबीपन के भयावह अंधेरे को तोड़कर बाहर निकल आती है क्योंकि मनीष उसका इन्तज़ार कर रहा है। वह सुषमा के समान टूटती नहीं और न अकेलेपन तथा अजनबीपन की शिकार बनी रहती है। राधिका और सुषमा दोनों में प्रखर बौद्धिकता -ालकती है किंतु राधिका में सुषमा की अपेक्षा एक प्रकार की व्यावहारिकता है जो उसके चरित्र को जीवंत बनाती हुई जीवनगत यथार्थ के समीप कर देती है।

‘शेष यात्रा’ की अनु भी अकेलेपन की पीड़ा -ेलती है। उसका पति प्रणव यायावरी प्रवृत्ति का इन्सान है। उसके कई औरतों से संबंध हैं। वह घर पर बहुत कम समय रहता है। ऐसे में अनु के जीवन में अकेलापन गहराने लगता है। इस अकेलेपन से उबरने के लिए वह शॉपिंग करती है या स्वयं को कामों में उल-0̈0̈‹ ¸खती है या टी.वी. का सहारा लेती है। अनु के सौंदर्य के प्रति आकर्षित डॉ.वाटरमैन जो कि स्वयं पत्नी के भाग जाने के कारण अकेलेपन की ¯0̈ß›0̈ -ेल रहा था, अनु का अकेलापन दूर करने पहुँच जाता है। वह प्रणव की सच्चाई बताने का प्रयास भी करता है। किंतु पतिव्रता अनु उसे वहाँ से भगा देती है। उस दिन से उसे उसका अकेलापन और अधिक भयावह प्रतीत होता है। जिसे दूर करने के लिए वह कीरŸ0̈ †0̈×¤ सहेलियों के घर भी जाती है।

प्रणव द्वारा तलाक़ दिए जाने पर अनु का जीवन अत्यंत त्रासद एवं दयनीय बन जाता है। उस विदेशी भूमि पर नितांत अकेली अनु टूट कर बिखर जाती है - “प्रणव के जाने के बाद अनु

ऐसे गिरी, जैसे कोई कटा पेड़ गिरता है।"[44] एक ही पल में प्रणव और अनु का रिश्ता समाप्त हो जाता है और दोनों एक दूसरे के लिए अजनबी बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में दिव्या अनु को सहारा देती है। उसे पढ़ने के लिए प्रेरित करती है। अनु पूरी लगन के साथ पढ़-लिखकर डॉक्टर बन जाती है - "मैं हूँ, अनु, अपने में तुष्ट, अपने स्वत्व-बोध में सुखी, अपने सुख-दु:ख में अकेली, अपने में स्वाधीन।"[45] दीपांकर से विवाह करके अनु अपने जीवन के खालीपन को दूर करती है।

उषा जी ने प्रस्तुत उपन्यास में 'सब दिन होत न एक समान' इस उक्ति को चरितार्थ किया है। उपन्यास के पूर्वार्द्ध में अनु जिस अकेलेपन से त्रस्त है, उत्तरार्द्ध में प्रणव भी वही अकेलापन -नेलता नज़र आता है। जिस चंद्रिका के लिए उसने अनु को छोड़ा था, उसकी ज़रूरत भी जल्द ही खत्म हो जाती है। प्रणव महसूस करता है कि, "किसी को किसी की ज़रूरत नहीं होती है। अंतत: हमें अपने साथ ही रहना होता है, अपने स्व से ही जू-नना होता है। हम सब अपने को अकेला पाते हैं।"[46] अनु से बिछड़ने पर प्रणव में काफ़ी प्रगल्भता आ जाती Æ| ^ÃÖ †¯ाना अकेलापन अत्यंत प्रिय लगने लगता है - "अब उसे अपना तापस अकेलापन इतना मन भाता था कि उसे किसी भी मूल्य पर त्यागने को तैयार नहीं था।"[47] अब वह बिना 'Ö¸-बार, बिना बीवी-बच्चों के - एकदम अकेला रहकर ही संतुष्ट है।

'†ŸÖ¾Ö¿Öß' का राहुल भी अकेलेपन की पीड़ा से त्रस्त है। रत्ना की मृत्यु के पश्चात् वह घरवालों के बीच रहकर भी स्वयं को अजनबी महसूस करता है। अकेलेपन की पीड़ा न -Ö»Ö ¯ााने के कारण ही वह घर छोड़ कर भाग जाता है। राहुल अमेरिका में भी अकेले रहना ही पसंद करता है। यह अकेलापन उसके जीवन का हिस्सा बन चुका है। अत: उसे अपने अकेलेपन से कोई शिकायत नहीं है। जब तक वह वाना से विवाहबद्ध नहीं हो जाता, तब तक वह अकेलेपन की पीड़ा को -नेलता है। वाना अपने पति और बच्चों के साथ रहती है किंतु फिर भी स्वयं को इन सब से कटा हुआ महसूस करती है। वह क्रिस्तीन से कहती भी है - "मत कहो क्रिस्तीन, कि मेरे पास सब कुछ है, पति, बच्चे-एक बिन्दु पर आकर इन्सान अपने को एकदम अकेले पाता है और सब कुछ होने के बाद भी मेरे अन्दर इतना रीतापन क्यों है? मैं नहीं जानती, सिर्फ़ इतना जानती हूँ कि मैं इंच-‡"Ö ´Ö¸ ¸Æß Æ|"[48] वाना के जीवन का यह रीतापन क्रिस्तीन से संबंध बनाकर कुछ हद तक कम हो जाता है। राहुल का साहचर्य ही वाना के निष्प्राण जीवन में प्राणों का संचार करता है। वैसे उपन्यास के लगभग सभी पात्र अकेलेपन की

समस्या से जू-ाते नज़र आते हैं। सारिका की मृत्यु के पश्चात् वाना को पागलपन का दौरा पड़ने पर शिवेश अपने को बहुत अकेला महसूस करने लगता है, तो पति द्वारा तलाक़ दिए जाने पर अंजी अकेले ही परिस्थितियों से संघर्ष करती है और अपने मंगेतर से रिश्ता टूट जाने पर सारिका भी अकेलेपन को भुगतती है। अकेलेपन की यह त्रासदी आधुनिक मनुष्य की नियति बन गई है अत: उससे उबरने के लिए प्रत्येक मनुष्य आज छटपटाता नज़र आता है।

‘भया कबीर उदास’ की लिली अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण वह स्वाभाविक रूप में किसी से रिश्ता नहीं बना पाती। फलत: वह अकेले ही जीवन यापन करती है। किंतु विदेशी भूमि पर रहने वाली इस आधुनिक स्त्री के जीवन में एक भयावह त्रासदी घटित होती है। उसे कैंसर हो जाता है। सबसे अलग-अलग रहनेवाली, ‘न काहू से दोस्ती न काहू से बैर’ के सिद्धांत पर जीवनयापन करनेवाली लिली का जीवन कैंसर के कारण ऐसी जगह पहुँच जाता है “×•ÖÄÖ´Ö केवल एक तरल अँधेरा है; जिसमें दिल की खट्-खट् कानों में कर्कश रूप से गूँज रही है। मेरे मुँह में कसैला-कसैलापन भर गया है और आँखें एकदम सूखी और जल रही हैं, ज÷ÖÄÖ ´Ö÷ß³Ö¸ राख किसी ने उनमें -ोंक दी हो।”[49] फिर प्रारंभ होता है कैंसर जैसी भयंकर बीमारी के साथ युद्ध जिसमें वह नितांत अकेली है, किंतु धीरे-धीरे वह सबकुछ स्वीकार कर लेती है - “मैं अकेली हूँ, और रणस्थली में मेरा वास है। मैं चुपचाप सब स्वीकार कर लेती हूँ, करना ही पड़ता है” |[50] इस बीमारी के कारण वह अपना वक्ष खो देती है जिसके कारण वह स्वयं को समाज से, अपने आप से अलग महसूस करने लगती है - “उसे महसूस होता है कि, वह जिस स्थान पर खड़ी है, वह बाकी संसार से कटकर अलग हो गया है, बीच में एक दुर्गम खाई बढ़ती ही जा रही है। संसार के नॉर्मल लोग ‘अन्य’ ÆÖ “ाले हैं, चैन से सोते हैं, उन्हें कल का डर नहीं। पहले कभी इतना अकेलापन नहीं लगा।”[51] किंतु इस प्रकार अकेले रहना और जीवनयापन करना भी उसके लिए एक प्रामाणिक लाईफ स्टाईल है।[52] वह अकेले ही अपनी त्रासद स्थितियों से जू-ÖŸÖß है। भारत लौटने पर भी सब कुछ जाना-पहचाना होने के बावजूद उसे अजनबीपन का भास ÆÖêŸÖÖ Æ |

इस प्रकार उषा प्रियंवदा ने बदलते जीवन मूल्यों और परिवर्तित युग-“Öेतना के कारण व्यक्ति में उत्पन्न अकेलेपन और अजनबीपन की भावनाओं का यथार्थ चित्रण अपने उपन्यासों में किया है।

4.4 ¯Ö×ŸÖ-पत्नी संबंध के बदलते आयाम :

जीवन के नये परिवर्तनशील मूल्यों ने पुराने व्यक्ति-संबंधों या पारिवारिक मान्यताओं, व्यवस्थाओं को अस्त-व्यस्त करके तो रख ही दिया है, अनेक प्रकार के अन्तर्विरोधों से भी भर दिया है। आज का जीवन सामूहिकता की परम्परागत परिस्थितियों से पिछड़कर व्यक्ति और उसके अहं पर आकर केन्द्रित होकर रह गया है। व्यक्तिकेन्द्रिता, व्यक्तिगत संक्रमण और वैयक्तिक संक्रान्ति की यह प्रक्रिया व्यवहार जगत में कुछ इतनी तीव्र गति से एक परिवर्तन चक्र को परिचालित कर रही है कि आज पति और पत्नी परस्पर सहयोगी, सहकारी न रहकर दो अलग केन्द्र, दो अलग छोर-उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव बनकर रह गये हैं। परिणामत: संबंधों का ÃÖ´Ö“ÖÖ ¯Ö×¸¾Ö¿Ö, ¯Ö×¸¯ÖÖÀ¾Ö एवं परिप्रेक्ष्य ही निर्ममता से चरमरा कर, दरारों वाला बनकर रह गया है।

¯Ö×ŸÖ-पत्नी का संबंध शाश्वत और जन्मजन्मांतर का माना जाता है। किंतु आज के युग में ये संबंध खोखले पड़ते जा रहे हैं। उषा प्रियंवदा चूँकि इस युग की उपन्यासकार हैं अत: इनके उपन्यासों में भी पति-पत्नी संबंध के बदलते आयाम साफ़ नज़र आते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में दाम्पत्य भाव के अनेक रंगों को बखूबी बिखेरÖ Æî | ¯Ö×¸¾ÖÖ¸ ´Ö ¯Ö×ŸÖ-पत्नी के असहज संबंध चिंता का प्रमुख कारण हो रहे हैं। कहीं आत्मनिर्भर होती नारी दाम्पत्य संबंधों में दरार का कारण बनती है, तो कहीं पति अथवा पत्नी का अहं भाव दाम्पत्य की दूरियों को बढ़ाता है। कहीं पति-पत्नी के आपसी प्रेम की समाप्ति के कारण संबंधों में ठंडापन आ रहा है, तो कहीं एक साथ रहकर भी सतही रिश्ते के कारण वे केवल पति-पत्नी की विवशता को निबाहने के लिए बाधित हैं। कहीं पति का स्वार्थ आड़े आ जाता है, तो कहीं पत्नी की बराबरी की भावना। अन्यथा उनके संबंधों में अथाह बेगानापन दिखाई पड़ता है। इन सब समस्याओं को अपने उपन्यासों में उभार कर उषा प्रियंवदा ने यह स्पष्ट कर दिया है कि पति-पत्नी का रिश्ता अत्यंत नाजुक होता है, जो सामंजस्य के अभाव में टूटने की कगार पर आ खड़ा होता है।

'रुकोगी नहीं राधिका' नवीनतम परिवेश पर लिखा गया सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में दाम्पत्य जीवन के पहलुओं को भी उभारा गया है। यहाँ उषा प्रियंवदा ने अनमेल विवाह की चर्चा की है। विद्या अपने पति से कम से कम बीस वर्ष छोटी है। वकील साहब से उसका विवाह प्रेम विवाह है। मसूरी के सुन्दर वातावरण में विद्या उनकी ओर आकर्षित हो

जाती है। पर शादी के बाद उनका जीवन स्वरूप स्वस्थ नहीं दिखाई पड़ता। यही नहीं वकील साहब की बड़ी सन्तानें भी हैं। इस विवाह की प्रतिक्रिया उनकी सन्तान के जीवन में विघटन एवं उच्छेदन पैदा करती है। राधिका के ये शब्द, "^ÃÖ ²ÖÖ¸-बार आश्चर्य होता कि पापा को विवाह की बात सू-ी ही कैसे। कम-ÃÖ-कम बीस वर्ष तो वे बड़े होंगे ही विद्या से, और विद्या भी, यह जानते हुए कि पापा की बड़ी-बड़ी दो सन्तानें हैं, इस विवाह पर ...।"[53]

इस विवाह पर राधिका को क्षोभग्रस्त जानकर भी उसके पिता विद्या से विवाह कर लेते हैं और विद्या उनके जीवन में शान्त पत्नी के रूप में दृष्टिगत होती है। किंतु राधिका के घर छोड़कर जाने के पश्चात् वकील साहब का नर्वस ब्रेकडाउन होता है। वे राधिका के प्रतिÖ †¯Ö¸Ö-Ö-भाव और विद्या के प्रति किसी अनैतिकता-बोध से पीड़ित होते हैं। परिणामस्वरूप घर छोड़कर अकेले गंगापारवाली कोठी पर रहने लगते हैं। इधर विद्या अकेलेपन का दंश भुगतने के ×»Ö< ×¾ÖÖ¾ÖÖ¿Ö Æ। पापा और विद्या के संबंध में अधूरापन आ जाता है। अंततः पीड़ा को न –Ö»Ö पाने की स्थिति में विद्या आत्महत्या करती है। यहाँ लेखिका ने विस्तृत व्याख्या न करके केवल संकेत द्वारा विघटित जीवन का परिचय दिया है।

†Ö•Ö ¯Ö×¤Ö-पत्नी संबंध शाश्वत नहीं रहा है। वह केवल एडजस्टमेंट बन कर रह गया है। जब आवश्यकता हो संबंध बना लो, जैसे ही आवश्यकता समाप्त हुई संबंध तोड़ लो। डैन †Ö¸ ^सकी पत्नी के बीच ऐसा ही संबंध दिखाई पड़ता है। दोनों के बीच अनबन है। डैन राधिका की ओर आकर्षित होता है, तो उसकी पत्नी एक हंगेरियन की ओर। उस हंगेरियन को अमेरिका में स्थायिक होना है अतः डैन की अमेरिकावासी पत्नी उसके लिए अत्यंत उपयुक्त है। इसलिए वह उससे संबंध जोड़ता है। जयपुर यात्रा के दौरान डैन की पत्नी की भेंट उस हंगेरियन से हुई थी। और दोनों की ज़रूरतें दोनों को निकट लाती हैं - "जयपुर यात्रा के दौरान उसकी भेंट एक हंगेरियन से हो गई थी और डैन के जाने बगैर उसने काफ़ी समय उसके साथ भी बिताया। हंगेरियन अमेरिका आना चाहता है और इसके लिए अमेरिकन पत्नी वरदान सिद्ध होगी। सारी बातें सोचकर डैन और उसकी पत्नी अब अलग-अलग रहते हैं।"[54] दोनों का एक बच्चा भी है किंतु उनके संबंध विच्छेद में इससे कोई बाधा उपस्थित नहीं होती-"²Ö““ÖÖ? ¾ÖÆ दोनों के पास आता जाता रहेगा।"[55]

'शेष यात्रा' की अनु एक परम्पराबद्ध भारतीय स्त्री है, जिसका अपने पति प्रणव पर पूर्ण विश्वास है। वह पुरुष पर पूर्णतया आश्रित, अवलम्बित, वहीं संपूर्ण अर्थ पाने वा»Öß, ¤ÃÖ¸Ö

द्वारा किए फैसलों एवं रास्तों पर चलना अंतिम मानने वाली, रसोई-मेहमानों और एक सजे-सजाए घर में आत्मतुष्ट, सामाजिक इयत्ता से हीन आदर्श पत्नी है। इसके विपरीत प्रणव अत्यंत Ã¾ÖÖ£Öá, ^“”खल प्रवृत्ति का इन्सान है। अनु अपने संसार में तब तक मोहाविष्ट रहती है जब तक इस सुख संसार के केन्द्र प्रणव से ही गहरा आघात-मोहभंग नहीं मिलता। दोनों के जीवन में तीसरे व्यक्ति का प्रवेश होता है। प्रणव अनु से ऊबकर चंद्रिका की ओर आकर्षित हो जाता है। इससे जीवन की सारी आस्था एवं विश्वास एक बारगी मुँहबाये अवाक्, स्तब्ध और निस्पंद हो जाते हैं, और अनु मानसिक विघटन के कगार पर •ÖÖ ¯ÖÆ“ÖÝÖß Æ | ¯Ö×ŸÖ-पत्नी में आए-दिन -ागड़े होने लगते हैं - "प्रणव और अनु में शादी के चार-साढ़े चार साल बाद आए दिन -ागड़े होने लगे हैं। अपने को इतना कड़वा-तीखा बोलना भी आता है, अनु क¤Ö ÝÖÖ••Ö²Ö ÆÖÝÖÖ Æ | उसकी दृष्टि में इतना भला, ख्याल रखनेवाला प्रणव एकदम से टेढ़ा-टेढ़ा चलने लगा है।"[56]

"चंद्रिका में, उसकी प्रखरता में एक ऐसा अदमनीय आकर्षण था, उसके साथ में एक ऐसी गहरी अभूतपूर्व परितुष्टि थी कि उसके बाद प्रणव को अनु के साथ वैवाहिक ज़िंदगी बहुत लाचार और बेमानी लगने लगी थी।"[57] अत: प्रणव अनु से संबंध-विच्छेद की माँग करता है। ÃÖ²Ö¬Ö-विच्छेद की बात सुनकर अनु टूट कर बिखर जाती है। वह इस बात पर विश्वास नहीं कर ¯ÖÖÝÖß - "¯Ö>-¯ÖÖ¬Ö ´Ö¸ÝÖ Æ, •Öß¾Ö-•ÖÝÖ ³Öß, †Ö¤´Öß-औरतें भी; कहीं मैरिज भी मरा करती है, खासतौर से हिंदुस्तानी मैरिज।"[58] न चाहते हुए भी अनु इस दारूण स्थिति के लिए अपने को तैयार करती है। वकील के कहने पर प्रणव तलाक़ के लिए अनु पर -ूठे आरोप लगाने से भी नहीं हिचकता। किंतु अपने इस -ूठ के कारण वह अनु से नज़र भी नहीं मिला पाता। अपने निजी स्वार्थ के लिए वह अनु को विदेश में अकेली छोड़ देता है। अनु जो अब तक पूर्णत: अपने पति पर निर्भर थी, इस तलाक़ के पश्चात् जीवन की त्रासद स्थितियों को -ेलने के लिए नितान्त अकेली रह जाती है।

गहरी आत्मव्यर्थता और हीनताबोध से उबरने के लिए अनु डॉक्टरी पढ़ती है और डॉक्टर प्रणव के बराबर खड़ी हो जाती है। अपनी स्वीकृति से दीपांकर के साथ प्रेम-×¾Ö¾ÖÖÆ करती है; और मातृत्व का सुख भी प्राप्त करती है। किंतु पति-पत्नी का यह नवीन रिश्ता पहले जैसा एकतरफा न होकर बराबरी का था। अनु ने दीपांकर को जीवनसाथी इसलिए चुना था क्योंकि "दीपांकर उसे हर तरह से सुखी रखने की कोशिश करेगा, वह यह जानती थी। वह अपने लिए महत्वाकांक्षी नहीं था, पर अनु को वह कभी कोई भी निर्णय लेने से नहीं रोकेगा।

यह होगी बराबर की सा-ेदारी, न कोई बड़ा, न छोटा; न सुपीरियर, न इन्फीरियर ।”[59] Ã¯ÖÂ™ Æ कि स्त्री अब मध्यकालीन संस्कारों के दबाव से मुक्त पुरुष के समान ही पुनर्विवाह के लिए स्वतंत्र Æ |

परम्परागत मान्यताओं के अनुसार घर की ज़िम्मेदारियों का भार पुरुष के कंधों पर होता है। किंतु आज परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। स्त्री चौके से बाहर निकलकर आत्मनिर्भर हो गई है। अब चौका उसके जीवन की परिधि नहीं है। आज स्त्री घर के बाहर निकलकर घर की ज़िम्मेदारियों का भार उठा रही है; तो पुरुष भी आगे बढ़कर घर के भीतर की ज़िम्मेदारियों का वहन कर रहा है। आलोक और नीरजा का संबंध इसी प्रकार का है। पहले पति से न पटने के कारण नीरजा आलोक से पुनर्विवाह करती है। आलोक नौकरी न मिलने की स्थिति में नीरजा द्वारा परिवार का भार वहन करना बे-Ö-ाक स्वीकार करता है -“अब नीरजा ही हमें सपोर्ट करेगी। मे¸ß ¯Öß-एच.डी. खत्म होने पर भी नौकरी तो कहीं मिलनेवाली नहीं है।”[60] ¾ÖÆ घर पर बैठकर घर और नवजात शिशु की देखभाल करता है और पत्नी बाहर जाकर नौकरी करती है। अपनी इस स्थिति पर उसे कोई शर्म नहीं है। उसके लिए पति-पत्नी का रिश्ता पार्टनरशिप ही है और वह अपनी ज़िम्मेदारी निभा रहा है - “हर इंटेलिजंट इन्सान कोई भी काम कर सकता है। फिर हमारी तो पार्टनरशिप है। नीरजा ने बच्चे को जन्म दिया, उसे पालने की ज्यादा ज़िम्मेदारी मेरी होनी चाहिए न?”[61]

‘†ÝÖ¾Ö¿Öß’ में भी वाना और शिवेश के माध्यम से लेखिका ने पति-पत्नी संबंध के एक नवीन पहलू को उजागर करने का प्रयास किया है। दाम्पत्य संबंध मुख्य रूप से पति-पत्नी की ÃÖ–Ö²Ö–ा, संतुष्टि तथा पारिवारिक स्थितियों पर निर्भर है। किंतु बदलते संदर्भों में पति-पत्नी दो विभिन्न इकाइयाँ बनकर आत्मकेन्द्रित होते हुए एक-दूसरे को कुंठित करते हैं। जहाँ तनाव बढ़ता है। वाना और शिवेश का संबंध भी तनावग्रस्त है। आर्थिक विपन्नता उनके परिवार को घेरे हुए है। पति की अनिश्चित नौकरी और तज्जनित अनेक प्रकार के अभावों में जीती हुई वाना परिस्थितियों से उबरने के लिए छोटे-मोटे अनेक प्रकार के काम करती है।

इसके विपरित शिवेश स्वार्थी, नीच और आत्मकेंद्रित व्यक्ति है। धीरे-धीरे वाना का अपने पति पर से विश्वास उठने लगता है। वह राहुल से कहती भी है - “सच कहूँ, मु-Ö ×¿Ö¾Ö¿Ö ¯Ö¸ •Ö¸Ö-सा भी विश्वास नहीं है। मु-ने लगता है कि जैसे सारा बो-ा मेरे ही कंधों पर आ पड़ा है |”[62] शिवेश के कारण वाना का इच्छा संसार अतृप्त रह जाता है। वह शिवेश से ऊबने लगती है

। समर्पिता पत्नी में बदलाव आ जाता है। “वह स्त्री है, पत्नी है; अब तक बिना शिकायत उनकी ज़िद, उनके आग्रह के सामने -ाुकती आई है। पर अब नहीं। उसे शिवेश के बदन की महक से वितृष्णा हो गई है। अब वह उन्हें नहीं -ोल पाएगी।”[63] ऐसे में वह क्रिस्तीन को अपना शरीर समर्पित कर पहली बार देहसुख का अनुभव करती है। किस्तीन के सम्मुख वह स्वीकार करती है कि - “यह बहुत बड़ी बेईमानी, बहुत बड़ा विश्वासघात है, पर शिवेश को पहले दिन से ही पति रूप में ग्रहण करना मेरे लिए यातना रही है। घोर टॉर्चर।”[64] <ÃÖß ÛÃ£Ö×ŸÖ ´Ö ¯Ö×ŸÖ-पत्नी के संबंध सतही ही कहे जाएँगे। दरअसल वाना शिवेश से प्रेम नहीं करती, वह न चाहते हुए भी इस रिश्ते को ढो मात्र रही है। एक स्थान पर वह कहती भी है - “शिवेश को बाप ने पकड़ा दिया, मैं एक पशु की तरह चली आई, जो बचपन से, समाज ने शिक्षा दी, वही लीक पकड़कर चलती रही।”[65]

वाना के मन में राहुल के प्रति तीव्र आकर्षण है और राहुल भी वाना को पूरे तन-मन से चाहता है। शिवेश के पलायन करने पर राहुल ही शिवेश के परिवार की देखभाल करता है। राहुल और वाना की नज़दीकियाँ बढ़ जाती हैं। अंतत: शिवेश के लौटने पर वाना साफ़-ÃÖÖ±ú कह देती है कि वह उसे छोड़ रही है। निराश शिवेश आत्महत्या कर लेता है। राहुल वाना को दो बच्चों समेत स्वीकार करता है। उपन्यास में अंजी-असलम अहमद तथा ग्रेस-जॅक आदि के माध्यम से लेखिका ने यह स्पष्ट कर दिया है कि विवाह संबंध में आज जन्म-जन्मांतर ¾ÖÖ»Öß ²ÖÖŸÖ नहीं रही है, वह जब चाहे जोड़ा और तोड़ा जा सकता है। एक नर्स के चक्कर में पड़कर डॉ.असलम अंजी को तलाक़ देता है, तो शैली से संबंध जुड़ने के कारण जॅक ग्रेस को। यहाँ उम्र ³Öß कोई व्यवधान उपस्थित नहीं करती। जॅक बुढ़ा होने के बावजूद जवान स्त्री के लिए अपनी पत्नी को छोड़ देता है। इस पर वाना को आश्चर्य भी होता है - “इतने बुढ़ापे में; पुरानी बीवी को छोड़कर नई ²Öß¾Öß-क्या विवाह संबंध इतनी आसानी से तोड़ा जा सकता है? क्या जब तक कोई दूसरा अधिक आकर्षक न मिले तभी तक निभाने के लिए है? और यह औरतें, शैली और वह असलम अहमद की नर्स; जानते-²Ö—ÖŸÖê विवाहित पुरुषों को फँसा लेती हैं।”[66]

‘भया कबीर उदास’ में लेखिका ने यह स्पष्ट कर दिया है कि पति-पत्नी का रिश्ता आज शरीर तक ही सीमित रह गया है। यह रिश्ता शरीर से प्रारंभ होकर शरीर पर आकर समाप्त हो जाता है। पति और पत्नी को परस्पर शरीर का ही आकर्षण है, किंतु उन्होंने यह भुला दिया है कि यह रिश्ता शरीर से परे भी है। इसे केवल शरीर तक सीमित करना हमारी स्वार्थी एवं

संकुचित दृष्टि का परिचायक है। शेषेन्द्र और ज्योति का संबंध ऐसा ही है। जब तक ज्योति ठीक थी, सब ठीक था। जैसे ही उसे कैंसर हो जाता है शेषेन्द्र अपने को उससे अलग कर लेता है। वह कहता भी है कि "मैं उन्हें वैसा सहारा या आश्वासन न दे पाया जो एक पत्नी अपने पति से अपेक्षा करती है। मैं उनसे बहुत दूर-दूर चला गया। ... और जब तक वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हुईं, हमारे संबंध एकदम टूट चुके थे, टूट चुके हैं। मु-ने यह कहने में बहुत शर्म महसÖÃÖ होती है कि मैंने उसके बाद ज्योति को निरावरण देखना ही नहीं चाहा।"[67] बीमारी में जब एक पत्नी को सबसे ज़्यादा ज़रूरत अपने पति की होती है, शेषेन्द्र उससे पीछा छुड़ाकर भागता रहा। कोमल और संवेदनशील शेषेन्द्र कैंसर के बाद अपनी पत्नी से पूरी तरह विमुख हो गया - "मैं एक तल पर रहता हूँ, वह दूसरे तल पर कई-कई दिन मुलाकात नहीं होती।"[68] पत्नी भी पति से ऊब चुकी है, उसे भी अपने पति में अब कोई रुचि नहीं है।

अपर्णा-अपूर्व के माध्यम से लेखिका ने वर्तमान परिवेश के दरकते स्नेहहीन संबंध पर प्रकाश डाला है। ज्योति के समान अपर्णा भी कैंसर से ग्रस्त है। पत्नी इस भयावह बीमारी की ¯ÖßÛ>Ö -ोल रही है, किंतु पति पर इसका कोई प्रभाव नहीं है, वह अपनी दिनचर्या में व्यस्त है। उसके चेहरे पर चिंता की कोई लकीर नहीं है। लिली को उसका ये रवैया देखकर ताज्जुब होता Æ। "लिली चाहती थी कि कभी तो अपूर्व कोई चिन्ता, कोई दुख, कोई घाटे के भाव प्रदर्शन करे, पर अपूर्व था कि उसने सब कुछ घूँट लिया था।"[69] अपर्णा जब अंतिम साँसें गिन रही थी, तब भी उसकी आँखें रीती ही थीं। रिश्तों की क्षणभंगुरता का पता तो तब चलता है, जब अपर्णा की मृत्यु का अनुष्ठान पूरा करने भारत गया हुआ अपूर्व साथ में एक नई पत्नी लेकर आ •ÖÖŸÖÖ Æ - "परन्तु अपूर्व ने तो ज़रा भी ÃÖ2Ö नहीं किया? अपर्णा की मृत्यु का अनुष्ठान करने भारत गया तो उसके साथ लौटी दुबली, पतली गोरी-सी पत्नी।"[70] तब अनायास यह अहसास होता है कि, समय ने अपर्णा के अस्तित्व को ही मिटा दिया। सचमुच, कितनी क्षणभंगुर होती है ज़िंदगी और कितनी जल्दी लोग भूल जाते हैं।[71]

क3Öß - कभी पति अथवा पत्नी का शक्की स्वभाव भी स्वस्थ पारिवारिक संबंधों में दरार पैदा करता है। वनमाली और रैनी का संबं-Ö-विच्छेद भी रैनी के शक्की स्वभाव के कारण ही होता है। रैनी आत्मनिर्भर आधुनिक स्त्री है, उसकी खुद की ट्रैवल एजेन्सी है। वनमाली होटल चलाता है, ऐसे में दोनों के अहं टकराने से संबंध चरमरा उठते हैं। अंतत: पत्नी के स्वभाव को न सह पाने की स्थिति में वनमाली उसे तलाक देता है। रैनी के साथ वनमाली के तलाक के बारे

में बताते हुए लिली की मम्मी उससे कहती है, "रैनी शायद बहुत खिटखिट करती थी। बहुत शक्की स्वभाव की थी।"[72]

इस प्रकार उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों में पति-पत्नी संबंध में आई असहजता, संबंधों का खोखलापन, दिखावे की संस्कृति, पति का स्वार्थी होना, पत्नी का अति महत्वाकांक्षी होना, घुटन, ऊब आदि से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से किया है। उनकी पारखी दृष्टि उन छोटी-छोटी बातों पर जाती है जो प्राय: संबंधों के बिखराव का अहम् कारण बन जाती है। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि वर्तमान परिवर्तित स्थिति में पति-पत्नी संबंध में एक ओर तो दुविधाओं का सिलसिला अपनी जगह विद्यमान है तो दूसरी ओर रिक्तता, विसंगति, शून्यता आदि भाव भी गहराते जा रहे हैं। संक्षेप में उन्होंने युगबोध को सूक्ष्म संवेदनाओं के साथ व्यापक फलक पर प्रस्तुत किया है।

४.५ काम-सम्बन्धों का स्वच्छन्द चित्रण :

______कÖ´Ö-भावना मानव की एक जैवीय एवं स्वाभाविक आवश्यकता है। बिना काम-भावना के सृष्टि का संचालन भी असंभव है। काम वासना फ्रायड के अनुसार अचेतन मन की सबसे प्रबल भावना है। 'कÖ´Ö' शब्द का प्रयोग प्राय: स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण संबंधी रसपूर्ण व्यवहारों के प्रति किया जाता है। जैसे भूख लगती है, प्यास लगती है, उसी प्रकार काम-भावना भी मनुष्य की एक स्वाभाविक आवश्यकता है। मन में काम-भावना के जागृत होने पर आकांक्षा †Ö¸ ŸÖÖÔ¯Öायों का मेल होता है, तब मन में प्रेम की कामना जागृत होती है। स्त्री-पुरुष दोनों मिलन के लिए व्यग्र हो जाते हैं और इसी मिलन को काम-भावना कहा जाता है, किंतु सभ्यता के विकास ने काम-भावना को अनुशासित एवं नियमबद्ध किया है।

आज कथा-साहित्य में काम-संबंधों के चित्रण के प्रति निषेध भावना में कमी आई है। कÖ´Ö-संबंध अब असामान्य न होकर सहज माने जा रहे हैं। समाज में बहुसंख्यक लोगÖÖ «Ö¸Ö ¤ÆÉ की पवित्रता को मात्र एक रूढ़िवादी विश्वास माना जाने लगा है। यही कारण है कि आज अनेक महिला-कथाकारों ने पारम्परिक नैतिकताओं के प्रति विमुखता प्रदर्शित की है। आज शिक्षित तथा बुद्धिवादी नारी, पाप और पुण्य की मान्यताओं से स्वयं को विमुख करने का प्रयास कर रही है। वह पुरुष के संग अपने संबंधों के नये अर्थ खोज रही है। विवाह के बिना भी वह

अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखना चाहती है, जिसके लिए वह सतत प्रयत्नशील दिखाई देती है। उषा प्रियंवदा ने भी अपने उपन्यासों में ऐसी ही नारियों का चित्रण किया है। उन्होंने नारी की भी काम-भावना को पुरुषों के सदृश ही सहज माना है। उनके उपन्यासों में काम-संबंधों का अंकन विकृति के रूप में न होकर, सहज एवं स्वच्छंद रूप में हुआ है।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा का नील के साथ अनायास ही जो रिश्ता जुड़ गया Æ, उसकी जड़ें वह अपने भीतर गहराई तक महसूसती है। वह स्वयं को भाग्य पर छोड़ वर्तमान का भरपूर आनंद लेती है। नील की बाँहों में सिमटकर वह अपनी परिस्थितियों को कुछ समय के लिए भूलकर सपनों की दुनिया में खो जाती है। अपने भीतर की नारी की नैसर्गिक इच्छाओं को वह खुलकर खेलने देती है। प्रस्तुत उपन्यास में सुषमा का आयु में उससे पाँच वर्ष छोटे नील के साथ विवाह पूर्व यौन संबंध रखना विकृति नहीं अपितु स्वाभाविक लगता है। अपने घुटे-४'0, जीवन की एकरसता से ऊबकर एक दुर्बलता के क्षण में उसने अपने शरीर को नील को सौंपा था - "भविष्य उनके आगे दूर तक फैला था और विगत की सारी अपूर्णता और भटकन इस क्षण में सिमट आई थी। जहाँ शब्द अनावश्यक और निरर्थक बन गए थे और साँसें एक-दूसरे को बाँधती जा रही थीं। उनकी छूती हुई उँगलियों में सारे शरीर की चेतना और संवेदना एकत्र हो गई थी।"[73] समाज के प्रति विद्रोह कर अपने व्यक्तिगत जीवन को सँवारने का सामर्थ्य न होने के कारण सुषमा नील को स्वीकार नहीं कर पाती। नील के साथ बिताए ये क्षण ही उसके जीवन की अमूल्य धरोहर बन जाते हैं। इसी धरोहर के सहारे वह पचपन खम्भों और लाल दीवारों के बीच अपना उर्वरित जीवन जीने के लिए बाध्य है।

'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका पिता से प्रतिशोध लेने के लिए स्वच्छंद आचरण करने लगती है। वह विदेशी युवक डैन के साथ विवाहपूर्व ही प्रेम और यौन संबंध रखती है। इतना ही नहीं वह उसके साथ विदेश भी चली जाती है। डैन का सहारा छूटने के बाद वह मनीष को चाहने लगती है। कुछ दिनों के बाद अक्षय को चाहने लगती है। वह अक्षय के साथ भी यौन संबंध रखती है। वह शोख तितली-सी कभी डैन, कभी मनीष तो कभी अक्षय के ‡¤-गिर्द मँड़राती रहती है। किसी एक पुरुष के साथ वह ठहर नहीं पाती। और स्वच्छंद बनकर विहार करती रहती है। शरीर-संबंध किस प्रकार ज़्यादा महत्वपूर्ण नहीं रह जाता, इस सत्य को अक्षय के पूछने पर, राधिका के जवाब में जीवन प्रवाह का साक्ष्य देते हुए बताया भी गया है - "विगत को सोचने से क्या? तब जो मैं थी, अब वह नहीं हूँ। हर समय जो बीतता है,

जीती हूँ । उसके बाद पहली-सी कहाँ रह जाती हूँ । कल भी तुम्हारे जाने के बाद ... |"[74] स्पष्ट है कि आधुनिक युग में नारी की काम संबंधी मान्यताओं में परिवर्तन आया है । वह काम संबंधों में स्वतंत्रता का समर्थन करती है ।

समाज ने पुरुष और स्त्री के लिए भिन्न-भिन्न नैतिक मूल्यों का निर्माण किया है । चूँकि समाज का नियामक पुरुष वर्ग ही रहा है । अत: समस्त पवित्रता वादी मूल्यों का भावबोध नारी के ऊपर पड़ता है । पुरुष वर्ग का बह्मचर्य खंडित होने पर किसी की उँगली नहीं उठती, परंतु नारी की पवित्रता भंग होने पर कुहराम मच जाता है । 'शेष यात्रा' का प्रणव इस पुरुष वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है । आदर्श, समर्पिता, पतिव्रता पत्नी के होते हुए भी वह नीरजा, विभा, चंद्रिका, नमिता आदि स्त्रियों के साथ स्वच्छंद रूप से यौन संबंध स्थापित करता है । पत्नी अनु को वह निरंतर प्रताड़ित करता है । अपने इस मुक्त काम-जीवन में पत्नी की बाधा उपस्थित होने पर वह उसे तलाक़ देकर निर्बाध यौन-जीवन की प्राप्ति करता है । किंतु किसी भी एक स्त्री के साथ वह अपने संबंध स्थिर नहीं कर पाता । ऐसी विषम परिस्थिति में समर्पित पत्नी की जगह पर स्वतंत्र नारी का जन्म होता है । अनु पढ़-लिखकर डॉक्टर बन जाती है | अब वह आत्मनिर्भर है किंतु अपनी शारीरिक माँगों को वह -ुठला नहीं सकती । वह डॉ.दीपांकर, जो उसे बरसों से चाहता है, की ओर आकर्षित हो जाती है। विवाह से पूर्व ही अनु और दीपांकर में यौन संबंध स्थापित हो जाते हैं - "दीपांकर ने अनु को बाँहों में भरकर सीने से लगाया।... वह एक आवेग में अनु का माथा, पलक, होंठ, ठोढ़ी, गले को बार-बार चूमने लगा। ... अनु ने अपने को दीपांकर के अंतरंग सामीप्य के लिए तैयार कर लिया। उसने दीपांकर की टाई खोलकर काउच के हत्थे पर डाल दी, और बहुत हल्के-हल्के उसकी कमीज़ के बटन खोलने लगी। ... दीपांकर की शर्मीली उँगलियाँ उसके क[illegible] र रही थीं। अनु के मन में दीपांकर के लिए कहीं कोमलता और लाड़ फड़फड़ाने लगा, चिड़िया के नये बच्चे की तरह, सामने की दुनिया में कच्चे पंख पसारकर उड़ने को उत्सुक, साथ में भयभीत| [illegible] दीपांकर अनु को कसकर पकड़े था, ... पिछले दस-बारह घंटों से ... लगातार .. कितनी बार ..."[75]

'[illegible]' में उषा प्रियंवदा ने काम-संबंधों का खुलकर चित्रण किया है। राहुल रत्ना की ओर आकर्षित हो जाता है। किशोरावस्था का यह प्रेम-संबंध दीवानगी की हद तक पहुँच जाता है। राहुल और रत्ना मंदिर के पासवाली कोठरी में नियमित रूप से शरीर सुख का आनंद लेते

Æ - "ÃÖ²ÖÃÖ पहले उसने किवाड़ बन्द कर दिये - फिर पुरानी, जंग लगी साँकल भी लगा दी। जब वह मुड़ा तो पाया कि वह अर्धअनावृत्त है। उसने साड़ी का पल्ला नीचे ज़मीन पर गिरा दिया है। वह अपना ब्लाउज़ उतार रही है, उसने हाथ बढ़ाकर राहुल को अपनी ओर खींच लिया, या राहुल ही उसकी ओर बढ़ गया; इसका अन्तर उस पागल छटपटाते, आवेग भरे क्षण में डूब गया। खटिया चरमराई पर उन दोनों के भार से टूटी नहीं। राहुल उसके शरीर को हलके-हलके सहला रहा है, जैसे पहली पहचान बना रहा है। उसकी हथेलियाँ तप रही हैं; और वह उसकी बाँहों में बँधी चुप है। उसकी उद्विग्न, तप्त साँसें राहुल के चेहरे को बींध रहीं हैं - ¾ÖÆ -Öß¸--Öß¸ ^ÃÖ "Ö´ÖŸÖÖ Æ, ¯ÖÆ»Ö ´ÖÖ£ÖÖ, ×±ü¸ ³ÖÖÆ, ´ÖÖ™ß-मोटी पलक ढ़ली आँखें; फिर होठ, और फिर उसके अपने होठ उसके वक्ष को पा जाते हैं। पहले वह चूमता है, हलके-हलके अपनी जुबान की नोक से उन्हें चाटता है। तब उसकी बाँहें राहुल के ईर्द गिर्द और कस जाती हैं। राहुल उसके कंधों पर हाथ रखकर उसे आधा बैठा लेता है; पर वह फिर खटिया पर गिर •ÖÖŸÖß Æ - वह उसे फिर खिंच लेता है, दोनों आपस में गुँथे हुए बच्चों के -नूले पर बैठे आगे-¯Öß" -Ö»ÖŸÖ Æ ..."[76] यहाँ राहुल और रत्ना के संबंधों में प्राकृतिक तीव्रता और भावभरा शारीरिक उन्मेष है।

¾ÖŸÖ´Ö ान सामाजिक स्थिति में नारी और पुरुष के संबंध में क्या -नूठ है, क्या सच है, इसे वाना एवं शिवेश के संबंधों द्वारा आसानी से सम-ना जा सकता है। विवाह में स्त्री-पुरुष के शारीरिक संबंध का होना ही पर्याप्त नहीं वरन् एक दूसरे को जानना भी अनिवार्य है। इसी कारण से वाना का शिवेश की पत्नी होना एक पारिवारिक सत्य अवश्य है। परंतु उसके मन की आंतरिक कटुता उनके वैवाहिक बंधन को भौतिकता कß ¥ÛÂ™ ÃÖ -नूठा सिद्ध कर देती है। शिवेश के ग़ैर ज़िम्मेदाराना रवैये और प्रेमविरहित यौनाचार से वाना त्रस्त है - "शिवेश ने उसे अपनी और खींच लिया। शिवेश के होठ उसे कुचल रहे हैं। लोभी हÖ£Ö ^ÃÖ ´ÖÃÖ»Ö ¸Æ Æ - वाना शिवेश के भार को चुपचाप बरदाश्त करती है। यही तो है यहाँ की नियति। वहाँ से यहाँ पहुँचने का मूल्य। हरेक चीज़ का मूल्य चुकाना पड़ता है। तुम कुछ भी, चुपचाप, बिना किसी के जाने, दुकान से कुछ भी उठाकर थैले में नहीं छुपा सकती।"[77] दरअसल वाना पत्नी होने का, विदेश लाये जाने का मूल्य चुकाती है। पति-पत्नी संबंधों में यहाँ प्रेम की अपेक्षा ²Ö»ÖÖत्कार की अनुगूंज पैदा होती है। वाना महसूस करती है कि एकतरफ "उसका पति उसे प्यार कर रहा है, और वह स्वयं अपने शरीर से कितनी दूर कितनी अलग हो आई है।[78] ^ÃÖ

शिवेश से वितृष्णा हो जाती है और वह मन ही मन विद्रोह कर उठती है, "वाना मन ही मन विद्रोह कर रही है, कितनी हड़बड़ रहती है इन्हें, जुट जाते हैं अपने सुख में। पूरा कपड़ा अलग करने का समय भी नहीं लेते। मेरा भी शरीर है, उसे भी दुलार-प्यार की माँग है। नहीं, ´Ö पत्नी हूँ, -ुलाने, खिलाने, -ेलने के लिए।"[79]

ऐसी स्थिति में वाना क्रिस्तीन के साथ समलैंगिक संबंध में अपने होने और किसी के द्वारा चाहे जाने के सुख का अनुभव करती है। इंच-इंच मरती हुई वाना को क्रिस्तीन से वह स्नेह और सहानुभूति मिलती है, जिसकी वह भूखी थी - "क्रिस्तीन उस पर -ुकी हुई है - ¾ÖÆ -ीनी सिल्क का ड्रेसिंग गाउन पहने है जो -ुकने से पीछे गिर गया है और वाना क्रिस्तीन के अनावृत्त शरीर को देख सकती है। उसकी दृष्टि क्रिस्तीन के छोटे-छोटे, एकदम गोल और उन्नत सफ़ेदी लिए कुच पर एक बहुत छोटे क्षण के लिए टिकती है, क्रिस्तीन दायें हाथ से वाना की ब्लाउज़ के बटन खोल रही है, वह अधीर है और बाएँ हाथ से अपने गुलाबी कुचाग्रों को स्वयं दुलरा रही है - फिर वह वाना के वक्ष में अपना चेहरा छिपा लेती है। वाना उसकी तेज़, गरम साँसें महसूस करती है और अनुभव करती है क्रिस्तीन की जीभ का सिरा उसे चूम रहा है, एक मीठी, अनजानी मगर सिहरनपूर्ण सनसनी से वाना का शरीर काँपने लगता है। उसकी बाँहें अपने आप क्रिस्तीन को घेर लेती हैं। उनके होठ एक-¤Ã¾ÖÖरे को बार-बार चूमते हैं; और हथेलियाँ एक पागल आग्रह से एक-दूसरे को सहलाती, दुलराती और खरोंचती हैं। ... आग के प्रकाश में उनके अनावृत्त शरीर गुलाबी और सुनहली आभा से जगमगाते हैं।"[80]

क्रिस्तीन के साथ प्रेम संबंध की बात वाना के सोच के परे थी, लेकिन आज वह यथार्थ है - "क्रिस्तीन का साथ इतना देहसुख दे सकता है? पर यह सच है, और साक्षी है वाना की स्वयं अपनी देह।"[81] वाना पहली बार अनुभव करती है कि "स्त्री शरीर! निर्वस्त्र, नग्न! कितना सुंदर; कितनी विचित्र बात है कि वह पुरुषों को भी आकर्षित करता है और स्त्रियों को भी। देहसुख के लिए पुरुष की आवश्यकता नहीं, वह केवल संतान के लिए चाहिए।"[82] किंतु फिर भी समलैंगिक संबंध में प्रवृत्ति न होने के कारण वह क्रिस्तीन के साथ जाने से इन्कार कर देती है। इस एक बार की घटना से उषा जी समलैंगिकता की न तो कोई वकालत करती हैं और न वे इसकी राजनीति ही चलाना चाहती हैं।

वाना के मन में राहुल के प्रति तीव्र आकर्षण है और राहुल भी वाना को चाहता है। होटल के बाथरूम में नग्न वाना अपने सौंदर्य पर इतनी खुश हो जाती है कि जल्दी म "Ö»ÖÖ

आयी देवप्रिया की सुहागसाड़ी को लपेट लेती है और अपने सौंदर्य पर मुग्ध हो जाती है। मुग्धा नायिका के रूप में वह राहुल के सामने अभिसारिका की भाँति प्रकट होती है। तब एक बार ×±ú¸ ˆ¾Öशी और विश्वामित्र के अभिसार का दृश्य प्रस्तुत होता है, शकुंतला नाटक की याद ताज़ा हो उठती है। राहुल का तप भंग होता है - "वाना ने हथेली से राहुल के दरवाज़े को ठेला है, दरवाज़ा अपने आप निशब्द खुल गया है।... राहुल ने हाथ बढ़ाकर उसको अपनी ओर खींचा है और वह एक अदम्य नदी की धारा की तरह उसके ऊपर आ गिरी है। ... राहुल के होठ सूखे हैं, तप्त; वाना उन्हें चूमती है और वह दोनों आपस में उल-न कर रह जाते हैं। कौन किसको कैसे प्यार कर रहा है, उसका किसी को न बोध है न -ग़ान। शरीर एक-दूसरे को पी रहे हैं; उनकी अपनी इच्छाएँ, अपनी ज़रूरतें हैं। वाना बस अपने शरीरसुख में डूबी हुई है, राहुल की कसी बाँहों की पकड़ ..."[83]

उषा जी की नायिकाएँ परम्परागत नहीं अपितु आधुनिक हैं। वे पुरुष के लिए उपभोग की सामग्री मात्र नहीं हैं; अपितु उसे वे अपने उपभोग का साधन भी बनाती हैं। काम-संबंधों के अंतर्गत वे अपने शरीर को पुरुष के सम्मुख समर्पित नहीं करतीं, बल्कि बराबर की सा-Ö¤Ö¸ß निभाती हैं। वे पुरुष देहसुख का पूर्ण आनंद लूटती हुई नज़र आती हैं - "वाना की बाहों की पकड़ कड़ी हो जाती है अब वह प्यार करेगी, केवल अपने लिए, अपनी तुष्टि के लिए। वह राहुल के ऊपर औंधी पड़ी है, -ुककर उसने अपनी जीभ की कोर से राहुल की पलकों को चूमा Æ, ×±ú¸ ˆÃने राहुल को अपनी ओर खींच लिया है। वाना धीरे-¬Öß¸, "Ö™-छोटे चुम्बनों से उसका चेहरा भर देती है ... उसे अब कुछ नहीं चाहिए - बस, राहुल यों ही उसकी बाँहों के पाश ´Ö ²Ö¬ÖÖ ¯Ö>Ö ¸Æ †Ö¸ ¾ÖÆ उसके थरथराते होठों को यों ही चूमती रहे ..."[84]

इतना ही नहीं ये नायिकाएँ आगे बढ़कर पुरुष को काम-संबंधों के लिए अपनी शय्या पर आमंत्रित भी करती हैं। 'भया कबीर उदास' की लिली कैंसर से पीड़िŸÖ Æ †Ö¸ •Ö»¤ Æß ¾ÖÆ अपने शरीर के सबसे प्रिय अंग, अपने वक्षों को सर्जरी के पश्चात् खो देने वाली है। वह सर्जरी से पूर्व शरीरसुख का पूर्ण आनंद लेना चाहती है। अत: वह खुलकर शेषेन्द्र को काम संबंधों के लिए आमंत्रण देती है - "पहले भी आकर्षक पुरूष मिले हैं; परन्तु किसी को यों आगे बढ़कर नहीं आमंत्रित किया है अपनी शय्या पर।"[85] पुरुष का सामीप्य-सुख बटोरने के लिए वह शेषेन्द्र का ‡ÃŸÖ´ÖÖल करती है। वर्षों से सँजोए अपने कौमार्य को विवाहपूर्व ही नष्ट करने में उसे कोई संकोच अथवा उसके भीतर कोई लज्जा का भाव नहीं है।

लिली सर्जरी से पूर्व शेषेन्द्र के साथ, तो सर्जरी के पश्चात् वनमाली के साथ काम-ÃÖ²Ö-Ö स्थापित करती है। सर्जरी के पश्चात् अपने उन्नत वक्षों को खो देने के कारण वह अपने को अपूर्ण महसूस करती है। ऐसे में वनमाली से उसे सहारा मिलता है। वनमाली बचपन ÃÖ ÆÛ लिली की ओर आकर्षित है। सच्चे प्रेमी की तरह वह लिली को उसके अभावों सहित ग्रहण करता है - "वनमाली ने उसे सहारा देकर उठाया; फिर उसे ले जाकर पलंग पर लिटा दिया। यमन (लिली) का शरीर मौन सिसकियों से हिल रहा था ... उसने अपना वक्ष ढकने की कोशिश की पर वनमाली के दृढ़ हाथों ने उसे वैसा ही अनावृत्त रहने दिया, मृदुल उँगलियों से उन टेढ़े, तिरछे, गहरे घावों के अभी तक ताज़े से लगने वाले दाग़ों को उकेरा, और फिर -ुककर उसे चूमने लगा; पहले होंठ, फिर गर्दन और फिर नीचे, जहाँ वक्ष नहीं थे; उसने बार-बार उन दाग़ों को चूमा और सहलाया।"[86]

अत: स्पष्ट है कि आज प्राचीन सांस्कृतिक मान्यताओं के ध्वंस पर नवीन बन्धन-विहीन नैतिकता उभर रही है। नारी-समाज में मुक्त यौन-संबंधों के प्रति आग्रह बढ़ रहा है। इसका एक मात्र कारण पुरुषों के शासन से मुक्त, उन्हीं के समान यौन-व्यापार की स्वतंत्रता प्राप्त करना है। इसकी जो एक तात्कालिक प्रतिक्रिया दृष्टिगोचर हो रही Æ ¾ÖÆ Æ - ™™Ÿö Æ‹ सामाजिक संबंध। इसके साथ ही यह भी एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि नारी क्या सचमुच पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर सकी है?

उत्तर चाहे जो भी हो, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अभी तक व्यक्तित्व की विराटता एवं विशिष्टता का जो सर्वाधिकार पुरुषों के पास था, वह सही अर्थों में नारियों तक भी पहुँचा और पहली बार इनके स्वतंत्र-चेता मानस एवं स्वाधीन व्यक्तित्व की नयी प्रवृत्तियाँ ¥ÛÂ™गोचर हुईं। अब नारियाँ कहीं भी 'कोने में पड़ी रहने वाली मैले कपड़ों की गठरी' नहीं सिद्ध हुईं और प्रत्येक क्षेत्र में उनका स्पष्ट योगदान सामने आया। इससे दोनों वर्गों के बीच समानता की भावना सर्वथा नये परिप्रेक्ष्य में उपस्थित हुई।

४.६ योग्य जीवनसाथी के चयन की स्वतंत्रता :

हिंदी उपन्यासों में नारी उपेक्षिता एवं दीन-हीन चित्रित की जाती रही है। वह सदियों ÃÖ "Ö»ÖÛ †Ö ¸ÆÛ ¯Ö¸´¯Ö¸Ö†Ö, †-Ö×¾ÖÀ¾ासों और रूढ़ियों से मुक्त नहीं हो पायी थी।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में वह एक सर्वथा भिन्न धरातल पर अवस्थित पायी जाती है। ˆÃÖ´Ö ‘Ã¾Ö’ की पहचान की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। प्राचीन मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह का स्वर प्रमुख हो रहा है। घर गृहस्थी के दमघोट वातावरण से मुक्त होने के लिए वह छटपटा रही है। शिक्षा के प्रसार के साथ उसमें स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास की कामना प्रबल हुई है। समाज में समानता का अधिकार पाने के लिए वह कृतसंकल्प दिखती है। अपनी समस्याओं को व्यक्तिगत ही सम-ाकर उन्हें सुल-ाने के लिए जीवन-ÃÖ‘ÖÂÖ ´Ö ¾ÖÆ ˆ»Ö–ा गई है। अपने विचारों में वह अब स्वतंत्र बनती जा रही है। विवाह नारी के जीवन का एक आवश्यक अंग माना •ÖÖŸÖÖ है किंतु आधुनिक नारी आज परंपरागत ढंग से विवाह की वेदी पर खड़ी रहना नहीं चाहती। विवाह संस्था के एकपक्षीय दायित्व का अस्वीकार वह कर रही है। आज वह अपना जीवनसाथी स्वयं चुनने का अधिकार रखती है।

विवाह अथवा योग्य जीवन साथी का चुनाव नारी जीवन का एक विशिष्ट पक्ष है। सोचा जाये, तो यह वह पक्ष है, जिस पर नारी का प्राय: पूरा जीवन ही आधारित होता है। अपने जन्म के घर से उठकर किसी दूसरे घर में जाकर बसना इतना आसान नहीं होता। सदा-सदा से ऐसा होते आने के कारण ऐसा दिखता अवश्य है, पर इसे जीने-सहने में कम मुश्किलें नहीं होतीं। फिर आज के समाज में जब स्त्री की शिक्षा आदि से जागरूकता आयी है, उसका अपना व्यक्तित्व बना है तब नये घर में संतुलन-समायोजन की समस्याएँ और अधिक बढ़ने लग गयी हैं। ऐसे में जीवनसाथी के चुनाव का महत्व और अधिक बढ़ गया है। यह भी कहा जा सकता है कि योग्य जीवनसाथी का चुनाव हो गया, तो पूरे जीवन की बात बन गयी।

विवाह में जीवनसाथी के चुनाव को लेकर एक समूचा चिंतन उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों के माध्यम से व्यक्त किया है। चूँकि नारी जाति की यातनाओं का सर्वाधिक प्रबल पक्ष इसी विवाह से जुड़ा है, अत: यह विचार अपनी ज़हनियत में बहुत उपयोगी है। वे साथी के चुनाव में आपसी पसंद को सबसे प्रथम कारक बनाती हैं और इस चुनाव के बीच उम्र का भेद, •ÖÖ×ŸÖ-पाँति का मेल तो नहीं ही होता, विवाह पूर्व शरीर-संबंधों तक को वे महत्व नहीं देतीं। सुषमा से छह साल छोटा है नील। डैन उन्नीसÖ-बीस साल बड़ा है राधिका से। विद्या इतनी ही छोटी है अपने पति से। लेकिन ये सब संबंध दोनों की मर्ज़ी-पसंद के चुनाव से बनते हैं। सभी खुद चुनते हैं और उसके पहले कुछ दिन या काफ़ी दिन एक दूसरे को सम-ा चुके होते हैं। माँ-

बाप द्वारा आयोजित बिना देखे हुए अनु के विवाह व मनीष की मंगनी की पूरी असफलता इस पद्धति को एकदम से खारिज करने के प्रमाण हैं।

उषा प्रियंवदा के जीवन साथी के चयन विषयक चिंतन पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा यदि योग्य जीवनसाथी का चयन नहीं कर पाती - पाकर भी उसे अपना नहीं पाती तो इसका कारण उसके निम्न मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति है। उसके जीवन में दो पुरुषों का प्रवेश होता है, किंतु कहीं उसे अस्वीकार किया जाता है, तो कहीं वह किसी और को मजबूरन अस्वीकार करती है। जीवन के एक विशिष्ट और नाजुक´ÖÖ> ¯Ö¸, उन्नीस वर्ष की आयु में उसके अपने पड़ोसी नारायण की ओर से भावनात्मक संबंध बन गया था। इसका भावनात्मक प्रतिदान भी उसे नारायण की ओर से भरपूर मिला था। परंतु जब सुषमा की माँ ने उन लोगों के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा तो लड़के के पिता ने स्पष्ट शब्दों में उसे ठुकरा दिया। लड़के के पिता अपने पुत्र का रिश्ता किसी उँचे घराने में करना चाहते थे। इससे सुषमा को ठेस पहुँची थी। उसके बाद तो माता-पिता ने उसके लिए और कोई उचित वर खोजने का प्रयत्न ही नहीं किया था। सुषमा भी सब कुछ भूलकर अपनी नौकरी और पारिवारिक उत्तरदायित्वों को सँभालने में लग गई थीß|

विवाहपूर्व ही सुषमा की कोमलतम भावनाएँ मुर-ा जाती हैं। वह नीरस जीवन बिताती रहती है। ऐसे में नील नामक एक सुंदर आकर्षक युवक का उसके जीवन में प्रवेश होता है। सुषमा के रूखे-सूखे जीवन में पुनश्च हरियाली पैदा होती है। वह मन ही मन नील को बेहद चाहने लगती है और नील भी उसे अपना लाईफ-पार्टनर बनाने का इरादा करता है। किंतु बीमार पिता की सबसे बड़ी संतान सुषमा अपने छोटे भाई-बहनों एवं माँ-पिता को छोड़ नहीं सकती थी। उनके पालन-पोषण के लिए ही सुषमा नील को अस्वीकार करती है। इस प्रकार सुषमा ने योग्य जीवनसाथी मिलने पर भी उससे विवाह नहीं किया और पूरे समाज में सराही गयी। सुषमा को अंतत: विवश होकर यह कहना पड़ा कि - "जीवन में बहुत महत्वपूर्ण काम हैं; सिर्फ विवाह ही तो नहीं।"[87] आज भी हमारे पारंपरिक मूल्य इस त्याग व सेवा की भूरि-3Öx¸ प्रशंसा करते नहीं थकेंगे। लेकिन सुषमा की स्थिति एवं विवशता से सीख लेकर उषा प्रियंवदा ने 'रुकोगी नहीं राधिका' में राधिका जैसे चरित्र को खड़ा किया। उसे पारिवारिक ज़िम्मेदारियों से मुक्त रखा। योग्य जीवनसाथी पाने एवं उसकी तलाश के लिए जिन पड़ावों से गुज़रना पड़ सकता है, उसके लिए पर्याप्त संभव समाज में राधिका को पैदा किया-यानी शहर के उच्चवर्ग में।

वहाँ जन्मी-¯ालीं राधिका जो-जो कुछ करती है, वह शायद सारे देश की सब राधिकाएँ न कर पायें; परंतु योग्य जीवनसाथी को पाने की प्रक्रिया एवं मूल्यों की यह तलाश विचार एवं प्रवृत्ति के †Ö-ÖÖ¸ ¯Ö¸ ÃÖÆß ŠÆ¸ÝÖß Æ। सही मूल्य एवं समान अधिकार व व्यवहारवाला समाज बनाना ही इस उपन्यास का लक्ष्य है। जब राधिका जैसी स्थिति हर लड़की के लिए सुलभ हो सकेगी, तभी सच्चे अर्थों में नारी-स्वातंत्र्य का सपना साकार होगÖ |

राधिका के जीवन में तीन पुरुष आते हैं किंतु अंततः योग्य जीवनसाथी के रूप में वह मनीष का ही चयन करती है। मनीष के साथ राधिका के संबंध का सबसे कमनीय पक्ष यह है कि "दोनों में एक सख्य भाव है, संबंधों में एक सहजता ... दोनों एक दूसरे को बहुत समय से जानते हैं, बहुत संदर्भों में मनीष ने अपने को राधिका के मूड में ढाल लिया है।"[88] ध्यातव्य है कि यह ढालना हमारे यहाँ सिर्फ स्त्री-¯ाक्ष से ही होने की प्रबल अवधारणा आज भी कायम है। इनका यह निर्णय आकस्मिक भी नहीं है और उत्तेजना व प्रतिक्रिया में भी नहीं लिया गया है - जैसा कि डेनियल के साथ था। उनमें परस्पर आकर्षण का सूक्ष्म सिलसिला भी देखा जा सकता है। मनीष तो डेनियल के साथ राधिका को पहली बार देखने के बाद से ही उसके प्रति आकृष्ट रहा और राधिका भी न ही सिर्फ़ जान बू-ाकर उसके साथ बैठती है, वरन् मनीष के हल्के-ÃÖ स्पर्श से फुँक उठती है, क्योंकि वह उसका वांछित पुरुष है। इसी तरह कहने पर कार में मनीष के समीप खिसकते हुए "राधिका जानती थी कि वह चाह रही है कि मनीष उसे बाहों में ले ले, ¯Ö¸ ¾Öह यह भी जानती थी कि वह प्रतिवाद अवश्य करेगी।"[89] चाहत का यह द्वंद्व, भावनाओं की आँख मिचौली, आकर्षण नहीं, प्यार नहीं, तो और क्या है? राधिका के मन में मनीष के लिए जो वर्जना भाव था, वह साल भर में कई लड़कियाँ बदलने की उसकी लत के कारण था। इस अस्थिरता के कारण वह सशंक, अतः विरत थी। परंतु जब जान गयी कि उसे लेकर मनीष गंभीर है, तो फिर साथ रहने के पिता के प्रस्ताव पर वह कÆ ÆŠ ¤ÝÖß Æ - "पापा मैं जाना चाहती हूँ ... मनीष मेरे एक बंधु - "[90] क्योंकि तब तक वह अपने जीवनसाथी का चुनाव कर चुकी है और जानती है कि उसे कहाँ जाना है।

राधिका के माध्यम से भारतीय समाज में ऐसी स्थिति दिखाने के बाद 'शेष यात्रा' ´Ö इसी चयन एवं स्वातंत्र्य को अमेरिका में गयी-बसी लड़की अनु के माध्यम से दिखाया गया है। अमेरिका में बसा अनु का पति भारत से उसे ब्याह कर ले जाता है। अनु मध्यवर्गीय परिवार की सामान्य लड़की है। फिर भी अमेरिका का डॉ.प्रणव उसे पसंद करता है। क्योंकि वह एक ऐसी

पत्नी चाहता है जो गुड़िया बनकर घर में बैठी रहे, जो उसके मामलों में टाँग न अड़ाये। दरअसल प्रणव के कई औरतों के साथ विवाहेतर संबंध हैं। इसलिए वह एक मूर्ख पत्नी चाहता था, जिससे उसके इन संबंधों को कोई क्षति न पहुँचे। वह अनु से कहता भी है - “´Ö–े एक बेवकूफ लड़की जो चाहिए थी। तुम्हें देखकर ही जान गया कि तुम काफी मूर्ख हो।”[91] अनु एक परम्परागत युवती की भूमिका निभाते हुए घरवालों की इच्छानुसार उनके कहने पर प्रणव के साथ विवाह करती है। वास्तव में यह रिश्ता घरवालों द्वारा थोपा गया है। उषाजी ने यहाँ यह भी स्पष्ट किया है कि परम्परागत विवाह-व्यवस्था आज कितनी खोखली प्रतीत हो रही है। बी.एससी. में पढ़नेवाली लड़की की अचानक शादी तय हो जाती है और उसे पढ़ाई, घर, देश छोड़कर जाना पड़ता है। पलक -ापकते ही अनु की दुनिया बदल जाती है। किंतु ऐसे विवाह का खामियाज़ा अकसर लड़की को ही भुगतना पड़ता है। प्रणव चंद्रिका की ओर आकर्षित हो जाता है और अनु को तलाक़ दे देता है। पति को ही सर्वस्व मानने वाली समर्पिता पत्नी पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता है। विदेशी भूमि पर वह नितांत अकेली हो जाती है | परिस्थितियों का सामना करने के लिए वह आत्मनिर्भर भी नहीं है।

विवाह के टूटने पर स्वयं को निर्दोष साबित करते हुए प्रणव भारतीय विवाह-¯Ö¨ ×¾Ö ¯Ö¸ ही आरोप लगाता है - “ऐसी शादियाँ हमेशा रिस्क होती हैं; एक छोटी-सी मुलाकात, सिर्फ़ चेहरा देखकर पसंद कर लेना, आगे स्वभाव कैसा निकलेगा, पटेगी या नहीं। यह सब कहना बड़ा मुश्किल होता है।”[92] पति द्वारा त्याग दिए जाने पर अनु नारी की परंपरागत सामर्थ्यहीनता को अनुकरणीय रूप में तोड़ती है। वह साहस और संघर्ष से अपनी दारुण नियति को बदलने में कामयाब हो जाती है। आगे पढ़कर अनु प्रणव के समान डॉक्टर बनती है। इतना ही नहीं अपनी पसंद से डॉ.दीपांकर को जीवनसाथी चुनती है और सुखी-संतुष्ट होती है। इस प्रकार भारतीय निम्नमध्यवर्ग (सुषमा) से लेकर उच्चवर्ग (राधिका) से होते हुए अप्रवासी भारतीयों तक के विभिन्न समाजों में नारी-स्वातंत्र्य की तलाश की यह विवेचना ज़रूरी भी है और सही भी। यह तलाश ‘†ŸÖ¾Ö¿ÖÖß’ में जीवनसाथी को कई वर्षों बाद दो बच्चों की माँ होने के बावजूद छोड़कर अपने प्रेमी को पाने के साथ पूरी होती है। बाकी सारी रुकावटें व रूढ़ियों के बंधन राधिका ही तोड़ चुकी थी। एक विवाह बचा था ‘†ŸÖ¾Ö¿ÖÖß’ में यह भी टूटा और उषा प्रियंवदा की विचार-यात्रा की एक मुकम्मल तस्वीर बनी |

'शेष यात्रा' में भी विवाह टूटा था, किन्तु उसे हमेशा की तरह पुरुष ने ही तोड़ा था। लेकिन अब स्थितियाँ बदल चुकी हैं। नारी अब इतनी सक्षम हो चुकी है कि विवाह के कई वर्षों के बाद भी ग़ैर ज़िम्मेदार पति को छोड़कर एक नये जीवन साथी का वरण वह कर सकती है। '†ŸÖ¾Ö¿ÖÞ' की वाना ऐसी ही आधुनिक नारी है। बनारस की वाना का विवाह भी अनु के समान ही होता है। किंतु यहाँ थोड़ा-ÃÖÖ बदलाव है। वाना को देखने आये शिवेश और राहुल में से वाना को लगता है कि राहुल ही उसका वर है। किन्तु होता उल्टा ही है। शिवेश जिसे वाना ने देखा भी नहीं था, के साथ उसका विवाह हो जाता है। विवाह के पश्चात् वाना 'Ã¾Ö' के अस्तित्व को मिटाकर स्वयं को पति और बच्चों के लिए समर्पित कर देती है। किंतु अकर्मण्य पति के कारण परिवार का बो-न उसके कंधों पर आ गिरता है। आर्थिक विपन्नता के कारण वाना को आत्मनिर्भर बनना पड़ता है। उसे शिवेश से वितृष्णा हो जाती है। अंतत: वह ग़ैर-ज़िम्मेदार शिवेश को छोड़ने का निर्णय लेती है। राहुल के रूप में उसने अपना योग्य जीवनसाथी चुन लिया है। उसके चुनाव में उसके दो बच्चों के कारण भी कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती। राहुल उसके बच्चों के साथ उसे स्वीकार करता है। इस प्रकार विवाह का बंधन आज जन्म-जन्मांतर वाला नहीं रहा, जिसे अंत तक हर हाल में नारी को नसीब को दोष देते हुए ढोना ही है। अपितु यदि गलत व्यक्ति के साथ गठबंधन हुआ तो उस बंधन को तोड़कर पुनश्च योग्य जीवनसाथी का चुनाव कर सुखी जीवन जीने के लिए आज की नारी पूर्ण स्वतंत्र है।

'भया कबीर उदास' में लिली वनमाली के चुनाव को लेकर द्वंद्वग्रस्त है। वह नहीं चाहती कि वनमाली उसके अपूर्ण शरीर को विवशतावश स्वीकार करे। वह किसी की दया न्ÖÆà "ÖÖÆŸÖß। किंतु वनमाली के सच्चे प्रेम को देखकर वह भी उसको स्वीकार करती है। यहाँ लिली भी वनमाली का जीवनसाथी के रूप में चयन कर परम्परागत उँच-नीच, जाति-पाँति के भेद को x´Ö™Ö ¤ŸÖß Æî। क्योंकि वनमाली उसके हेडमाली का बेटा बन्नू है। यहाँ केवल लिली का परिवर्तित दृष्टिकोण नहीं है, अपितु उसकी माँ भी अपनी आधुनिकता का परिचय देती है। यदि परम्परागत दृष्टिकोण वाली माँ होती तो इस संबंध को कदापि स्वीकार न करती क्योंकि वनमाली उनके नौकर का बेटा है और दोनों के खानदान में ज़मीन आसमान का अंतर है। किंतु लिली की माँ ही उसे वनमाली के साथ विवाह के लिए प्रोत्साहित करती है - "...यह बात ज़रूर है कि अगर तुम्हारे पापा होते तो कभी यह संबंध मंज़ूर न करते। मगर उस तरह सोचने से क्यÖ फ़ायदा। उन्हें प्रैक्टिकल और रियलिस्ट होना चाहिए। बन्नू एक अच्छे इंसान हैं; करुण

और दयालु। तुम्हें अच्छी तरह रखेंगे। ऐसे सोचो कि इस उम्र और इस बीमारी के साथ तुम्हें एक कम्पैनियन एक साथी की ज़रूरत है।"[93] इस प्रकार वनमाली लिली को उसके अभावों ÃÖ×ÆüŸÖ स्वीकार करता है, तो लिली भी रैनी के साथ वनमाली के पूर्व संबंधों को माइंड न करते हुए उसे अपना लेती है।

उषा प्रियवंदा के इस विषयक चिंतन में कई आयाम समाहित हुए हैं - आत्मनिर्भरता इसका पहला और सबसे अनिवार्य चरण है। इसके बिना कोई अधिकार या समानता संभव नहीं। सुषमा, राधिका, वाना, लिली आत्मनिर्भर हैं। अनु आत्मनिर्भर न होने के कारण ही पति द्वारा छोड़ दिये जाने का कष्ट पाती है। और आत्मनिर्भर होकर ही दूसरी बार विवाह कर पाती है। आत्मनिर्भरता के साथ ही दोनों के मन में एक दूसरे के पसंद का भाव भी उतना ही ज़रूरी है। पसंद के बाद साहचर्य व इन दोनों भावों के चलते प्रेम की स्थिति भी इस संबंध का मानक है। उक्त आयामों के बीच जाति-¬Ö´Ö, ˆ“Ö-नीच अथवा उम्र का बंधन भी नहीं आता। और सबसे ज़रूरी है कि उस समावेशों के साथ अतीत को कुरेदकर उससे न बिदकना या न कुंठित होना। जैसे हैं; उसी रूप में स्वीकार। इसी से जुड़ा है - यौन पावित्र्य। अतीत का मामला मुख्यतः यही होता है - विवाहपूर्व किसी से शरीर संबंध। किंतु मनीष, दीपांकर, राहु»Ö, वनमाली व राधिका, वाना, लिली आदि के लिए यह कोई इतनी बड़ी बात नहीं है। इन सभी के मस्तिष्क में पूर्वग्रह के लिए भी कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार इतने आयामों के साथ नारी स्वातंत्र्य की राह में योग्य जीवनसाथी की चयन प्रक्रिया एवं इसके आधारों का आकलन पूर्ण ÆÖŸÖÖ Æ |

४.७ घुटन, संत्रास, निराशा, शून्यता आदि का बोध :

वर्तमान युग में ज्यों-ज्यों वै-ानिक प्रगति हो रही है, त्यों-त्यों मानव जीवन की वृत्तियाँ भी परिवर्तित हो रही हैं। आज चारों ओर एक आतंकमय वातावरण व्याप्त है। अत: मानव जाति में घुटन, संत्रास, निराशा, शून्यता आदि का बोध गहराता जा रहा है। इस युग में प्रेम, स्नेह, आस्था का स्थान घृणा तथा अनास्था ने, विश्वास का स्थान अविश्वास ने, सद्‌भाव का स्थान दुर्भाव ने और श्रद्धा का स्थान अश्रद्धा ने ले लिया है। परिणामत: व्यक्ति अपनों से तथा अपने परिवेश से कटकर भीतर ही भीतर घुट रहा है। इस घुटन के कारण निराशा से घिरा

हुआ व्यक्ति स्वयं को एक शून्य की स्थिति में पा रहा है। ये सभी बातें आज संत्रास बोध के मूल में मानी जाती हैं। 'ÃÖ¡ÖÖÃÖ-²ÖÖ¬Ö' का आयाम अत्यंत विस्तृत है। डॉ.हुकुमचंद राजपाल के अनुसार "वस्तुत: यह ऐसा बोध (-ıान), अवस्था या स्थिति है जिसमें पीड़ा, निराशा, भय, कुण्ठा, असंतोष, पराजय, संशय एवं आतंक इत्यादि का समावेश रहता है।"[94] ‡ÃÖ´Öें लोकमत का भय और लघुता का बोध दिखाई देता है। वास्तव में संत्रास में अस्तित्व बोध की महत्ता को स्वीकारा गया है। विशेषतया संत्रास-बोध परिवेशगत ही माना जाता है। हेडगर के अनुसार ÃÖ¡ÖÖÃÖ से ही शून्यता उत्पन्न होती है। जब मनुष्य स्वयं से, संसार से उदासीन हो जाता है, तो वह शून्यता-बोध अनुभूत करने लगता है।

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में नारी जीवन की घुटन, निराशा, संत्रास, शून्यता आदि का बोध पाया जाता है। इनके उपन्यासों की विशेषता यह है कि इनमें अस्तित्ववाद से प्रभावित सभी स्थलों और स्थितियों का चित्रांकन भारतीय परिवेश की सापेक्षता में ही ग्रहण किया गया Æî। ¯ÖÏेम एवं वैवाहिक जीवन की असफलता, मध्यवर्गीय आर्थिक स्थिति, पति का स्वच्छंद यौन-जीवन, अनमेल विवाह, माता-पिता द्वारा किया जानेवाला उपेक्षित व्यवहार, अविवाहित एकाकी ज़िंदगी, पति की अकर्मण्यता, बीमारी से ग्रस्त शरीर, इच्छाओं-आकांक्षाओं का दमन आदि बातें नारी पात्रों में दिखाई देने वाले संत्रास, निराशा, घुटन, व्यथा आदि के मूल में हैं।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में एक भारतीय नारी की सामाजिक-†ÖÙ£Öक ×¾Ö¾Ö¿ÖŸÖÖ †Ö ÃÖ जन्मी मानसिक यंत्रणा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। सुषमा कॉलेज में प्राध्यापिका है। वह अपने प्रेमी पड़ोसी नारायण से विवाह करना चाहती है परंतु मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति ´ÖÖŸÖÖ-पिता को विवश करती है, जिससे सुषमा का प्रेम-भंग हो जाता है और उसका व्यक्तित्व खण्डित होता है। केवल पारिवारिक ज़िम्मेदारियों का बो-ı उठाकर वह अपना जीवन व्यतीत करने लगती है। इस राह पर नील नामक पुरुष उसे अपनी ओर आकर्षित करता है। दोनों हृदय से मिल जाते हैं पर जीवन का यथार्थ दोनों को अलग होने पर विवश करता है। अपने से कम उम्र वाले पुरुष नील को सुषमा जीवनसाथी बना नहीं पाती। ऐसे में संत्रस्त सुषमा को लगता है कि "वह एक दलदल में फँसकर रह गई है। वह छटपटाती है, उबरना चाहती है, पर दिन-प्रतिदिन डूबती ही जा रही है।"[95] अकेलेपन से जीवन व्यतीत करनेवाली सुषमा माँ से ममता एवं स्नेह चाहती है। परंतु ज़िंदगी की यथार्थता माँ को पूरी तरह अर्थकेंद्रित बनाती है और माँ उसकी ओर ध्यान नहीं देती। अत: चारों ओर से निराश, हताश, उदास बनी सुषमा

अपनी निराशा प्रकट करते हुए कहती है - “जिसके चारों ओर द्वार बंद हो वह क्या करे? उसी कारागार में रहता रहे, सीखचों से आती धूप और मध्दिम प्रकाश के बल पर साँसें लेता रहे।”[96] सुषमा का यह कथन उसकी ज़िंदगी के कारागृह को प्रकट करता है। सुषमा के लिए यह स्थिति असह्य हो जाती है, पर विवश होकर उसे निराशा के घूँट पीते हुए अपना जीवन व्यतीत करना ¯Ö›ŸÖÖ Æî |

ÃÖãÂÖ´Öा अपनी पारिवारिक प्रतिबध्दता में अपनी वैयक्तिक भावना और प्रेम की भले ही बलि चढ़ा देती हो, परन्तु वह खुश नहीं है। वह जीना चाहती है पर जी नहीं सकती, यह उसकी विवशता है। इसीलिए तो वह अपनी सहेली मीनाक्षी से कहती है - “पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूँगी ... उसे सीने से लगा रखूँगी ... आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इसी कॉलेज में आओ, ŸÖ²Ö ³Ößü ŸÖ´Ö ´Ö−ो यहीं पाओगी। कॉलेज के इस पचपन खम्भों की तरह स्थिर, अचल।”[97]

वस्तुत: यहाँ सुषमा का नैराश्य ही शब्द रूप धारण करता है। वह पचपन खम्भों वाली कॉलेज ही मानो उसकी नियति है। जीवन में बहुत कुछ बदल जाएगा, बह जाएगा, नहीं बदलेगी केवल सुषमा, कॉलेज के उस बिल्डिंग की तरह। पचपन खम्भों की तरह उसके जीवन के खम्भे भी निश्चित ही हैं। कॉलेज-बिल्डिंग के रंग की भाँति उसके जीवन का भी एक ही रंग होगा, कमाना और कमाकर पैसे घर भेजना। सुषमा के इस नैराश्य का चित्रण इन शब्दों में Æ†Ö Æî - “जीवन की भागदौड़ और आजीविका के प्रश्नों में चुपचाप विलीन हो गय ¤Ö ¾ÖÂÖ और अब तो उसके चारों ओर दीवारें खींच गई थीं, दायित्व की, कुंठाओं की, अपने पद की गरिमा और परिवार की। ... कभी-कभी उसका मन न जाने क्यों डूबने लगता। अपने परिवार का सारा बो−Ö †¯ाने ऊपर लिए सुषमा काँपने लगती।”[98]

सुषमा एक शून्य में घिरी हुई थी। उसने दुनिया के आगे बड़ा ही संयत रूप प्रस्तुत किया था। लेकिन स्वयं घोर संत्रास −ेल रही थी। उसके यथार्थ से केवल मीनाक्षी परिचित थी क्योंकि “मीनाक्षी ने उन रंगीन वस्त्रों, केश-विन्यास और प्रसाधनों के पीछे की यथार्थता देखी थी। एकांत में बैठी सुषमा के मुख पर अव्यक्त वेदना, रात में टूटते तारों की तरह आँसू और पकड़े जाने पर उसकी −Ö¯Öß-सी हँसी भी देखी थी।”[99] सुषमा वह नारी है जो आजीवन अविवाहित रहने के लिए अभिशप्त है। अत: अपने जीवन में घुटन, पीड़ा एवं संत्रास की अंधेरी सुरंग से वह गुज़रती है। वह महज़ एक ‘क्रोटन का पौधा’ बनकर रह जाती है। शनै: शनै: उसके भीतर की

स्निग्धता, कोमलता, सरसता सूखने लगती है और उस रिक्त स्थान में भरने लगती है कर्कशता, कटुता और कठोरता। इस प्रकार सुषमा के जीवन की जो त्रासदी है, उसके जीवन में जो संत्रास, घुटन, पीड़ा और अकेलेपन की यातना है, इनके पीछे नगरीय परिवेश तथा नव-विकसित जीवन मूल्य ही मूलत: कारणभूत हैं।

¯ÖÖ¿“ÖÖŸय जीवन के अनुकरण पर भारतीय उच्च-वर्गीय जीवन में परिवार का निरंतर टूटते जाना, भाव-हीनता, भौतिकता एवं बौद्धिकता में वृद्धि तथा तज्जन्य संत्रास, घुटन व पीड़ा को भोगते जाने का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण लेखिका ने 'रुकोगी नहीं राधिका' में किया है। राधिका शिक्षित युवा नारी है। अमेरिका पहुँचकर उसकी अकेलेपन की भयावहता और सघन हो उठती है। वह स्वयं को एक सांस्कृतिक शून्य में पाती है। अत: विदेशी वातावरण से उसमें अलगाव का भाव पैदा होने पर वह पुनश्च अपने देश में लौट आती है, परंतु पिता एवं परिवार वालों की उसके प्रति आस्थाहीनता देखकर वह उदास, निराश हो जाती है। उसे लगता है वह व्यर्थ ही यहाँ आयी है। भारत और परिवार का जो लगाव उसे यहाँ तक खींच लाया था वह एक सप्ताह के अन्दर ही मुख में एक कड़वा-ÃÖÖ Ã¾ÖÖ¤ ”Ö> •ÖÖŸÖÖ Æ |[100] परिणामत: वह दिल्ली आकर नौकरी करके जीवन-यापन करती है। अपने जीवन की उथल-पुथल से संत्रस्त राधिका को लगता है कि "जैसे वह एक लंबी, अंधकारमय, सर्द सुरंग में यात्रा कर रही है, जहाँ न लक्ष्य दिखता है, न उसका अंत।"[101] इस तरह अपने खंडित व्यक्तित्व की भटकन को लिये नारी कहीं भी स्थापित नहीं हो पाती।

राधिका का अन्तर और बाहर विषाद से भर उठता है। "उसमें एक बेहद अनमनेपन ने घर कर लिया था।... सबकुछ करते हुए भी एक विचित्र अनिश्चितता और सारहीनता की भावना छाई रहती।"[102] अपने बिखरेपन की थकान को मिटाने के लिए, भटकन से बचने के लिए वह अक्षय को जीवन-साथी के रूप में पाना चाहती है। किन्तु वहाँ भी निराशा ही हाथ लगती है। वह भीतर ही भीतर घुटने लगती है। वह अनुभव करती है कि "¾ÖÆ ‡ÃÖ ³ÖÖß>, ¿ÖÖ¸-¿Ö¸Ö²Ö, “ÖÆ»Ö-पहल से एकदम कटी हुई है, वह अपने परिवेश का भाग नहीं रÆß ¾ÖÆ यहाँ रहते हुए भी निर्वासिता है, उसका जीवन निरूद्देश्य यात्रा है, एक लंबी अंधकारपूर्ण सरंग ... नित्य प्रति के जीवन की क्रियाएँ वह मशीनी भाव से संपन्न करती आई है, यह बेचैनी, यह ‰¯²Ö-भरी अकु»ÖÖÆ™ ²ÖœŸÖß •ÖÖŸÖß Æ |"[103] ऐसे में मनीष से उसे कुछ सहारा मिलता है। मनीष उसे उसके विगत सहित स्वीकार करता है। राधिका, मनीष के सम्मुख अपना मन हलका करती

Æ - "नहीं मनीष, तुम नहीं जानते कि इतने लंबे समय की चुप्पी के बाद किसी समवेदक प्राणी से यह बताकर मु-ने कितना चैन मिल रहा है, नहीं तो अपने में ही घुटते ... घुटते ... !"[104] ‡ÃÖ प्रकार बूरी तरह टूटी हुई, निराशा के अंधकार से घिरी हुई राधिका को अंततः मनीष से ही ¸ÖÆüÖ ×´Ö»ÖÖÖß Æ ।

उपन्यास की एक और पात्र विद्या भी अनमेल विवाह के कारण घुटन, पीड़ा, संत्रास -ोलती है। राधिका के साथ तो मनीष, अक्षय, डैन आदि जुड़ जाते हैं किंतु विद्या अकेली ही इस त्रासदी को -ोलती है। वह अपने परिवार के बिखराव के द्वन्द्व से घिरी हुई है, जो कि उसे अकेलापन महसूस करवाता है। किंतु उपन्यास में विद्या के अन्तर्द्वन्द्व को कहीं भी उभारने की कोशिश नहीं की गई है। निराश, हताश विद्या परिस्थितियों को और अधिक न -ोल पाने की स्थिति में नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या कर लेती है।

वस्तुतः उषा प्रियंवदा का कथा-साहित्य नारी-जीवन की त्रासद स्थितियों का एक ऐसा बयान है, जिसे शायद ही किसी सबूत की ज़रूरत हो। उनके नारी चरित्र स्वयं एक सबूत बनकर हमारे सामने आ खड़े होते हैं। लेखिका ने ऐसे हर चरित्र के भावनाशील मनोजगत और आत्मद्वंद्व को बारीकी से पढ़ने - परखने का कार्य किया है और चाहा है कि वह साहस और संघर्ष से अपनी दारुण नियति को बदलने में कामयाब हो। 'शेष यात्रा' की अनु लेखिका की इसी रचनात्मक सोच की निर्मिति है। अनु अपने पति पर इतना निर्भर हो जाती है कि वर्षों तक स्वयं कुछ भी नहीं कर पाती और न करना चाहती है। गुड़िया की तरह सजधज कर पार्टियों में शामिल होना और पार्टियाँ देना ही उसका प्रमुख कार्य बन जाता है। पति की निजी व्यस्तताएँ और अन्य स्त्रियों के साथ संबंध उसके जीवन को निराशा एवं घुटन से भर देते हैं। पति के प्रति पूर्णतः समर्पित अनु को पति की ओर से प्रतिदान के रूप में मिलता है केवल दुःख। संत्रास -ोलती अनु कहती भी है - "वह मेरा अपना दुःख है, मेरा अपना प्राइवेट दुःख। मेरी बिलकुल निजी हार। चूर-चूर होकर बिखर जाने की हार। बड़ा कहते थे कि तुम्हें रानी बनाकर रखूँगा - एक सिसकी उसे ऊपर से नीचे तक हिला जाती है।"[105] चंद्रिका के चक्कर में प्रणव अनु को तलाक़ देता है। परिणामतः "अनु अंदर-अंदर गल रही है, तिल-×ÜÖ»Ö ´Ö¸ ¸ही है, एक असाध्य बीमारी के रोगी की तरह।"[106] आँसूओं की बाढ़ में बहती अनु को उसका जीवन निरर्थक लगने लगता है - "उसका यह रोना अलग तरह का रोना है। एक बहुत-बहुत गहरे स्तर पर एक मूक विलाप, जो अजपा जाप की तरह निरंतर चलता रहता है। पलकें भारी हैं,

आँखें कड़ुआईं, जैसे रेत का एक पूरा बवंडर उनमें समा गया है।"[107] अंतत: अपनी दारुण नियति को बदलने में वह सफल होती है।

अनु की अपेक्षा '†ÝÖ¾Ö¿ÖÛ' की वाना का चरित्र अधिक जटिल और बहुआयामी है। निराशा एवं घुटन से भरी ज़िंदगी जीने वाली वाना का इच्छा संसार अतृप्त ही रह जाता है। वस्तुत: वह गहरे प्रेमसमर्पण की अभिलाषिणी है। लेकिन यह जीवन का व्यंग्य ही है, कि प्रेम उसे पति से नहीं सारिका, क्रिस्तीन और राहुल से मिलता है। वाना के जीवन की यह त्रासदी ही है, जिसकी गहरी छाया अंत तक सालती रहती है। शिवेश जैसे स्वार्थी व्यक्ति के साथ घुटन भरा संत्रस्त जीवन अब और न जी पाने की स्थिति में वाना हिम्मत जुटाकर उससे संबंध तोड़ लेती है। भारतीय परिस्थितियों में संभव है कि ये संबंध घिसटते हुए सफल ³ÖÛ ÆÖ •ÖÖ‹, ¯Ö¸ÝÖ अमेरिका की व्यक्तिपरक सभ्यता में ऐसे अप्रिय रिश्तों को ज़बरदस्ती ढोने की विवशता नहीं है। यहाँ पर वाना की न केवल शिवेश से मुक्ति होती है अपितु शिवेश के निराशा, व्यथा एवं घुटन भरे संसार से भी मुक्ति होती है। एक तरह से उषा प्रियंवदा ने वाना के माध्यम से नारी को मध्ययुगीन प्रतिबंधों से ही मुक्त कराने का प्रयास किया है।

उषा प्रियंवदा बारीक और सुथरे मनोभावों की कथाकार रही हैं, उनके पात्र न कभी उँचा बोलते हैं, न कभी बहुत शोर मचाते हैं, फिर भी ज़िंदगी और अनुभूतियों की उन गलियों को आलोकित कर जाते हैं, जहाँ से गुज़रना हर किसी के लिए उद्घाटनकारी होता है। 'भया कबीर उदास' भी इसी अर्थ में महत्वपूर्ण है। इसमें उन्होंने बहुत नई-सी दिखनेवाली कथाभूमि पर, बहुत सहज ढंग से मानव-मन की चिरंतन लालसाओं, कामनाओं, निराशाओं, घुटन और उदासियों का अत्यंत कुशल और समग्र अंकन किया है। उपन्यास की नायिका लिली विदेशी भूमि पर अपना सहज और अल्पाकांक्षी जीवन जी रही होती है कि अचानक उसे मालूम होता है, उसे स्तन-कैंसर है और यह बीमारी अंतत: उसके शरीर से उसके सबसे प्रिय अंग को छीन ले जाती है। अपने बाल, स्तन खो देने पर उसे गहरा दु:ख होता है - "बाल, स्तन यह सब उसकी अपनी समष्टि छवि के अभिन्न अंग हैं - †¯Öने को यों कटते - पिटते देखकर गहरा दुख अन्दर बस गया है।"[108] इस संत्रास को -ेलते हुए उसे लगता है कि "´Ö ÝÖÖ •ÖÛÝÖÛ-जागती, पीड़ा और खेद से भरी एक कमज़ोर-ÃÖÛ Ã¡ÖÛ Æ।"[109] ऐसें में निराश लिली को रात काटना भी दूभर हो जाता Æ - "अकेली रातों को सारे दु:स्वप्न, -ेली हुई यातना के दाग़, अन्दर के सारे दानव एकदम उधम मचाने लगते हैं। सारी रात करवटें बदलने के बाद सुबह एकदम थकÛ Æ‡ ÆÖÝÖÛ Æ।"[110]

¾ÖÆ ÃÖ´Ö–ा नहीं पाती कि अपनी आतंकित और दु:खद मन:स्थिति से कैसे उबरे। ऐसे में आत्महत्या करने का विचार भी उसके मन में आता है। फिर भी हिम्मत न हारते हुए लिली अपनी बीमारी से, इन विकट स्थितियों से संघर्ष करती है। किंतु हर समय, हर क्षण उसे अपने अलगाव, अपनी पृथकता का बोध रहता है। शरीर की अपूर्णता उसके जीवन की अपूर्णता बन जाती है। उसे लगता है कि इस दुख, इस घुटन से उबरना उसके लिए संभव नहीं है - "दु:ख माँजता होगा औरों को; उसके लिए दु:ख एक तलविहीन, जलविहीन कुआँ है; जिसमें वह बार-बार गिर जाती है; और वहीं कहीं अटक गई है - कोई नहीं उबारने आएगा उसे..."[111] किंतु वनमाली लिली के जीवन में व्याप्त निराशा, संत्रास, घुटन, उदासी आदि को दूर कर उसके जीवन में पुन: सुख का संचार करता है।

इस प्रकार उषा प्रियंवदा ने आधुनिक परिवेश की ऊपज घुटन, संत्रास, निराशा, शून्यता आदि का अपने उपन्यासों में सजीव अंकन किया है। वे अपने परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध हैं अत: परिवेश के दबाव से उत्पन्न हर स्थिति का चित्रण वे अपनी रचनाओं में करती हैं। घुटन, संत्रास, निराशा, शून्यता आदि का चित्रण भी अत्यंत स्वाभाविक बन पड़ा है।

४.८ प्रवासी जीवन मे संघर्ष और मोहभंग की स्थिति :

आज औद्योगीकरण से बढ़ती हुई जटिलता, नगरीकरण के बढ़ते दायरों के साथ ही साथ एक व्यापक मानववादी भावना का फैलना प्रारंभ हो गया है। आज के वै-ıानिक युग में जब यातायात के साधनों और सुगमता में यूरोप, क्या अमेरिका और एशिया-ÃÖÖ¸Ö ×¾ÖÀ¾Ö ×ÃÖमटकर एक दूसरे की सीमाओं-समस्याओं से प्रभावित हो रहा है। अत: वैश्वीकरण के इस दौर में बेहतर अवसरों की तलाश में युवा वर्ग का विदेशों की ओर आकर्षित होना और वहाँ बसकर अपने भविष्य को सँवारते हुए प्रवासी जीवन बिताना स्वाभाविक ही लगता है। किंतु आज समस्त विश्व में स्थितियाँ, समस्याएँ लगभग एक जैसी ही हैं क्योंकि प्रभाव तो सर्वत्र एक जैसा ÆÛ ¯Ö>ŸÖÖ Æ | ¾Ö-ıानिक प्रगति के बढ़ते चरणों ने व्यक्ति को अधिकाधिक तार्किक और बौद्धिक बना दिया और उसी के कारण समस्त पुराने संस्कारों पर प्रश्न-चिन्ह लगने शुरू हो गये। सर्वत्र एक मोहभंग और आस्थाहीनता जैसी स्थितियाँ मौजूद नज़र आने लगीं। ये स्थितियाँ क्या एक ही देश की हैं? ज़ाहिर है कि नहीं। समस्त इण्डो - यूरोपीय देशों के बढ़ रहे विकास के दौर में

गतिविधियों की समानान्तरता को ढूँढ़ना और पहचानना कदापि मुश्किल नहीं है। बल्कि एक साथ सारे विश्व की समानान्तर सक्रियता को देखा जा सकता है।

इन्हीं सब कारणों के चलते प्रवासी जीवन भी संघर्ष और मोहभंग की दास्तान बन गया है। कोई भी भारतीय जब विदेश का भाग बन जाता है तब उसे अनेक समस्याओं से गुज़रना पड़ता है। भिन्न संस्कृति एवं परिवेश से आने के कारण प्रारंभ में वह नये माहौल में स्वयं को मिसफिट महसूस करता है, किंतु धीरे-धीरे उस नये माहौल में अपने को ढाल लेता है। उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों में अत्यंत बारीकी से उन तमाम भारतीय परिवारों की जीवन-¿Ö»Öß का विश्लेषण किया है जो बेहतर अवसरों की तलाश और आशा में प्रवÖÖÃÖß ÆÖ •ÖÖŸÖ Æ | ×¾Ö¤¿Ö में बसे युवकों से मध्यवर्गीय परिवारों की कन्याओं का विवाह सौभाग्य सम-ÖÖ •ÖÖŸÖÖ Æ †Ö¸ ×±ú¸ शुरू होता है संघर्ष और मोहभंग का अटूट सिलसिला।

<ÃÖß ÆÖß Æ 'शेष यात्रा' की अनु। बी.एससी. में पढ़ने वाली अनु का विवाह विदेशी डॉक्टर प्रणव के साथ हो जाता है। अत: विवाहोपरान्त अनु अमेरिका में प्रवासी जीवन व्यतीत करती है। आँखो में कई सपने सँजोकर सुखी-ÃÖ´Ö¨ •Öीवन की आस लिए अनु पति के साथ अमेरिका पहुँचती है। अनु एक समर्पिता पत्नी बन जाती है और अपने पति की इच्छानुसार स्वयं को नये माहौल में ढाल लेती है। किंतु अनु की गृहस्थी को किसी की नज़र लगÖ •ÖÖŸÖÖß Æ | विदेशी माहौल में पूरी तरह रंगा हुआ स्वच्छंद प्रवृत्ति का प्रणव चंद्रिका के चक्कर में उसे तलाक़ देता है और विदेशी भूमि पर अनु को अकेला छोड़ देता है। हालाँकि प्रणव स्वयं कहता भß Æ - "विदेश में कितने तनाव, कितने दबाव होते हैं, उसमें गाड़ी खींचना बड़ा मुश्किल हो जाता है।"[112] किंतु फिर भी वह अनु की फ़िक्र न करते हुए उसे छोड़कर चंद्रिका के साथ चला जाता है। अनु का मोहभंग होता है, 'रानी बनाकर रखूँगा।' कहने वाला प्रणव उसे म-ंधार में अकेली छोड़कर चला जाता है, और विदेशी भूमि पर अनु का एकाकी संघर्ष प्रारंभ हो जाता है।

अनु परंपरागत भारतीय स्त्री के समान आँसू बहाते हुए, अपने नसीब को कोसते हुए जीवन व्यतीत नहीं करती अपितु डॉक्टरी पढ़कर आत्मनिर्भर बन जाती है। अनु को, विवाह के पहले से ही, उसकी सहेली का भाई डॉ.दीपांकर प्यार करता आया है। लेकिन ऐसे प्यार के संबंधों को हमारे समाज और परिवारों में अधिक महत्व नहीं दिया जाता। किंतु अमेरिका स्थित अनु इस प्यार को स्वीकार कर दीपांकर के साथ विवाहबद्ध हो जाती है। इस नये वैवाहिक जीवन में मातृत्वसुख की प्राप्ति भी उसे होती है। लेकिन अनडिपेंडेंट और अनरिलायबल प्रणव

कहीं भी टिक नहीं पाता - "कितना कुछ जिया, -नेला, देखा, कितनों से जुड़ा, कितने ठिकाने बनाए और कितनी बार सबकुछ एक निष्ठुरता, एक अलगाव से तोड़कर आगे बढ गया ।"[113] अनु और प्रणव, संघर्ष दोनों करते हैं किंतु स्थैर्य अनु को प्राप्त होता है और प्रणव, अंत तक अपन किये पर पछताता हुआ भटकता रहता है। दस साल बाद जब प्रणव अनु से मिलता है तब अनु के रूप में उसे एक आत्मविश्वासी, संतुलित और आत्मनिर्भर स्त्री के दर्शन होते हैं। जो "†Ö•Ö सीधी सतर सामने बैठी है, बराबरी से शराब पी रही है, खुली, हल्की, आत्मगरिमा और x¾ÖÀ¾ÖÖÃÖ ÃÖ ³Ö¸ü |"[114] इस बदली हुई अनु को देखकर प्रणव का पतिभाव चोट खाता है। अनु कैरियर, बच्ची, पति सब कुछ प्राप्त करती है। किंतु प्रणव अकेला रह जÖŸÖÖ Æî - "एकदम अकेला, बिना घर-बार, बिना बीवी-बच्चों के - एकदम-अकेला ...."[115]

जयंत और दिव्या यह नवविवाहित दाम्पत्य भी कई सपने सँजोकर एम.ए. के पश्चात् आगे पढ़ने अमेरिका चला आता है, तब इन्हें भी यहाँ के संघर्षरत प्रवासी जीवन का हिस्सा बनना पड़ता है। बड़े से बँगले में नौकरों -चाकरों के बीच रहने वाली जस्टिस चौधरी की बेटी दिव्या अमेरिका में एक छोटे से कमरे में गिने-चुने बर्तनों के साथ गृहस्थी की गाड़ी खींचती नज़र आती है। वह दिन में पी-एच.डी.के क्लास करती है और रात में जयंत के साथ रेस्तराँ में वेट्रेस का काम करती है। इतना ही नहीं, आगे दिव्या एक कॉलेज में असिस्टेंट प्रोफ़ेसर बन जाती है और घर का खर्च संभालती है। जयंत को भी नौकरी न मिलने की स्थिति में हाउस हज़बैंड बनने में कोई शिकायत नहीं है। इस प्रकार वे भारत का समृध्द जीवन छोड़कर विदेश में जीवन-यापन के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं। उनके सपने न जाने कहाँ बिखर जाते हैं।

'†ŸÖ¾Ö¿ÖÖß' की नायिका बनारस की 'वनश्री' जो अमेरिका पहुँचकर 'वाना' ÆÖ •ÖÖŸÖß Æî - एक ऐसे समाज के बीच पहुँच जाती है जहाँ सभी लोग एक होड़ में, एक पागल दौड़ में रत हैं। जहाँ हर कोई, अपनी उपलब्धियों पर इतराता है, सफलता का शिखर चूमना चाहता है, वहीं वाना अपनी लाचारियों में उल-Öß Æ‡ Æî। शिवेश की ग़ैरज़िम्मेदारी के कारण उसे अपनी इच्छाओं का गला घोंटना पड़ता है। 'ÃÖ¾Ö' अर्थात् अपने परिवार के लिए 'Ã¾Ö' को वह विलीन कर देती है। किंतु भीतर ही भीतर उसका मन उसे कचोटता है। Æ¸ü "Ö™-छोटे सुख के लिए तरसती वाना स्वयं को हर स्थिति से उबरने के लिए तैयार करती है। कम पढ़ी-लिखी होने के बावजूद वह हिम्मत नहीं हारती बल्कि और नौकरी करके परिवार का बो-Ö ³Öß ˆšÖŸÖß Æî | परिवार का भार ढोते हुए उसे कई समस्याओं से जू-नना भी पड़ता है। वह अपने परिश्रम और

दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ती है। मकान बेचने वाली एजेन्सी में काम करने पर उसे कुछ ÃÖ±ÖúÖ»ÖŸÖÖ ×´Öलती है, लेकिन जीवन के कड़वे अनुभव भी कम नहीं मिलते। अपने परिवार के प्रति प्रेम का प्रतिदान भी उसे परिवार के सदस्यों की ओर से अच्छा नहीं मिलता। एक ओर पति कोकीन के धंधे में फँसकर परिवार को बेसहारा छोड़कर पलायन करता है और पुलिस से बचता ×±úÖ¸ŸÖÖ Æ, ŸÖÖ ¤ÃÖ¸ß †Ö¸ ×¾Ö¤¿Öß ´ÖÖÆÖ»Ö ´Ö ¯Ö»Ö-बढ़े बच्चे भी माँ के डाँटने और गुस्से में हाथ उठाने पर उसे पुलिस में देने की बात करते हैं।

उपन्यास में वाना के साथ-साथ एक दुनिया और भी है जिसमें अंजी है, राहुल है, सुबोध है। सब एक दूसरे से भिन्न, अपने-अपने रास्तों को तलाशते हुए। सभी राहुल की तरह सफलता की सीढ़ियाँ नहीं चढ़ पाते और न ही शिवेश की तरह टकराकर लहुलूहान होते हुए कारुणिक अंत को प्राप्त होते हैं- सवाल है अपनी-अपनी क्षमता और अपनी-अपनी नियति का।

अंजी बांग्लादेशी है। उसका अमेरिका स्थित डॉक्टर पति नर्स के चक्कर में उसे तलाक़ देता है। विदेशी माहौल में अंजी अकेली ही अपने दो बच्चों की देखभाल करती है। अकेले ¸ÆŸÖ Æ< ¾ÖÆ ×ÃÖ»ÖÖ‡-कढ़ाई का काम करके अपनी गुज़र-बसर क¸ŸÖß Æ | †•Öß ³Öß ‡ÃÖ ×¾Ö¤¿Öß माहौल में अस्तित्व की लढ़ाई लड़ रही है। एक समय ऐसा आता है जब उसके पास काम कम हो जाता है, तब उसके लिए गुज़ारा मुश्किल हो जाता है। ऐसे में वह वाना के साथ मिलकर मकान के राहुल वाले हिस्से में ‘›-केअर’ खोल देती है और कुछ ही दिनों में काफ़ी बच्चे आने लगते हैं। यहाँ केवल अंजी ही नहीं अपितु उसके बच्चे भी छोटे-बड़े काम करके परिवार के खर्च ´Ö ÆÖ£Ö ²Ö™ÖŸÖ Æ | ÃÖ²ÖÖ¬Ö ³Öß ¯Öß-एच.डी. का छात्र है किंतु नौकरी मिलने के पहले वह भी कारें बेचकर अपना व्यवसाय चलाता है। यहाँ लेखिका ने स्पष्ट किया है कि विदेश में पढ़ाई करना इतना आसान नहीं है। शोधार्थी को यहाँ शोध-अध्ययन के साथ-साथ अपना खर्च उठाने के लिए अन्य छोटे-मोटे काम भी करने पड़ते हैं। किंतु इतना संघर्षरत जीवन व्यतीत करने के बावजूद कोई भी वापस भारत जाना नहीं चाहता। एक जगह पर वाना कहती भी है - “¯Öœ-लिखे लोग, एम.ए., पी-एच.डी., डॉक्टर टैक्सियाँ चलाते हैं, बैंकर अफ़सर लोग सड़क पर फल बेचते हैं, भले घरों की पर्दानशीन औरतें वेट्रेसों का काम करती हैं। कोई नहीं जाता, –ÖŠ ÃÖ““Ö कारण ये सभी रहना चाहते हैं।”116

‘रुकोगी नहीं राधिका’ की राधिका भी विदेश के त्रासद विद्यार्थी जीवन को भुगत चुकी है। अत: नीना को सम-ााते हुए वह भी कहतÖß Æ - “मगर वहाँ का विद्यार्थी जीवन भी आसान

नहीं नीना जी, जहाँ कम ही ममी-डैडी कॉलेज की पढ़ाई का खर्च देते हैं। मैंने ही, पूरे ढाई साल सुबह नौकरी की और शाम को पढ़ा। खाली समय लाइब्रेरी में बिताया, वहाँ मुफ्त फिल्म या टेलीविजन देखने का समय तो मु-ने नहीं था।"[117] ऐसे में विदेश के संबंध में जो अंधा मोह सभी के ह्रदय में घर कर गया है वह टूटने लगता है। ऐसी स्थितियों में संघर्ष ¸ŸÖ ”Ö¡Ö †ÃÖŸÖÂ™ Æß प्रतीत होते हैं। अपने देश से, अपनों से दूर रहकर भला कोई कैसे खुश रह सकता है? राधिका भी यही बात दोहराती है - "जो कि अपना है, अपने सारे जीवन का संदर्भ, उससे अलग कटकर, कोई कितने दिन संतुष्ट रह सकता है?"[118] किंतु इस प्रवासी जीवन की एक और त्रासदी यह है कि विदेश से असंतुष्ट होकर यद्यपि वह व्यक्ति भारत लौटता भी है, तथापि देशी माहौल में वह स्वयं को मिसफिट पाता है। ऐसी स्थिति में वह न विदेश का हो पाता है और न ही भारत का ही रह पाता है। उसे रिवर्स कल्चरल शॉक -नेलना पड़ता है।

'†ŸÖ¾Ö¿Öß' में उषा जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि विदेशी माहौल में बच्चे भी किस प्रकार अपनी माँ को तिरस्कृत करने लगे हैं। शालिनी वाना से कहती है कि किस प्रकार वहाँ के बच्चों में अपनी माँ, भारत और भारतीय संस्कृति के प्रति तिरस्कार की भावना पन¯Ö ¸ÆßÆ -"हाँ, कि तुम काली हो, गन्दी हो, तुम इन रंगबिरंगे देवताओं को पूजती हो। हम नहीं उतारेंगे जूते, कोई अमेरिकन जूते उतारकर घर में रहता है? हम नहीं खाएँगे यह पीले रंग की दाल, ह´Ö चाहिए पीत्ज़ा, हैम बर्गर-ÆÖ™-डॉग-"[119] ×¾Ö¤ê¿Öß ´ÖÖÆÖ»Ö ´Ö ¯Ö»Ö-बड़े होने के कारण इन बच्चों के लिए किसी भी रिश्ते की कोई अहमियत नहीं है। भारत में भी आज कौन बच्चा माँ-बाप की सुनता है किंतु यहाँ अभी तक स्थितियाँ इतनी दारुण नहीं हुई हैं।

उषा जी ने 'शेष यात्रा' †Ö¸ '†ŸÖ¾Ö¿Öß' इन दोनों उपन्यासों में लड़कियों के उन माँ-²ÖÖ¯ÖÖ की आलोचना भी की है, जो बेटियों को उचित और पूरी शिक्षा न देकर सस्ता और धनी वर पाने के लालच में विदेश में रहने वाले किसी अ-ात भारतीय से शादी कर देने में अपनी बड़ी उपलब्धि मानते हैं। आज दूल्हे का विदेश में होना एक बड़ी 'क्वालीफिकेशन' माना जाने लगा है। कोई यह देखने की कोशिश नहीं करता कि श्रीवर जी का चरित्र कैसा है और दरअसल वह क्या करता है। 'शेषयात्रा' की अनु बी.एससी. फाइनल में है और जल्दबाज़ी में बिना ग्रेजुएट हुए उसकी शादी कर दी जाती है और डॉ.प्रणव कुमार के साथ विलायत भेज दिया जाता है।

बंसरी अर्थात वाना अभी नवीं क्लास में ही है और भारत का भूगोल भी उसे नहीं आता। उसकी शादी विण्डसर से पहुँचे हुए डॉ.शिवेश मिशिर से कर दी जाती है और वह बनारस की

सँकरी गली से अचानक विण्डसर पहुँच जाती है। अनु और वाना दोनों का मोहभंग होता है और दोनों विदेश की बदली हुई परिस्थितियों में कष्ट भोगती हैं। उषा जी के सामने यह प्रश्न है कि इन कमसिन दुलहनों का भविष्य क्या बनेगा। उनका विकास कैसे हो कि वे अपने नारीत्व को सम-ा सकें, अपनी मनुष्यता (हयूमैनिटी) को पहचान सकें। वाना बारबार अपने को 'मेंढकी' कहती है। पीढ़ियों से चली आयी परिपाटी और रूढ़ियों में ग्रस्त माँ-बाप ने अपनी बेटियों के विवाह गलत युवकों से करके उनके जीवन के विकास में बाधाएँ पैदा की हैं और उषा जी ने ऐसे संबंधों के बंधनों को तोड़ कर भविष्य में विकास की संभावनाओं की ओर संकेत दिये Æ।

विदेशी भूमि पर संघर्षरत जीवन व्यतीत कर रही युवती का एक और चित्र हमें 'भया कबीर उदास' में दिखाई पड़ता है। उपन्यास की नायिका लिली इतिहास में पी-एच.डी. करने ×¾Ö¤¿Ö “Ö»ÖÖß •ÖÖÝÖß Æ। ×¾Ö¤¿Ö ´Ö ¯Öß-एच.डी. करके नामी इतिहास-ा बनना और लौटकर पापा के विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर बनना उसका सपना है।[120] किंतु तीन वर्ष तक विदेश में रहने के बावजूद वह अपनी पी-एच.डी. की थीसिस पूर्ण नहीं कर पाती। अमेरिकन विश्वविद्यालयों की राजनीति के कारण उसकी पी-एच.डी. अधूरी रह जाती है और उसका सपना भी टूट जाता है। इतना ही नहीं तो उसे कैंसर जैसी भयंकर बीमारी भी हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह वापस भारत भी नहीं लौट सकती थी - "जिस ठसक से वह भारतीय रिसर्च को तिलांजलि देकर वि¤¿Ö चली आई थी, किस मुँह से वापस जाएगी, और फिर जब एकाएक पापा के देहान्त की ख़बर ×´Ö»ÖÖß, ÝÖ²Ö ÝÖÖ ²Ö“Öß-खुची दिलचस्पी भी समाप्त हो गई।"[121] कैंसर के कारण विदेश में उसका ÃÖ‘ÖÂÖ ¤ÖÆ¸Ö ÆÖ •ÖÖÝÖा है। भले ही उसने विदेश में संघर्षमय त्रासद जीवन बीताया हो किन्तु "विदेश में रहकर उसने एक बात गंभीरता से ग्रहण की है, आत्मनिर्भरता। अपने दुर्भाग्य या नाकामयाबी पर किसी और को दोष न देना।"[122] कैंसर के कारण वापस भारत लौटने पर लिली को यहाँ की निष्क्रियता, गतिहीनता और बिना लक्ष्य के एक के बाद एक दिन बिताते रहना अच्छा नहीं लगता। उसे अपना विदेशी जीवन ही प्रिय लगने लगÖÝÖÖ Æ - "विदेश की भागदौड़, विभाग की राजनीति; सीढ़ी में सबसे नीचे वह; हर दिन एक संघर्षरत दिन होता था। मौसम, बर्फ़ या बरसात, कक्षाएँ, घर का काम, सफ़ाई-धुलाई, ख़रीदारी, सुबह-¿ÖÖ´Ö-¸ÖÝÖ-ÃÖ²ÖÆ, मालूम नहीं चलता था कि समय कहाँ चला जाता है।"[123] इसीलिए वह वापस विदेश लौटने के ²ÖÖ¸ ´Ö ÃÖÖ“ÖÝÖß Æ।

इस प्रकार उषा प्रियवंदा ने अमेरिकावासी इन पात्रों और परिवारों की ज़िंदगी को, उनके आपसी संबंधों और संघर्षों को गहरी अंतदृष्टि और पर्यवेक्षण-सामर्थ्य से अपने उपन्यासों में उद्घाटित किया है। अनुभव की प्रामाणिकता और गहन संवेदनीयता से युक्त उनकी रचनाएँ प्रवासी जीवन को उघाड़ कर रखने में पूर्णत: सक्षम हैं।

4.9 इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स तथा देश-विदेश का कल्चरल शॉक :

उषा प्रियंवदा ने 'रुकोगी नहीं राधिका' ´Ö 'इलेक्ट्रा कॉम्पलेक्स' ŸÖ£ÖÖ '¤¿Ö-विदेश का कल्चरल शॉक' इन दो तथ्यों का विस्तृत विवेचन किया है। यह महसूस होता है कि लेखिका के मन में उसका पूरा कथ्य 'इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स' †Ö¸ '¤¿Ö-विदेश का कल्चरल शॉक' के चौखटे में इस तरह बँधा और बँटा हुआ है कि आने वाली हर स्थिति को या तो उस चौखटे में अपनी जगह ढूँढ़ लेनी है या फिर कथास्थितियों के मध्यवर्ती फासलों को भरने के लिए विवरण बन कर रह जाना है। 'कथा के साफ़-ÃÖÖ±ú x¾Ö³ÖÖx•ÖŸÖ †Ö¸ ¯Öx¸³ÖÖxषत ये दो स्तर ही नायिका की मानसिक भूमिका का विभक्त मनोभाव है जो उसे धीरे-धीरे न्यूरॉसिस की ओर ले जाता है।'[124]

राधिका की माँ के निधन के पश्चात् उसका जीवन पिता के संरक्षण में व्यतीत हुअÖ Æ | एकनिष्ठ रूप में पिता का प्यार पाकर राधिका पिता पर एकाधिकार सम-ाती है। भाई अपने 'Ö¸-¯Öx¸¾ÖÖ¸ ŸÖ£ÖÖ À¾ÖÃÖ¸-पक्ष के वैभव में खो गया है। ऐसी स्थिति में राधिका का अपने पिता के ¯ÖxŸÖ -ाुकना मनोवै-ाानिक दृष्टि से ठीक ही कहा जाएगा। राधिका अपने पिता की विद्वत्ता, शालीनता और सौम्यता से अत्यधिक प्रभावित है। इसे मनोवै-ाानिक दृष्ट्या '²Ö¨Ÿ¾Ö-ग्रन्थि' कहते हैं। वह हर दृष्टि से अपने पिता को ही एक आदर्श पुरुष के रूप में मानती है। माँ की मृत्यु के पश्चात् वह अपने पिता को उनके कई कार्यों में सहायता भी करती है।

परन्तु उसके पिता जब विद्या नामक एक सुशिक्षित युवती से विवाह कर »ÖÖŸÖ Æ, ŸÖ²Ö राधिका के मन को ठेस पहुँचती है। उसके मस्तिष्क में अपने पिता की एक आदर्श मूर्ति है, वह खंडित होती है। इस घटना के परिणामस्वरूप राधिका के मन में एक नयी ग्रंथि जन्म लेती है, x•ÖÃÖ मनोवि-ाान की भाषा में 'इलेक्ट्रा कॉम्पलेक्स' कहते हैं। साधारणतया लड़के का -ाुकाव माँ के प्रति और लड़की का -ाुकाव पिता के प्रति रहता है। परन्तु किन्हीं कारणों से यदि लड़के या लड़की में क्रमश: माँ या पिता के प्रति विद्रोह या वितृष्णा की भावना पैदा हो जाय तब इस ग्रंथि

का जन्म होता है। इस 'इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स' के कारण ही राधिका परिवार को छोड़कर डेनियल पीटरसन नामक एक विदेशी पत्रकार के साथ भाग जाती है।

वस्तुत: वह अपने इस व्यवहार से अपने पिता को मानसिक आघात देना चाहती है। डैन के साथ भागना क्रिया नहीं, अपितु प्रतिक्रिया है। इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स से ग्रस्त होकर स्वयं अपना और अपने पापा का जीवन नारकीय बना लेती है, इस बात का उसे कभी लेशमात्र भी अहसास नहीं होता। दोनों के लिए परिणाम घातक सिद्ध होता है, पापा जीवन की परिपूर्णता से वंचित और राधिका के लिए किसी भी पुरुष को पिता की दृष्टि से देखने का नज़रिया या फिर युवा व्यक्ति में अपने पिता को ही ढूँढ़ने की विकृत मानसिकता। अत: डैन के साथ वह सुखी जीवन नहीं बिता सकती। और अंत में ˆÃÖ "Ö> ¤ÿÖß Æ|

डैन भी उसके प्रति निष्ठावान नहीं बना रह पाता। यद्यपि लेखिका ने इसे बहुत गहराई से या मनोवै-ानिक धरातल पर स्पष्ट करने की चेष्टा नहीं की है, फिर भी लगता है कि डैन को ¸ाधिका का प्रेम नहीं, पिता जैसी भावना प्राप्त हुई, जिसने उसे उद्वेलित कर दिया था। स्पष्ट था कि राधिका के इस असमंजस के बीच न वह अपने को अच्छा पति ही सिद्ध कर सका और न पिता ही। एक स्थान पर वह कहता भी है, "मैं तुम्हें रिजेक्ट नहीं कर रहा हूँ, मुक्त कर रहा हूँ। तुम्हें अपने साथ चलने के लिए इस कारण नहीं कहता, क्योंकि तुमने कभी एक क्षण के लिए भी प्यार नहीं किया। राधिका, तुम मु-ामें अपना पिता ढूँढ़ रही थी, वही पिता जिसे त्रास देने के लिए तुम मेरे साथ चली आयी थीं। पर मैंने तुम्हारे पिता की जगह स्थापित नहीं होना चाहा, मैं तो स्वतंत्र व्यक्तित्व हूँ।... मैं तुम में अपना खोया यौवन ढूँढ़ रहा था। अपनी पत्नी के छोड़कर चले जाने की कड़ुवाहट धोना चाहता था, पर शायद हम दोनों सफल नहीं हुए।"[125]

विदेश में ही राधिका का परिचय मनीष से होता है। भारत में दोनों की पुन: भेंट होने पर उसे यह महसूस होता है कि राधिका का चारित्रिक पैटर्न अब भी बदल नहीं पाया है। मित्रों में पितावत संरक्षण तलाश करने की उसकी प्रवृत्ति अभी भी तनिक मात्र भी परिवर्तित नहीं हुई | डैन के समान एक स्थान पर वह भी कहता है, "यानी कि तुम पुरुष में प्रेमी या पति नहीं ढूँढ़ती, पिता ढूँढ़ती हो। जीवन के एक संघर्षमय क्षण में डैन ने तुम्हें सँभाला, तुम कृत-ÖŸÖÖ ´Ö उसके साथ रहने लगीं, अब अक्षय देख-भाल कर रहे हैं, तो शायद उनसे विवाह कर लो। क्योंकि तुम जीवन में लंगर चाहती हो, उसे पूरी तरह स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं हो।"[126] निश्चय ही यह बात आधुनिक जीवन-´Öल्यों से संबंधित है और आज की भारतीय नारी की

वास्तविक स्थिति को रूपायित भी करती है। आज की भारतीय नारी जीवन में सुरक्षा चाहती है, अपनी तमाम आधुनिकता के बावजूद।

तथापि राधिका के जीवन का यही एकमात्र कटुसत्य है। वह इसी दृष्टिकोण की व्याख्या अलग ढंग से करने की आदी हो चुकी है। सच्चाई तो यही है कि वह मित्रों में भी अपने पिता को ही ढूँढ़ती है हाँ स्वीकार करने से डरती अवश्य है। डैन के अतिरिक्त उसके जीवन में आने वाले दो अन्य पुरुषों में अक्षय और मनीष हैं। भारत आने के पश्चात् राधिका अक्षय के प्रति कुछ -ुकती है, क्योंकि सुरक्षा और स्थायित्व की दृष्टि से वह उसे अधिक अनुकूल लगता है। मनीष के व्यक्तित्व से पूर्णतया प्रभावित होने के बावजूद राधिका उससे कतराती है, क्योंकि डैन तथा पश्चिम के अनुभव के बाद वह अब 'प्ले बॉय' टाईप के लोगों से दूर भागती है। और मनीष की प्रकृति उसी प्रकार की है। किसी एक से बंधकर रहना उसके स्वभाव में नहीं है। अनेक लड़कियाँ उसके जीवन में आयीं और चली गईं। अत: मनीष को चाहते हुए भी वह उसके साथ जुड़ना नहीं चाहती। वह उससे स्पष्ट कहती है, "मेरे जीवन में प्ले-ब्वॉय के लिए स्थान नहीं है। मैं संगी चाहती हूँ, जिसमें स्थिरता हो, औदार्य हो, जो मु-े मेरे सारे अवगुणों सहित स्वीकार कर ले। मेरे अतीत को -Ö»Ö »Ö |"[127]

दूसरी तरफ अक्षय राधिका के चुम्बकीय व्यक्तित्व से प्रभावित तो है परंतु पुराने दृढ़मूल संस्कारों के कारण वह राधिका के प्रति कुछ शंकाकुल है और उसके उक्त संस्कार '^Û""Â™' को अंगीकृत करने में हिचक का अनुभव करते हैं। इस प्रकार राधिका के जीवन में कई पुरुष आते हैं, पर किसी के साथ भी वह स्थायी संबंध नहीं बना पाती है। ऐसे में विद्या द्वारा कही गई बात सत्य प्रतीत होती है, "यह प्राय: देखा गया है कि जो लड़कियाँ इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स से ग्रसित होती हैं, वे विवाह करके सुखी नहीं होती।"[128]

मिसेज़ होमर के घर रहते हुए राधिका प्राय: सोचती कि "उसे कोई भी पुरुष आकर्षक क्यों नहीं लगता? क्या डैन सच कहता था कि अपने पिता के प्रति उसकी भावनाएँ एक मानसिक विकृति के रूप तक पहुँच गई थीं; और उसे कोई भी पुरुष पिता के सम्मुख नहीं जँचेगा। यदि कभी वह किसी के साथ डेट पर गई भी, तो एक संध्या की शिष्ट औपचारिकता निभाने के प्रयत्न से ही लौटकर सिर में दर्द हो जाता।"[129] यह इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स का ही परिणाम है।

राधिका मनीष तथा अक्षय को लेकर एक निश्चयात्मक दृष्टिकोण नहीं बना पाती। यह बात बड़ी विचित्र है कि राधिका जब जीवन में एक किनारा तथा सुरक्षा चाहती है, तो वह

मनीष को सहसा ही अप्रत्याशित रूप से क्यों चुन लेती है, जब कि वह जानती है कि वह ‘¯»Ö-ब्वॉय’ से कम नहीं है और हर क्षण लड़कियों के सम्पर्क में रहना उसकी आदत है। उसकी तुलना में अक्षय है, जो उसके प्रति हर दृष्टि से उपयुक्त है, उसकी देखभाल करता है, उसे संरक्षण देता है और जिस पर विश्वास करके वह उसे अपना शरीर भी देती है। उसे न स्वीकार कर वह एक प्रकार से अपने पापा को दुबारा शॉक देती है, क्योंकि उसे पता है कि वे मनीष जैसे व्यक्ति को कभी नहीं चुनेंगे। इस प्रकार वह उन्हें पुन: जीवन में तिरस्कृत कर देती है।

लेखिका ने जो दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है वह कल्चरल शॉक से संबंधित है। आज की आधुनिक नारी के सामने दो परस्पर विरोधी दिशाएँ Æ - एक भारतीय परम्परा और संस्कृति से जुड़ी हुई, दूसरी पश्चिमी संस्कारों से जुड़ी हुई। हमारा मन हमेशा दूर की चीज़ों के प्रति स्वभावत: ललकता रहता है जब हम अपने देश में होते हैं, तो हमारा मन पश्चिमी संस्कृति के ¯Ö×¾Ö ´ÖÖÆ-ग्रस्त रहता है। जब वहाँ जाते हैं तो लगता है कि इससे अपनी पूरी समर्थता के साथ साक्षात्कार का प्रयास करने के बावजूद उसके साथ अपना सामंजस्य हम स्थापित कर ही नहीं सकते। और जब स्वदेश लौटते हैं, तो प्रतीत होता है कि हम यहाँ की वास्तविकता से इतनी दूर जा पड़े हैं कि कदाचित अब यहाँ भी सामंजस्य स्थापित करना दुर्लभ होगा। यही संघर्ष हमें •Öीवन भर मथता रहता है। राधिका के इसी अंतर्द्वंद्व को लक्षित करके मनीष कहता है - “•Ö²Ö हम अपना देश छोड़कर बाहर जाते हैं, तो पहले छ: महीने हम एक कल्चरल शॉक के दौरान बिताते हैं, जबकि हर कदम पर हमें अपना देश, अपनी संस्कृति उँची दिखाई देती है। फिर हम उस देश में रहने के आदी हो जाते हैं। दो साल, ढाई साल, उस नये देश में रहकर उसके रीति-रिवाज के आदी होकर हम अपने देश में वापस आते हैं, तो हमें एक धक्का दुबारा लगता है, रिवर्स कल्चरल शॉक।”[130] इसी दुविधा और विकल्प में राधिका जीती है, उसे अंतर्विरोध में जीना पड़ता है और उसका मानसिक संघर्ष त्वरित गति से चलÖÖ¾ÖÖ Æ |

विदेश से लौटी राधिका से मिलने वालों का ताँता उसे ‘टीडियस’ लगता है। रिश्ते की ताई अपनी बहुओं और पोतों को लेकर घर में डेरा लगाती है। विदेशी संस्कृति के प्रति सबके मन में यह भावना घर कर गई है कि वहाँ स्त्री-पुरूष संबंधों में वह गरिमा और पवित्रता नहीं है | ×•Ö-गासा और उत्कंठा बोध से उन प्रश्नों की भी बौछार होती है जो संभवत: राधिका को भी आहत कर सकते हैं। तनाव और सरदर्द कम करने के लिए बफरिन की दो गोलियाँ लेकर सोना इसी तथ्य का द्योतक है कि संबंधियों की प्रश्नावली ने उसे कितना बोन्लि किया है।

भारतीय समाज में विवाह दायित्व और कर्तव्यों का पर्याय है जहाँ घर-बच्चों की ज़िम्मेदारी में स्त्री का ‘अपना’ ‘Ã¾Ö’ पूर्णत: विलीन हो जाता है। उसके व्यक्तित्व, चिन्तन और अभिवृत्तियों में भी एक परिवर्तन आ जाता है। राधिका रमा से मिलकर यह महसूस कì¸ÜÖß Æ कि पारिवारिक उल-ानों में रमा का अपना मूल रूप कहीं तिरोहित हो गया है उस चेहरे को रमा के भीतर तलाश करना अत्यधिक कठिन ही नहीं असंभव भी है।

‘राधिका को लग रहा था कि दोनों के मध्य समरुचियाँ, समवयस्क होने की एक निकटता पहले थी, वह अब खो गई है। दोनों एक दूसरे से बेहद दूर चली गईं हैं। इसलिए इस परिस्थिति के थोड़ी सी त्रास भरी-सी हो जाने की संभावना थी।’[131] 3ÖÖरतीय परिवेश में पली रमा के मन में यह जानने की तीव्र जि-ाासा है कि राधिका का संबंध विच्छेद क्यों हुआ। रमा के प्रश्न और राधिका के उत्तर से दोनों की मानसिकता और दृष्टिकोण का स्पष्ट संकेत मि»ÖŸÖÖ Æ | “कìÖ‡ संबंध था ही नहीं। न मैं संबंध करने गई थी। मैं पढ़ने गई थी, डिग्री लेकर लौट आई।”[132] रमा से मिलने के पश्चात् राधिका अनुभव करती है कि उसे सखी सुलभ कोई चपलता हँसी का भाव देखने को नहीं मिला। राधिका को लगता है “कैसी संकुचित प्रवृत्ति की, पूरी गृहस्थिननुमा हो गई है वह। साथ ही थोड़ा-सा खेद कि क्या विवाह के कुछ वर्ष एक हँसमुख युवती को इतना ईर्ष्यालु, कुंठा-ग्रस्त बना सकते हैं कि वह अपनी किसी समवयस्का से बिना तानों के, बिना उसे नीचा दिखाए बात नहीं कर सकती।”[133]

भारतीयों की यह भी प्रवृत्ति रही है कि विदेशी वस्तुओं के प्रति उनकी लोभलिप्सा का कोई अंत नहीं है। बाहर की चीज़ों पर लगा लेबल उन्हें इतना आकर्षक लगता है चाहे वे सभी वस्तुएँ भारत में कम दामों में ही उपलब्ध क्यों न हो। विदेश में गए रिश्तेदारों की आर्थिक स्थिति ŸÖ£ÖÖ ÃÖमस्याओं की कल्पना किए बिना उनसे केवल अपनी खुशी के लिए उम्मीदें लगाना क्या उनकी हीन मानसिकता का द्योतक नहीं है? “मिलते तो हैं, पर बाहर की चीज़ की तो बात ही कुछ और होती है।”[134]

भारतीयों की आलसी और कामचोर प्रवृत्ति मनीष के माध्यम से उभर कर सामने आई है। इस विषय में तनिक भी संदेह नहीं की जो ‘वर्ककल्चर’ विदेशों में है वह भारत में नहीं पनप सका है। दूसरी बात किसी भी क्षेत्र में देख लें ‘पूर्णत्व’ का जो भाव वहाँ मिलता है उसकी यहाँ कमी है। कार्य की परिपूर्णता में घूस का बोलबाला है, अपने कार्य के प्रति ईमानदार और समर्पित दृष्टिकोण नहीं है। देशप्रेम की दुहाई देकर दायित्वहीनता की दृष्टि देश को भीतर से

खोखला करती है और आत्मविश्वास तथा कार्यकुशलता के आधार पर उनके समकक्ष खड़े होना कल्पनातीत है।

"मेरा मन बार-बार हुआ कि मैं किसी से चीखकर कहूँ कि आप लोगों ने किसी स्वस्थ दिशा की ओर तरक्की क्यों नहीं की। माना कि हम पिछड़े हुए हैं, पर हम कम-ÃÖ-कम सभ्य और शिष्ट तो हो सकते हैं। अपनी जहालत और आलस्य को दूर कर सकते हैं। पर नहीं, यहाँ तो यह है न कि जिससे जितना बन पड़ता है, उतना ही सताने पर तुल जाता है।"[135]

भारत में कस्टम का सामान छुड़वाने के लिए होनेवाली परेशानी, टैक्सीवालों का ²Ö¤üÖ´ÖÖß•Ö »ÖÆ•Ö ´Ö ²Öात करना, अपने ही स्टाफ की ग़ैर ज़िम्मेदारी, ये सब बातें मनीश को शुरू में बहुत अखरती हैं, किंतु कुछ समय बाद यहाँ के माहौल में ढलने पर ज़हेन से अपने आप उतर •ÖÖŸÖÖß Æ |

अक्षय प्रेम के विषय में अपना दृष्टिकोण इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि भारत जैसे देश में स्वतंत्र प्रेम की गरिमा स्वीकार करना कठिन है। उसके लिए स्वतंत्र और परस्पर आकर्षण की एकमात्र परिणति विवाह है। किसी भी स्त्री से पुरुष का प्रेम संबंध सामाजिक विधानों के अंतर्गत नहीं है। इसलिए वह निश्चय करता है कि राधिका के साथ उतना ही संबंध रखना उचित होगा जितना भद्रता के नाते आवश्यक हो - "यह वह देश नहीं है जहाँ ¤Ö †×¾Ö¾ÖÖ×ÆŸÖ व्यक्तियों की मैत्री बहुत सहजता से, एक नॉर्मल चीज़ की तरह स्वीकारी जाती है।"[136] पाश्चात्य और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में इतना अंतर है कि उसे पाटना अत्यधिक दुष्कर कार्य Æ | "³ÖÖ¸त कितना ही उन्नत क्यों न हो गया हो, सामाजिक परिवेश अभी उतना नहीं बदला, बदलने में अभी अर्धशती तो बीतेंगी ही।"[137]

विद्या के अप्रत्याशित अंत के बाद उपन्यास के अंत में पापा का प्रश्न- 'रुकोगी नहीं..... राधिका?' वह निश्चित अंत प्रतीत होता है जिस तक का फासला तय करने के लिए लेखिका इतने विवरण बुनती रही थी। अक्षय के पत्र की निष्फल प्रतीक्षा के बाद मनीश के लिए मानसिक अप्रस्तुति के भाव के साथ राधिका का पापा को अस्वीकार देते हुए यह कहना "... ´Ö¸ एक बन्धु हैं मनीष ..."[138] भी उतना ही यंत्रवत् निश्चित प्रतीत होता है। यह अपनी नियति का निर्मम स्वीकार नहीं 'रिवर्स कल्चरल शॉक' का स्वीकार है। देशी ज़िन्दगी के प्रति मोहभंग और 'इलेक्ट्रा कॉम्पलेक्स' से मुक्ति का मिला जुला संकेत इस अंत में पढ़ा जा सकता है।

4.10 कैरियर - चेतना :

आधुनिक चेतना से संपन्न भारतीय नारी का समाज में स्वतंत्र स्थान है। उच्च शिक्षा प्राप्त कर आज उसके दुर्बल कंधों ने आगे बढ़कर पुरुषोचित बो-ा को भी उठा लिया है। कल तक वह घर की चार दीवारी तक ही सीमित थी और पिता, पुत्र या पति के लिए बो-Ö ÃÖ´Ö-ÖßÖ जाती थी। आज वह अपने पैरों पर खड़ी हो रही है और पिता, पति या पुत्र के आर्थिक बो-Ö को स्वयं बाँट रही है। इतना ही नहीं, कई मध्यवर्गीय परिवारों की युवतियाँ संपूर्ण परिवार के ²ÖÖ-ा को स्वयं उठा रही हैं। समय के साथ-साथ हमारी सामाजिक मान्यताएँ भी बदल रही हैं। ‘Ö¸-गृहस्थी, सास-ससुर, पति और बच्चे ही पहले की नारी के सर्वस्व थे। उन्हीं को सँभालने में, पालने में, उसका सारा दिन और जीवन बीत जाता था। घर की चार दीवारी से बाहर -ाँकने तक की उसे फुर्सत न थी और न आवश्यकता ही। बाहर के समाज से उसका थोड़ा-²ÖÆüÖ •ÖÖ ³ÖßÖ संपर्क था वह पति के माध्यम से ही था। उसके और समाज के बीच पति ही वातायन का काम करता था।

Ã¾ÖÖŸÖ¡ÖŸÖÖ-प्राप्ति के बाद नारी के कार्य-क्षेत्र का इतनी तेजी से विस्तार हुआ कि उसकी शिक्षा-दीक्षा, स्वतंत्र चेतना और गृहस्थी पर बढ़ता आर्थिक दबाव मिलकर उसे नौकरी के क्षेत्र में भी ले आए। इस प्रकार, व्यवसाय के प्रति, कैरियर के प्रति, चेतना का सूत्रपात हुआ। पहले तो वह घर की आर्थिक स्थिति को मज़बूत करने के लिए जो भी काम मिल जाए उसे कर लेती थी और वहाँ उसकी जो भी स्थिति होती थी, उसे सहज स्वीकार कर लेती थी। पर व्यवसाय के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षण-प्रशिक्षण और योग्यता - अनुभव प्राप्त कर लेने पर वह अपने लि‹ उपयुक्त कैरियर के वरण के विषय में सोचने लगी है। कैरियर के प्रति उसका लगाव आर्थिक कारणों से हो अथवा मानसिक संतुष्टि के लिए, विवाह के साथ-साथ कैरियर को भी वह अपने व्यक्तित्व के चौमुखी विकास के लिए आवश्यक सम-ाती है, क्योंकि जब से स्त्रियों ने नौकरी करना शुरू किया है, समाज में उनकी भूमिका में बहुत परिवर्तन आया है। इतना ही नहीं, आधुनिक नारी जिस भी कैरियर को अपनाती है उसमें अपनी कार्यकुशलता और उत्पादन-क्षमता के आधार पर विभिन्न सोपान चढ़ने की चेष्टा करने लगी है। आधुनिका इस दिशा में भी सजग है कि व्यवसाय के क्षेत्र में उसकी उपयोगिता पुरुषों से किसी भी प्रकार कम न ठहरे। यदि

पूरी निष्ठा से काम करने पर भी उसे अपने क्षेत्र में समुचित स्थान नहीं मिलता तो उसके लिए वह संघर्ष का रास्ता अपनाने से भी पीछे नहीं हटती है। नौकरी या कैरियर अब उसके लिए ´ाात्र कालयापन का, तफरीह का और आर्थिक वृद्धि का साधन नहीं रहा, बल्कि उसमें उसका मान और प्रतिष्ठा भी दाँव पर लग गई है।

उषा प्रियंवदा की सभी नायिकाएँ यथा-सुषमा, राधिका, अनु, वाना और लिली अपने कैरियर के प्रति अत्यंत सजग दिखाई पड़ती हैं। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा भी कैरियर को अधिक महत्व देती है। सुषमा परिवार की सबसे बड़ी बेटी है। पिताजी की पेन्शन ¯Ö¸ü ¯Öx¸ü¾ÖÖ¸ü का बो-ा उठाने, भरण-पोषण करने के लिए काफ़ी नहीं है। परिणामत: सुषमा नौकरी करके अपने परिवार की ज़िम्मेदारी निभाती है। पक्षाघात से पीड़ित पिता, सैदव अपनी अतृप्त इच्छाओं का रोना रोती ´ÖÖ †Ö¸ü ”Ö™ü ³ÖÖ‡Ô-बहन, इतने बड़े परिवार का बो-ा सुषमा के कंधों पर है। वह अपने इस परिवार में पूरी रमी हुई है और सबकी इच्छाओं को यथासंभव पूरा करने में लगी हुई है। माता-पिता इस कमाऊ लड़की को ब्याहना नहीं चाहते, जब कि उसकी विवाहयोग्य आयु हो चुकी है। वे अन्य छोटे भाई-बहनों का भविष्य सुधारने में लग जाते हैं। परिवार की इस आर्थिक स्थिति के कारण उसका प्रथम प्रेम असफलÖ ÆÖŸÖÖ Æî| ×¾Ö¾ÖÖÆ ¯Ö¾Ö Æß उसकी कोमलतम भावनाएँ मुर-ाा जाती हैं। वह स्वयं को परिवार के प्रति समर्पित कर देती है और परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने का भरसक प्रयास भी करती है। वह नहीं चाहती कि जो कुछ उसे भुगतना पड़ा है, उसके भाई-बहन भी वही भुगतें। वह मीनाक्षी से कहती भी है - "बात यह है मीनाक्षी कि मैं नहीं चाहती कि जो कुछ मैंने देखा और सहा, वही मेरे भाई-बहनों के सामने आए। मैं तो मन मसोसकर, रोकर रह जाती थी। कभी वह दिन भी था जबकि मेरे पास केवल छ:-सात धोतियाँ थीं जिन्हें धोकर, सुखाकर मैं कॉलेज पढ़ने जाया करती थी।... अगर प्रतिमा अरविंद से शादी करना चाहेगी तो मैं वह भी संभव कर दिखा दूँगी। प्रतिमा को कभी अपनी जीजी की तरह रातों को आँचल मुँह में ठूँस रोना नहीं पड़ेगा।"[139]

सुषमा अपनी योग्यता, लगन और सौजन्यपूर्ण व्यवहार से कॉलेज की प्रिंसिपल तक का मन जीत लेती है और होस्टल की वार्डन भी बन जाती है। किंतु जीवन के एक नाज़ुक मोड़ पर नील के साथ उसके प्रेम-संबंध स्थापित हो जाते हैं। उसका नील के साथ यह संबंध समाज में चर्चा का विषय बन जाता है। कॉलेज में, घर में, सारे समाज में उसे एक दुखद स्थिति का सामना करना पड़ता है। ऐसे में उसे नील अथवा घर-परिवार तथा नौकरी में से एक को चुनना

पड़ता है। नौकरी पर आँच आती देखकर वह अपने प्रेमी नील से अपना संबंध तोड़ लेती है। नील के विवाह के प्रस्ताव को ठुकराकर वह अपने पारिवारिक दायित्व को ही प्रमुखता देती है। इस प्रकार सुषमा के लिए उसका कैरियर सर्वोपरि है। अपने भीतर की नारी की बलि चढ़ाकर वह लोकापवाद से बचती है और उसकी नौकरी भी सुरक्षित रह जाती है।

'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका एक स्वतंत्र व्यक्तित्व वाली आधुनिक नारी है। वह जीवन में प्रत्येक स्तर पर स्वाधीनता चाहती है। स्वाधीनता के लिए आवश्यक है आत्मनिर्भर होना और आत्मनिर्भर होने के लिए अपने कैरियर के प्रति सचेत होना अत्यंत आवश्यक है। सुषमा का कैरियर के प्रति लगाव जहाँ उसकी आर्थिक विपन्नता के कारण है, वहीं राधिका का मानसिक संतुष्टि के लिए। राधिका उच्च शिक्षा हेतु अमेरिका जाती है। वहाँ कमाई करते हुए ¯ÖœÖ‡Ô करती है और डिग्री लेकर वापस भारत लौट आती है। अमेरिका जाकर ही वह भ्रमों व मिथ्या धारणाओं से बाहर निकल पाती है। अपने और अपनी सोच के प्रति विश्वस्त (कॉन्फीडेंट) हो पाती है। अपने निर्णय ले पाती है। भारतीय मूल्यों एवं संस्कृति के प्रति अनुराग पैदा कर पाती है। राधिका अमेरिका से इतना कमाकर लाती है कि साल-¤Ö-ÃÖÖ»Ö जीवनयापन कर सकती है और इतना योग्य बन आयी है कि नौकरी भी पा सकती है। उसे लगता है कि "अब मैं स्वतंत्र हूँ, परिपक्व भी और गढ़ सकती हूँ अपना जीवन, अपना भविष्य।"140

आर्थिक रूप से स्वावलंबी सुषमा एवं राधिका दोनों हैं किन्तु सुषमा की आर्थिक स्वतं¡ÖŸÖÖ जहाँ उसे मूक, बेबस और कमज़ोर होने से उबार नहीं पाती - वहाँ राधिका आर्थिक व्यवस्था का विदेशी ढंग सीख आई है। कुछ समय कड़ी मेहनत और बचत से धन संग्रह और फिर कुछ समय निर्द्वंद्व अवकाश का जीवन-जीवन-यापन की ऐसी व्यवस्था असुरक्षाग्रस्त भारतीय चिति के निकट नहीं पड़ती। विदेश में रहकर अस्तित्व के लिए एकाकी संघर्ष करते हुए राधिका ने बहुत कुछ प्राप्त किया है - गहन आत्मविश्वास, अपने बूते पर अपनी इच्छा से स्वतंत्र जीवन यापन का ऐसा ढंग जो भारतीय भीड़ से उसे अलग कर देता है। आत्मनिर्भरता के कारण ही उसकी चेतना का क्षैतिजीय (हरिजांटल) विकास होता है। जैसी तटस£Ö-निर्वैयक्तिक नज़र से वह अपने समाज, अपने से विभक्त जनों, स्त्री-पुरुषों का दूरी से विश्लेषण करती है - ¾ÖÆ †¤³ÖÖŸÖ Æ | अपने लिए पुरुष का चुनाव भी वह इसी चेतना के उजाले में करती है। इतना ही नहीं भारतीय

मानस के कुछ प्रमुख निषेधों का अतिक्रमण करते हुए वह अपने स्वदेशी आत्मीयों सुहृद जनों के बीच विश्वास से कदम रखती है।

'शेष यात्रा' में नारी-व्यक्तित्व के परिष्कार की प्रक्रिया कथाबद्ध रूप में प्रस्तुत की गई है। अनु एक सीधी-सादी, अनाथ लड़की है। उसकी शादी प्रणव नामक तथाकथित योग्य वर से कर दी जाती है। अनु विदेश की अमानत हो जाती है। वह अपने घरेलू जीवन को ही अपना अंतिम लक्ष्य मानकर उसमें पूर्णत: रम जाती है। लेकिन शादी के चार-पाँच साल बाद ही अनु की तमाम खुशियाँ खत्म हो जाती है क्योंकि प्रणव का संबंध कई स्त्रियों से था। प्रणव चन्द्रिका की खातिर अनु को तलाक़ देता है। तलाक़ लेकर अनु बहुत उदास हो जाती है और उसको अपना जीवन निरर्थक लगने लगता है। आहत और बिखरी अनु का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। अंतत: वह ठीक होती है। अनु आत्मनिर्भर भी नहीं है जिससे अपना पृथक जीवन जी सके। अब तक वह अपने पति पर पूर्णत: आश्रित थी। उसने कभी अपने कैरियर के बारे में नहीं सोचा, डिग्री भी पूर्ण नहीं हो पाई। ऐसे में अकेली अनु बहुत परेशान हो जाती है। उसके दिमाग में आत्मघात के विचार भी मँडराते हैं। निराश अनु को अपनी सहेली दिव्या का आश्रय लेना पड़ता है।

दिव्या अनु को भावनात्मक सहयोग देती है। उसे अपने कैरियर के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करती है। दिव्या से ही अनु को आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी होने की प्रेरणा मिलती है। आत्मविश्वास पाकर अनु जीवन-समर में उतरने के लिए स्वयं को तैयार करती है और यहीं से आरंभ होती है - नारी की 'शेष यात्रा'। अनु व्यावहारिक बनती है और शिक्षा ग्रहण कर डॉक्टर बन जाती है। वह अपने व्यक्तित्व को इतना सुदृढ़ बनाती है कि लंबे अंतराल के बाद उससे मिलकर प्रणव आश्चर्यचकित हो उठता है। प्रणव संपूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व करता है और अनु संपूर्ण नारी समाज का। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि पुरुष की तरह नारी भी हाड़-मांस की पुतली है। उसके व्यक्तित्व की माँगों को नकारा नहीं जा सकता। उसे भी अपने व्यक्तित्व को गढ़ने का, संतुष्ट करने का पूर्ण अधिकार और सहयोग प्राप्त होना चाहिए। ऐसा न करके समाज स्वयं अपना ह्रास ही करेगा जैसा कि प्रणव के साथ हुआ। नारी विकास के प्रश्नों को और अधिक नकारा या -ुठलाया नहीं जा सकता। यदि ऐसा हुआ तो वह वेगवती नदी की भाँति अपना सागर स्वयं तलाश कर लेगी। यह चेतावनी इस उपन्यास में सर्वप्रमुख रूप में प्रतिबिंबित है।

अनु के समान ही ‘†ÿÖ¾Ö¿ÖÖß’ की वाना भी विदेश पहुँचकर दुख -ोलती है। क्योंकि अनु के समान वह भी आत्मनिर्भर नहीं है। वह एक गरीब भारतीय परिवार की अर्धशिक्षित लड़की है जिसका विवाह एक अप्रवासी भारतीय के साथ किया जाता है। वह अपने शिक्षित पति के साथ अमेरिका पहुँचती है और वहाँ की बदली हुई परिस्थितियों में कष्ट भोगती है। पति की अनिश्चित नौकरी और तज्जनित अनेक प्रकार के अभावों की यातनाओं को वह –Ö»ÖÿÖß Æ | ¾ÖÆ अपनी ज़िम्मेदारी से भागती नहीं अपितु परिस्थितियों का डटकर मुकाबला करती है। सारिका की योग्यता और प्रगतिशील विचार वाना के जीवन में नयी स्फूर्ति पैदा कर देते हैं। सारिका अपने कैरियर के प्रति अत्यंत सजग है। वह एक डॉक्टर है और विण्डसर के अस्पताल में ‘¸•ÖÖß›™’ ²Önन कर आयी है। वह अच्छा वेतन भी पाती है। नवीं क्लास तक पढ़ी वाना के मन में सारिका की उच्च शिक्षा और उसका आभिजात्य बड़ा प्रभाव डालते हैं। सारिका ही उसे ÃÖ´Ö–ाती है कि रसोई के आगे भी एक अनन्त संसार फैला हुआ है।[141] गृहिणीपना ठीक है मगर उसे यों ही घरघुसनी बन कर नहीं रहना चाहिए।[142]

सारिका ही वाना का आत्मविश्वास जगाती है, उसे अपने कैरियर के बारे में सोचने के ×»Ö‹ ¯Öx¸त करती है। वाना भी कुछ बनने की ठान लेती है। सबसे पहले वह अंग्रेजी बोलना सीख लेती है, तत्पश्चात् आगे पढ़ती है, ड्राइविंग सीखती है, सेक्रेटरी का कोर्स करती है और मकान बेचने वाली एजेंसी में नौकरी भी करती है। इतना ही नहीं नौकरी छूट जाने पर अंजी के साथ मिलकर बच्चों का ‘›-केअर सेंटर’ भी चलाती है। शिवेश के पलायन के पश्चात् वह स्वयं परिवार की देखभाल करती है, टूटकर बिखरती नहीं। इतना ही नहीं स्वाभिमानी वाना राहुल के छोड़े हुए धन को छूती भी नहीं। इस प्रकार वाना स्वयं अपनी पहचान खोजती है और अपने व्यक्तित्व को गढ़ती है। अंततः आत्मनिर्भर वाना अपने नाकारा पति को भी त्याग ¤ÿÖß Æ |

‘भया कबीर उदास’ की यमन (लिली) एक नामी विश्वविद्यालय के कुलपति की इकलौती संतान है। अतः उसका अपने कैरियर के प्रति सचेत रहना स्वाभाविक ही है। पÖ¯ÖÖ नहीं चाहते कि यमन अपना कैरियर गढ़ने से पहले विवाह करके घर-गृहस्थी में उल-ा जाये। इसीलिए वे उसके विवाह का विरोध करते हैं और एम.ए.के पश्चात् पी-‹“Ö.›ß. ÆÿÖ ˆÃÖ अमेरिका भेज देते हैं। अमेरिका में पी-एच.डी.करते हुए एक प्रख्यात कॉलेज में प्राचीन इतिहास और भारतीय सभ्यता पढ़ाने का कार्य भी वह करती है। इस प्रकार विदेशी भूमि पर अकेली

यमन अपने शोध कार्य के साथ-साथ नौकरी भी करती है। आभिजात्य परिवार में जन्म लेने के बावजूद यमन अपने माता-पिता पर निर्भर न होकर पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर है।

इस प्रकार उषा प्रियंवदा की नायिकाएँ परंपरागत स्त्री-जीवन कü xÿöšöö•öx»ö ¤ÿö Æ‹ आधुनिक जीवन का वरण करती हैं। उनके उच्चशिक्षित नारी पात्र तो कैरियर के निर्माण हेतु संघर्षरत हैं ही और सफलता भी अर्जित करते हैं। किंतु वे नारी पात्र जो विवाह के बंधनö ´ö फँसकर पति की अकर्मण्यता अथवा ग़ैरज़िम्मेदारी के कारण कष्ट -ेल रही हैं, अपने नसीब को कोसते हुए आँसू नहीं बहातीं अपितु पूरी मेहनत और लगन के साथ अर्धशिक्षित होने के ²öö¾ö•ö¤ x±ú¸ Ãö ¯öढ़ाई प्रारंभ कर अपना कैरियर बनाती हैं और अपनी परिस्थितियों में बदलाव लाती हैं। उषा जी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अब वह समय नहीं रहा जब स्त्री-जीवन की सार्थकता आदर्श पत्नी-माँ बनकर अपने को पति के भरोसे छोड़ देने में थी। आज यदि स्त्री स्वयं को आत्मनिर्भर नहीं बनाती तो उसे विवाहोपरान्त निश्चित ही दुख -ेलना पड़ेगा। समाज में भी उसी स्त्री को प्रतिष्ठा मिलती है जिसने अपने कैरियर को बनाया है, जो आत्मनिर्भर है। अत: आज प्रत्येक युवती को अपने उज्ज्वल भविष्य निर्माण हेतु अपने कैरियर के प्रति सचेत होना नितांत अनिवार्य है।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि उषा प्रियंवदा ने समसामयिक युग-बोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में पकड़ने और ईमानदारी पूर्वक अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। आज के नारी जीवन की विसंगतियों को आत्मसात करके उन्हें आधुनिक रूप प्रदान करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। स्वातंत्र्योत्तर परिवर्तित संदर्भ, परिस्थितियाँ, मन:स्थितियाँ उनके द्वारा गहराई से आंकी गई हैं। उनके उपन्यासों में चित्रित नारियाँ स्वतंत्र प्रवृत्तियों से अपनी समस्याओं Ãö •ö-ाकर आत्मसम्मान और गौरव प्राप्त करना चाहती हैं। उनके उपन्यासों में नारी की व्यक्तिगत तथा परिवेशगत, मानसिक एवं शारीरिक समस्याओं को व्यापक अभिव्यक्ति देकर युग-युग से उपेक्षित नारी के अस्तित्व का मौलिक अन्वेषण करने का प्रामाणिक प्रयत्न किया गया है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में यह एक सर्वथा नई चेतना का प्रमाण है। उन्होंने सामाजिक स्थितियों में आने वाले बदलाव और उनके रिश्तों पर पड़ने वाले प्रभाव को नए सिरे से परिभाषित करने का प्रयास किया है। साथ ही बदलते जीवन मूल्यों और परिवर्तित युग-चेतना के कारण व्यक्ति में उत्पन्न अकेलेपन, अजनबीपन, घुटन, संत्रास, निराशा आदि भावों का यथार्थ चित्रण भी उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है।

ÃÖÖ£Ö Æüß ¯Ö×ŸÖ-पत्नी संबंध में आई असहजता, संबंधों का खोखलापन, दिखावे की संस्कृति, पति का स्वार्थी होना, पत्नी का अति महत्वाकांक्षी होना आदि से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण भी अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से किया है। वे विवाहसंस्था के एकपक्षीय दायित्व का अस्वीकार करते हुए अपनी नायिकाओं को अपना जीवनसाथी स्वयं चुनने का अधिकार प्रदान करŸÖß Æü। उनके लिए काम-भावना मानव की एक जैवीय एवं स्वाभाविक आवश्यकता है। अत: अपने उपन्यासों में काम-संबंधों का वह स्वच्छंद चित्रण करती हैं। किंतु कहीं भी यह चित्रण विकृति को स्पर्श नहीं करता। साथ ही प्रवासी भारतीय परिवारों की ज़िंदगी को, उनके आपसी संबंधों और संघर्षों को उन्होंने गहरी अंतर्दृष्टि और पर्यवेक्षण - सामर्थ्य से उद्‌घाटित किया है। इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स और देश-विदेश के कल्चरल शॉक का यथार्थ चित्रण भी उन्होंने किया है। उनकी नायिकाएँ परंपरागत स्त्री-जीवन को तिलांजलि देते हुए आधुनिक जीवन का वरण करती हैं। ये नायिकाएँ किसी भी प्रकार की दासता अथवा बंधन अस्वीकार करती हैं और अपनी व्यक्ति-चेतना का स्वच्छंद बहाव चाहती हैं। इसीलिए वे आत्मनिर्भर रहना चाहती हैं। अत: वे अपने कैरियर के प्रति अत्यंत सजग हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विषम वैश्विक परिस्थितियों से घिरे शताब्दी के इस कठिन काल में उषा प्रियंवदा का उपन्यास-साहित्य युगीन नव बोध के स्पर्श से महत्वपूर्ण हो उठता है। निश्चित ही यह साहित्य नई संवेदना का सशक्त संवाहक है।

:: ÃÖ¤ü³ÖÔ ÃÖæ“Öß ::

1. डॉ.साधना शाह : नई कहानी में आधुनिकता बोध, पृ-127
2. डॉ.रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी उपन्यास, पृ-178
3. महादेवी वर्मा : श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ-74
4. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ-43
5. ¾ÖÆß, ¯Öé-11,12
6. ¾ÖÆß, ¯Öé-48
7. ¾ÖÆß, ¯Öé-103
8. ¾ÖÆß, ¯Öé-69
9. ¾ÖÆß, ¯Öé-116

10. ¾ÖÆß, ¯Ö-107
11. ¾ÖÆß, ¯Ö-73
12. ¾ÖÆß, ¯Ö-117
13. ¾ÖÆß, ¯Ö-104
14. डॉ.शीला रजवार : स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ
15. उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ-143
16. ¾ÖÆß, ¯Ö-144
17. ¾ÖÆß, ¯Ö-241
18. अतुलवीर अरोड़ा : आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिंदी उपन्यास,पृ-120
19. उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे »ÖÖ»Ö ¤ß¾ÖÖ¸ü, ¯Ö-9,10
20. ¾ÖÆß, ¯Ö-13
21. ¾ÖÆß, ¯Ö-78
22. ¾ÖÆß, ¯Ö-84
23. ¾ÖÆß, ¯Ö-33
24. ¾ÖÆß, ¯Ö-48
25. ¾ÖÆß, ¯Ö-10
26. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ-40
27. ¾ÖÆß, ¯Ö-27
28. ¾ÖÆß, ¯Ö-102
29. ¾ÖÆß, ¯Ö-103
30. उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ-59
31. ¾ÖÆß, ¯Ö-94
32. ¾ÖÆß, ¯Ö-94
33. ¾ÖÆß, ¯Ö-169
34. ¾ÖÆß, ¯Ö-169
35. गार्डन चार्ल्स रोडरमल : हिंदी कहानी अलगाव का दर्शन, पृ-22
36. ¾ÖÆß, ¯Ö-40

37. उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ-38
38. ¾ÖÆß, ¯Ö-38
39. ¾ÖÆß, ¯Ö-38
40. ¾ÖÆß, ¯Ö-25
41. नीहार गीते : स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रूप, ¯Ö-62
42. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ-85
43. ¾ÖÆß, ¯Ö-11
44. उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ-50
45. ¾ÖÆß, ¯Ö-117
46. ¾ÖÆß, ¯Ö-89
47. ¾ÖÆß, ¯Ö-96
48. उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ-99,100
49. उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ-36
50. ¾ÖÆß, ¯Ö-65
51. ¾ÖÆß, ¯Ö-69
52. ¾ÖÆß, ¯Ö-77
53. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-38
54. ¾ÖÆß, ¯Ö-26
55. ¾ÖÆß, ¯Ö-26
56. उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ-47
57. ¾ÖÆß, ¯Ö-89
58. ¾ÖÆß, ¯Ö-61
59. ¾ÖÆß, ¯Ö-128
60. ¾ÖÆß, ¯Ö-36
61. ¾ÖÆß, ¯Ö-36
62. उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ-153

63. ¾ÖÆß, ¯Ö-102

64. ¾ÖÆß, ¯Ö-105

65. ¾ÖÆß, ¯Ö-105

66. ¾ÖÆß, ¯Ö-152

67. उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ-59

68. ¾ÖÆß, ¯Ö-116

69. ¾ÖÆß, ¯Ö-54

70. ¾ÖÆß, ¯Ö-87

71. ¾ÖÆß, ¯Ö-88

72. ¾ÖÆß, ¯Ö-162

73. उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ-86

74. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ-99

75. उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ-123, 125

76. उषा प्रियंवदा : अŸÖ¾Ö¿Öß, ¯Ö-33,34

77. ¾ÖÆß, ¯Ö-18

88. ¾ÖÆß, ¯Ö-56

89. ¾ÖÆß, ¯Ö-61

80. ¾ÖÆß, ¯Ö-104

81. ¾ÖÆß, ¯Ö-111

82. ¾ÖÆß, ¯Ö-111

83. ¾ÖÆß, ¯Ö-215

84. ¾ÖÆß, ¯Ö-216, 217

85. उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ-55

86. ¾ÖÆß, ¯Ö-172

87. उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ-10

88. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ-111

89. ¾ÖÆß, ¯Ö-110

90. ¾ÖÆß, ¯Ö-116
91. उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ-33
92. ¾ÖÆß, ¯Ö-89
93. उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ-177, 178
94. हुकुमचंद राजपाल : विविध बोध : नये हस्ताक्षर, पृ-46
95. उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारे, पृ-79
96. ¾ÖÆß, ¯Ö-38
97. ¾ÖÆß, ¯Ö-100
98. ¾ÖÆß, ¯Ö-26
99. ¾ÖÆß, ¯Ö-110
100. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ-50
101. ¾ÖÆß, ¯Ö-16
102. ¾ÖÆß, ¯Ö-74
103. ¾ÖÆß, ¯Ö-88
104. ¾ÖÆß, ¯Ö-70
105. उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ-56
106. ¾ÖÆß, ¯Ö-60
107. ¾ÖÆß, ¯Ö-65
108. उषा प्रियंवदा : भया क²Öß¸ü ˆ¤üÖÃÖ, ¯Ö-92
109. ¾ÖÆß, ¯Ö-121
110. ¾ÖÆß, ¯Ö-124
111. ¾ÖÆß, ¯Ö-144
112. उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ-89
113. ¾ÖÆß, ¯Ö-107
114. ¾ÖÆß, ¯Ö-109
115. ¾ÖÆß, ¯Ö-108
116. उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ-79

117. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ-60
118. वही, पृ-12
119. उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ-5
120. उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ-14
121. वही, पृ-71
122. वही, पृ-90
123. वही, पृ-153
124. भीष्म साहनी, रामदरश मिश्र, भगवती प्रसाद निदारिया : आधुनिक हिंदी उपन्यास, पृ-275
125. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ-29
126. वही, पृ-69
127. वही, पृ-69
128. वही, पृ-43
129. वही, पृ-30
130. वही, पृ-86
131. वही, पृ-61
132. वही, पृ-64
133. वही, पृ-64
134. वही, पृ-64
135. वही, पृ-86
136. वही, पृ-58, 59
137. वही, पृ-51
138. वही, पृ-116
139. उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ-100
140. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ-103
141. उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ-68
142. वही, पृ-80

पंचम अध्याय

उषा प्रियंवदा की शिल्पगत आधुनिकता

पंचम अध्याय

उषा प्रियंवदा की शिल्पगत आधुनिकता

कलाकार अपनी अनुभूति को जिस पद्धति से व्यक्त करता है उसे शिल्प कहा जाता है। शिल्प कलात्मक निर्वाह से संबंधित है। रचनाकार की अमूर्त अनुभूतियाँ शिल्प के कारण ही मूर्तरूप धारण करती हैं। डॉ.कैलाश वाजपेई के अनुसार - "शिल्पविधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा-जोखा है, जिनके आधार पर रचना मूर्त हो सकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी द्वारा अवतरित हुई है।"[1] अपनी अमूर्त अनुभूति को मूर्त करने की पद्धति ही शिल्प है। मधु संधु के अनुसार- "सार्थक अभिव्यक्ति का कलात्मक मोड़ ही शिल्प कहलाता है। इसके लिए अंग्रेज़ी में टेकनिक शब्द प्रचलित है।"[2] शिल्प का अर्थ ढंग, विधान अथवा तरीक़ा [3]ी होता है। शिल्प अभिव्यंजना का विशेष ढंग तथा वह अनुक्रम है, जो रचना के प्रारंभ से रचना के अंत तक विशिष्ट तत्वों के माध्यम से मूर्त होता है। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार - "शैली अनुभूत विषय वस्तु को सजाने के उन तरीक़ों का नाम है, जो उस विषय वस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।"[3] इससे यह स्पष्ट है कि शिल्प की आत्मा मुख्यत: वे संबंध हैं जिनके ढाँचे में अनुभूत विषय वस्तु को समाहित या व्यवस्थित किया जाता है। कुछ विद्वानों ने शिल्प को शैली से अधिक व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए उसे वस्तु की अंत: संरचना का अनिवार्य प्रतिफलन माना है। डॉ.सुरेन्द्र उपाध्याय ने कहा है - "शिल्प से तात्पर्य किसी वस्तु को गढ़ना या रूपायित करना है, किंतु यह नितांत बाह्य ढाँचे के तकनीक के नियम; जैसा कि जैनेंद्र मानते हैं। शिल्प वस्तुत: समूची कृति के अंत:भाव का बाह्य रूपाकÖ¸ Æ, ¾ÖÆ वस्तु की नाटकीय ढंग से संपूर्ण उपस्थिति है।"[4] रचना के निर्माण में जिन उपादानों की सहायता ली जाती है वे सभी शिल्प के अंतर्गत आते हैं। शब्द प्रयोग, वाक्य रचना, भाषा, शैली, सांकेतिकता, बिम्ब, प्रतीक आदि सभी को शिल्प के अंतर्गत रखा जा सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रचना के सृजन में शिल्प का अपना विशेष महत्व होता है।

किन्तु शिल्प कोई निर्माण की प्रक्रिया से सृजित तत्व नहीं है, शिल्प तो रचनाकार की निजी चेतना से सृजित होता है। यही कारण है कि हर लेखक का एक अपना शिल्प होता है जिसे उसकी अपनी '¿Ö»ÖßÖ' कहा जाता है। इस संदर्भ में जीवन विषयक लेखकीय दृष्टिकोण, उसका अपना परिवेश व आंतरिक एवं बाह्य स्थितियाँ भी काफ़ी ज़िम्मेदार होती हैं, जो उसके

शिल्पगत संयोजन में प्रेरक शक्ति बन जाती है। स्पष्ट है कि जीवन विषयक दृष्टिकोण में भेद आ जाने के कारण परिवर्तित व्यक्ति की मानसिकता पर भी काफ़ी प्रभाव पड़ता है। उसी के तहत रचनाकार की रचनाशक्ति में विविध-प्रयोगों का सृजन स्वयंमेव होता रहता है क्योंकि 'कथ्य' के अनुरूप शैलीगत विभिन्नता का आना एकदम स्वाभाविक-सी बात है। बस यही सब वे बातें हैं जिनके कारण आज शिल्प में सांकेतिकता, प्रतीक-²ÖÖ¬Ö, ×²Ö´²Ö-विधान का नवीन प्रयोग आदि माध्यमों में पात्रों की मन:स्थिति को साफ़ तौर पर सामने लाना संभव हो सका है। क्योंकि जीवन विषयक बढ़ रही यांत्रिक जटिलता और बौद्धिकता के कारण कहानी का कथ्य भी बदला है और कथ्यानुरूप शैल्पिक परिवर्तन जो कि सूक्ष्म, सांकेतिक व व्यंजनापरक विषयवस्तु को वैसी ही सांकेतिक शैली में उभारकर सामने ला दे। तभी कथा को हम यथार्थ भाव-³Ö×´Ö ¯Ö¸ü संवेदना से जुड़ी हुई कहानी के रूप में देख सकते हैं और एहसास भी कर सकते हैं - ¯Ö¸üß मार्मिकता व स्वाभाविकता के साथ।

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में भी ये सभी आधुनिक शिल्पगत विविधताएँ कई-कई रूपों में देखने को मिलती हैं। जीवन के नये अनुभवों एवं संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने अनेक निर्वाह पद्धतियाँ अपनायी हैं। कथन की सूक्ष्म सांकेतिकता इनकी बहुत बड़ी उपलब्धि है। इनकी भाषा नवीन सौंदर्य-बोध के प्रेषण में अत्यंत सक्षम है। नवीन अनुभूतियों को उजागर करनेवाले अनेक मूर्त एवं अमूर्त बिंम्बों के प्रयोग ने इनकी भाषा को ज़्यादा चित्रात्मक बनाया है। इनकी रचनाओं में प्रतीकों का प्रयोग अनिवार्य सा बन गया है। प्रतीकों के प्रयोग ने इनकी रचनाओं में गहनता एवं संप्रेषणीयता की वृद्धि की है। साथ ही स्थूल वर्णन की अपेक्षा चेतना-¯Ö¾ÖÖÆ ‹¾Ö ¯Ö¾Ö-दीप्ति की प्रविधियाँ अपनाकर टूटे विचारों, स्मृतियों, प्रतिक्रियाओं का बारीक अंकन इनके क£ÖÖ-साहित्य में किया गया है। स्पष्ट है कि शिल्प के इस वैविध्य ने इनके कथा-साहित्य को ज़्यादा कलात्मक एवं रोचक बनाया है।

5.1 उषा प्रियंवदा की कहानियों का शिल्प-विधान :

"दृष्टि बदली, मानव और जीवन को देखने के ढंग बदले, तो कहानी का शिल्प भी बदला। पहले की सी कथानक प्रधान, -ाटका देनेवाली और मधुर टीस उत्पन्न करनेवाली, गढ़ी-गढ़ाई

कहानियों के बदले जीवन की गहमा-गहमी, रंगारंगी, कटु-यथार्थता, जटिलता, संश्लिष्टता का ¯Ö×ŸÖ×²Ö´²Ö ×»Ö< Æ<... ŸÖ¸Æ-तरह की कहानियाँ लिखी जाने लगीं।”[5]

आज जीवन की परिभाषाएँ काफ़ी बदल गई हैं, जो भिन्न-×³Ö®Ö ºþ¯ÖÖ ´Ö, ×³Ö®Ö-×³Ö®Ö रचना आयामों के साथ दृष्टिगत होती हैं। ज़ाहिर है कि रचनाकार की रचनाशक्ति व दृष्टिकोण में भी सामाजिक जीवन मूल्यों का प्रभाव काफ़ी गहरा रहता है जिसके मूल में उनके चिन्तन व दर्शन में निहित विभिन्न भारतीय तथा पाश्चात्य जीवन-दर्शनों का प्रभाव -ालकता दिखाई देता है, जिसके कारण उसका लेखन उसके अपने समाज, सामाजिक गतिविधि व परिवेश आदि सब कुछ नवीन जीवन-बोध के स्वरों से आप्लावित होता दिखाई देता है। यहाँ पर ‘नये’ से तात्पर्य परिवर्तनशील जीवन-मूल्यों को प्राचीन से विलगाकर युगीन संदर्भों में नयी दिशा और दृष्टि से अनुप्रेरित करना है। दूसरे शब्दों में इसे समकालीन परिवेश से जुड़ा आधुनिकता-²ÖÖ¬Ö ³Öß कह सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि परिवर्तित मानसिक स्थितियों के फलस्वरूप साहित्य में भी बदला हुआ दृष्टिकोण व लेखकीय अभिव्यंजना में नवोन्मेषकारी प्रवृत्तियों का जन्म और विकास की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। कहानियों में बदलते स्वरों की अभिव्यक्ति में परिवर्तन के लक्षणों के मूल में यही तथ्य निहित है।

आज का कहानीकार भी काफी सजग कहानीकार है जिसकी रचनाशक्ति में जीवन-बोध, जीवन-संवेदना व अन्य इसी से जुड़े प्रसंगों को समस्त सामयिक संदर्भों में जोड़कर देखा जाता है क्योंकि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जीवन व्यापी तमाम संवेदनाएँ उसकी वैचारिकता से †×³Ö®ÖŸÖ: •Ö›ß रहती हैं, और यही कारण है कि वह जीवन से हटकर कभी भी अनुभूतियों से नि:सृत अभिव्यक्ति को रूपाकार नहीं दे पाता। सीधा सा तात्पर्य यही है कि हर पल ‘यथार्थ’ के प्रति गहरा सरोकार उसकी लेखनी में तीव्र अनुभूतियों के साथ निहित रहता है। फलत: रचनाकार के ‘कथ्य’ का मूल्यांकन उस प्रामाणिक परिवेश के अभिव्यंजना कौशल से जोड़कर किया जाता है, जिसके तहत शैलीपरक यथार्थता द्वारा कथ्य की मार्मिकता, स्वाभाविकता एवं संप्रेषणीयता संभव बन पाती है। स्पष्ट है कि ‘कथ्य’ की सफलता व संप्रेषणीयता का कुशल प्रतिपादन लेखक की रचनाशक्ति से जुड़े अभिव्यंजना कौशल की कलागत, शिल्पगत च्Ö¼ÖŸÖÖ ¯Ö¸ निर्भर करता है, जिसने रचनाकार की अभिव्यक्ति क्षमता को परखा, माँजा और परीक्षणों द्वारा संपुष्ट किया। ज़ाहिर है कि युगीन संदर्भों का सही ढंग से संप्रेषण एक सही ‘माध्यम’ «Ö¸Ö Æß ÃÖ³Ö¾ा है। यही कारण है कि आज की कहानी का कलात्मक संयम और वैशिष्ट्य ही कथा-

विन्यास की प्रक्रिया को तीव्रतर और सहज संप्रेषणीय बना पाता है, जिससे 'कथ्य' की मार्मिकता की पकड़ शिल्पगत नवीनता में पैठकर संप्रेषण की नयी भाव-भूमियों को खोले एवं जीवन-स्थितियों का सही विश्लेषण सटीक ढंग से हो सके। आज की कहानी का मूल स्वर भी यही है और मूल स्वर का सार्थक अभिव्यंजना-कौशल भी, जो एक कहानी की सफलता की 'ग़ÖÖ¸™ß' बन सकता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में विधागत भिन्नता के साथ ही रचनागत विभिन्न नवीन-प्रयोगों की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। जो कि रचनागत अनिवार्यताओं से भी जुड़ी है, क्योंकि वर्तमान काल में जीवन की यांत्रिक जटिलता, बढ़ रही बौद्धिक चेतना, नूतन विकासोन्मुखी वै-ज्ञानिकता के विभिन्न पहलुओं ने जीवन की सरलता को तोड़-मरोड़ कर रख दिया। फलत: आज व्यक्ति का जीवन उतना सरल नहीं रहा है। यही कारण है कि जीवन की यथार्थ अभिव्यक्तियों से जुड़ी लेखकीय चेतना भला कैसे परे रह सकती थी? फलत: कहानी भी इसी तरह की मानसिक बौद्धिकता, द्वन्द्वपरक ˆ»Ö-ज्ञावों की जटिलता और जीवन में आई विभिन्न प्रकार की वैचारिकता के कारण 'अभिव्यक्ति' के स्वरों में भी भिन्नता और वैविध्यता का आना लाज़िमी था। फलत: कहानियों की लेखन शैली दुरूहता, सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता, कथानक के ह्रासपरक स्थितियों से जुड़ी मन:स्थितियों के बेबाक उद्‌घाटन जैसे बिन्दुओं से जुड़ती गई है। इसी संदर्भ में 1950 के बाद की कहानी (जिसे 'नयी कहानी' नाम दिया गया) के बारे में चर्चा करते समय आलोचक नामवरसिंह ने लिखा है - "परंतु वास्तविकता यह है कि ह्रास कथानक का नहीं बल्कि कथा का हुआ है और जीवन का एक लघु प्रसंग, प्रसंग खंड, मूड, विचार अथवा विशिष्ट व्यक्ति "Öx¸¡Ö Æß कथानक बन गया है अथवा उसमें कथानक की क्षमता मान ली गई है।"[6]

इसी दौर में उषा प्रियंवदा की कहानियों की चर्चा भी की जाती है, क्योंकि उनकी प्रसिद्ध कहानी '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' की चर्चा 'नयी कहानी' †Ö़दोलन में ही की गई थी। उषा प्रियंवदा की कहानियों के शिल्प-विधान में भी यही सब प्रवृत्तियाँ लक्षित की जाती हैं जो कि नई कहानी आंदोलन से जुड़े रचनाकारों में मौजूद रहीं। हाँ, हरेक रचनाकार के लेखन की एक विशिष्टता उसकी अपनी '¥ÛÂ™' में होती है, जो उसके रचना मानस में मौजूद रहकर उसकी अपनी निजी विशेषता बन जाती है। उषा प्रियंवदा की कहानियों में भी बौद्धिकता, सांकेतिकता और प्रतीकात्मक बोध से जुड़ी उन मन:स्थितियों का ज़िक्र सामने आता है - जिसके चलते कथासूत्रों का ह्रास स्पष्टत: दृष्टव्य है।

स्पष्टत: आज की नई कहानी से जुड़ी उषा प्रियंवदा की कहानियों के शिल्प-विधान का विश्लेषण भिन्न-भिन्न भाषागत प्रयोगों, बिम्ब विधान, प्रतीक विधान, नवीन शैलीगत रूपों व ऐसी ही अन्य विशेषताओं से होकर किया जाय ताकि कहानियों की रचनाधर्मिता की एक गहरी और सूक्ष्म जाँच-¯Ö>ŸÖÖ»Ö की जा सके। साथ ही कहानियों की मूल आत्मा से जुड़े लेखिका के रचना -मानस की गहरी पहचान हो सके एवं शैल्पिक सौन्दर्य की हल्की सी विवेचना भी; ताकि प्रयुक्त शिल्प प्रयोगों को गहराई से देख औ¸ ÃÖ´Ö-नकर सहज ढंग से लेखकीय संप्रेषण से सरोकार जोड़ा जाय।

5.1.1 भाषागत नवीन प्रयोग :

आज की कहानी के सामने आज की जीवन स्थितियाँ ही मुख्यत: ज़िम्मेदार हैं। बदलते परिवेश के अनुसार कथ्य में आई विविधता ने शिल्पगत विविधता को जन्म दिया। देश की तमाम परिवर्तनगामी स्थितियों ने व्यक्ति की मानसिकता को परिवर्तित कर डालने में योग दिया। यही कारण है कि आज इन बदलावों के चिन्हों में व्यक्ति का मानसिक गठन भी बदला। फलत: भाषागत बुनावट में भी भिन्न-भिन्न रूपाकारों में परिवर्तन के चिह्न सांकेतिकता, रूमानियत, व्यंजनात्मकता, सपाट बयानी व भावानुकूल भाषा के प्रयोग जैसे विभिन्न प्रयोग दिखाई दिये क्योंकि मानसिक गुत्थियों से घिरे व्यक्ति की अन्तरात्मा के उद्‌घाटन स्वरूप भाषा का बदलना एक अपरिहार्य आवश्यकता बन जाता है। अन्यथा अनुभूति की अभिव्यक्तिपरक सार्थकता भी कैसे हो? कथ्य की सार्थकता व संप्रेषण, बिना समुचित भाषा के भला कैसे संभव है? ज़ाहिर है कि भाषा की बुनावट, शब्दों का सटीक एवं सार्थक प्रयोग, भावानुकूल परिवर्तित भाषा प्रयोग आदि वे भाषागत प्रमुख विशेषताएँ हैं, जिनके द्वारा ही अनुभूति की अभिव्यक्ति में गहराई और जुड़ाव संभव है। इसी कारण आज की कहानी में भाषा के विविध प्रयोगों में शिल्पगत चातुर्य स्पष्टत: दिखाई देता है। इसी के संबंध में डॉ.धनंजय वर्मा लिखते हैं- "¾ÖÃŸÖÖŸÖ: आज की कहानी में जिस भाषा की पहचान हुई है, वह परिवेश की तीखी सच्चाइयों को व्यक्त करने में सक्षम है। ... पहली बार ऐसा हुआ है कि कहानी ने जीवन मूल्यों की निरर्थक तलाश में न भटककर उस भाषा की खोज की यात्रा प्रारंभ की है जो जीवन और उससे सम्बध्द मूल्यों के अन्वेषण के आग्रह से पूर्ण रहती है" |[7]

स्पष्ट रूप में हम आज देखते हैं कि हिन्दी कहानी की भाषा की सशक्तता एवम् अभिव्यंजना कौशल इतना तीव्र और प्रभावी रहता है कि कथ्य की मार्मिकता का बोध स्वत: ही मन पर गहराने लगता है। भाषा में कथ्य के अनुरूप ही परिवर्तन तथा परिमार्जन कí x20̈´20̈ दिखाई देते हैं, जिससे उसकी संवेदनशीलता व अर्थगर्भत्व की गहरी पहचान संभव है। आज की कहानी विशेषत: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी के शिल्पगत विधान पर गौर दें तो ज़ाहिर होता है कि कहानी की भाषा ने सदैव कथ्य के अनुरूप ही अपने को ढाला है। आज की कहानी को विशेषत: नयी कहानी से जोड़कर देखा जाय तो स्पष्टत: इसमें विविध प्रकार के शिल्पगत प्रयोग दिखाई देते हैं किन्तु इन प्रयोगों में बल जो भी है, सबमें एक अनुभव, एक अनुभूति अनुरूप ही भाषा संस्कार जन्मने लगता है।[8] आज की कहानी को हम यथार्थ से छूता हुआ देखत हैं। कहीं से भी कोई फ़ालतू आँकड़ा नहीं, कोई ब्योरेवार चमत्कारिता या बनावटीपन नहीं, बस हमारी ही अपनी ज़िंदगी को सीधे और सरल ढंग से कह देने का सपाट बयानी भरा ढंग ही बहुधा देखने को मिलता है, इन्हीं सब बातों के कारण आज हम कहानी को जीवंत प्रयोगशीलता के रूप में देखते हैं जिसमें गहनतम अनुभूतियों को भी व्यंजनापरक ढंग से कह देने का कौशल है, सामर्थ्य है, और भावबोध भरी शैली भी। यही कारण है कि आज की कहानी की भाषा में दिन-प्रतिदिन की ज़िंदगी से जुड़े 'Ã¾Ö¸' भी देखने को मिलते हैं एवम् उन जटिल और संस्कारिक जीवन की सांकेतिक और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी है। इन सबके बावजूद भी हर लेखक की अपनी एक पृथक रूप से पहचान भी रही है। मोहन राकेश ने लिखा है - "शब्दों को एक कृत्रिम अर्थवत्ता देने के बजाय भाषा की ऐतिहासिक अर्थवत्ता की खोज करना और (निजी) अनुभूति की विशिष्टता से उसे एक नया संस्कार देना - इस पीढ़ी के सभी लेखकों का सा-ा प्रयत्न रहा है।"[9]

उषा प्रियंवदा की कहानियों की भाषा पर दृष्टि डाली जाय तब हमें यही सब विशेषताएँ दिखाई देती हैं। उनमें शिल्पगत चातुर्य है और अभिव्यक्ति कौशल की सामर्थ्य-इसे सभी ने एकमत से माना है। यथार्थ से जुड़े विविध पक्षों में, नये-नये पहलुओं को उभारने में और तमाम अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में सर्वत्र एक कलात्मक अभिव्यक्ति को सहज ढंग से निजी शैली में भरकर समेटा है जिसमें जीवन के अनुभवों की निजता का एहसास काफ़ी गहरे तक जाकर सामने आता है। यही कारण है कि उनके कथ्य में प्रभावोत्पादकता जैसे गुण हैं, साथ ही सांकेतिकता के विविध स्वर जिन्होंने कथ्य की बारीकी को सूक्ष्मता से अभिव्यंजित कर कलागत

कौशल को दिखाया है। उषा प्रियंवदा की कहानियों की भाषा के बारे में एक बात विशिष्ट है कि मुख्यत: उनमें व्यक्तिमन के विविध सूत्रों, संश्लिष्ट वर्णनों एवं तमाम जटिलताओं को तार-ŸÖÖ¸ कर देने का अभूतपूर्व कौशल है। कहीं से कोई बिखराव नहीं, कोई आवरण नहीं, कोई व्यवधान नहीं - सर्वत्र भाषा की सरलता, सहजता और अर्थवत्ता की एकसूत्रता दृष्टव्य है।

भाषा जीवन के स्पंदन को आकार देने का साधन है। जैसे-जैसे संवेदना का स्वरूप बदलता गया है, वैसे-वैसे भाषा में अंतर आता गया है। उषा प्रियंवदा ने विशिष्ट भाषा †Ö¸ शब्दावली के प्रयोग द्वारा कहानी को अधिक सार्थक बनाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने परम्परागत पुरुष भाषा का पूर्ण अनुकरण नहीं किया है। उनकी कहानियों में शब्दों और मुहावरों का प्रयोग अधिक सार्थक रूप से हुआ है। संबंधों का आत्मीय स्वरूप सफलतापूर्वक चित्रित हुआ है। इस प्रकार के चित्रण में घरेलू-परिवेश से जुड़े अनेक नए-नए शब्दों एवं मुहावरों का प्रयोग हुआ है। काव्यात्मकता, चित्रात्मकता और सांकेतिकता के कारण भाषा अधिक प्रेषणीय बनी है। भाषा में बातचीत की सहजता एवं स्वाभाविकता भी दिखाई देती है। प्रतीकों और बिम्बों के प्रयोग में भी इन्हें अत्याधिक सफलता मिली है। कथावस्तु की माँग के अनुसार भाषा का प्रयोग इनकी विशेषता है। भाषा में संकेतों के प्रयोग ने उसके अर्थ-प्रभाव को और बढ़ा दिया है। 'भोगे हुए' को 'ÃÖ"Ö' कहने की भाषा का प्रयोग इन्होंने किया ह| Ã¯ÖÂ™ Æ कि उषा जी ने अपनी आवश्यकतानुसार भाषा को गढ़ने का प्रयत्न किया है और उन्हें इसमें ÃÖ±ú»ÖŸÖÖ ³Öß ×´Ö»Öß Æ|

उषा प्रियंवदा ने समूचे परिवेश का शब्दचित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। प्रकृति के मानवीकरण में भी उन्हें सफलता प्राप्त हुई है। 'कोई नहीं' कहानी के इस उद्धरण में प्रकृति के मानवीकरण के साथ-साथ नमिता के मनोजगत् को उजागर करने का प्रयास है। अपनी सूक्ष्म अनुभूति एवं विश्लेषण शक्ति द्वारा लेखिका ने कम से कम शब्दों में नमिता की संपूर्ण परिस्थिति को चित्रित करने का प्रयास किया है - "मैं अक्षय की ओर देखती हूँ, चुप रहती हूँ। किसी और के लिए अपनी एक भटकी स्मृति बनकर रह जाने का यह संवेदन विचित्र सा है। मु–ने अक्षय से कुछ नहीं कहना है। वह पूछे-अनपूछे प्रश्न मेरे ओठों के पीछे निस्पंद पड़े हैं। मैं चाहती हूँ कि मैं चाँदनी में घुलती जाऊँ, घुलती जाऊँ और फिर मैं, मैं न रहूँ - अक्षय के सामीप्य का बोध, दु:ख, दर्द, तल्ख़ी, शिकायतें, एक्सप्लेनेशन्स, रिक्तता ... मेरे व्यक्तित्व के यह सारे तीखे कगार चाँदनी के हाथों द्वारा चिकने कर दिए जाएँ और फूल-सा हलकापन मेरे उपर छा जाए।"[10]

इसमें प्राकृतिक उपादानों द्वारा कितनी तीखी अभिव्यक्ति दी है, जिसमें मन की तमाम परतों का सूक्ष्म विश्लेषण प्रकृति से घुला-मिला दिया है। साथ ही मन की तमाम शिकायतों को, खालीपन को भाषा की व्यंजना द्वारा अभिव्यक्ति दी है। इसी तरह की सांकेतिक अभिव्यक्तियों को जगह-जगह वैयक्तिकता से संपुष्ट किया है। हाँ, यह ज़रूर है कि पात्र के अनुरूप इनकी भाषा स्वयं ही संवरती गई है, स्वाभाविक होती गई है क्योंकि लेखिका का लक्ष्य जब पात्र विशेष की मनोवृत्ति को उभारना रहता है, तो उसके कथ्य की बारीकी में सर्वत्र एक तरलतामयी भाषा का प्रयोग रहता है। फलत: जब भाषा रूमानी भावबोधों से भरी होती है, तब भी कहीं से कोई अस्पष्टता नहीं रहती बल्कि भाषा तब सरल, सहज और सुगम बनकर छोटे-छोटे वाक्यों में ही अपनी पूरी बात को कह डालती है। हाँ, भाषा में निहित कथ्य की सांकेतिकता और वातावरण की जटिलता सर्वत्र ही मानवीकरण के भावों से ओत-प्रोत है। जैसे कहानी '™™ Æ‹' ´Ö "मन तब खाली पात्र-सा हो जाता है। एक ऐसा पात्र जिसके तल में एक ²Ö>Ö-ÃÖÖ ”¤ ÆÖ और एक बूंद पानी भी न टिक सके। कुछ भी न करने, कुछ भी न सोचने की ऐसी स्थिति में मैं एक ऐसी –Ößȳ»Ö-सी बन आती हूँ, जिसमें कहीं नन्हीं - सी हिलोर भी नहीं उठती, जो काँच की ŸÖ¸Æ जमी हुई, निश्चल, सूने आकाश के नीचे बिखरी पड़ी हो।"[11] यहाँ मानव मन की गहन तल पर पहुँची हुई अभिव्यक्ति को कितना सीधे और सरल ढंग से, किन्तु भाषागत चातुर्य से भरकर वातावरण को लेकर अलंकृत रूप में प्रस्तुत किया है। सर्वत्र परिवेश का मानवीकरण किया गया है, जिससे जटिलताभरे जीवन की अभिव्यक्ति को बड़े ही सुंदर शब्दचयन द्वारा, वाक्यगठन द्वारा और परिवेश के बोध द्वारा सजग होकर किया है।

इस प्रकार भाषा के विविधोन्मुखी प्रयोगों द्वारा सांकेतिक, बिम्बात्मक और प्रतीक युक्त शब्दों का प्रयोग किया है। हाँ, इनमें सर्वत्र ही अर्थ का वैशिष्ट्य व भावबोध की गहराई ¯Ö¸ß मार्मिकता के साथ उपस्थित होकर 'कथ्य' को संप्रेषणीय बना देती है। संक्षिप्त वाक्यों में भी कथोपकथन की सरल भाषा है -

'क्यों रो रही थी?'

बेबी के मुख पर सलज्ज मुस्कान आ गई - '‹ÃÖ Æß'।

'‹से ही कैसे?'

'क³Öß-कभी रात में बड़ा डर लगता है।'

'कÃÖÖ >¸?'

‘ŸÖ´ÆÖ¸ ¦ x»Ö<’

‘´Ö¸ ¦ x»Ö<?’[12]

यहाँ भाषा में कितनी त्वरित प्रत्युत्तर क्षमता है जो पात्रों की मन:स्थिति को ज्यों का त्यों खोलकर सामने रख देती है। इसी तरह कथानक में भी सांकेतिकता और शैलीगत नवीनता है। भाषागत नवीन प्रयोगों द्वारा लेखिका ने कथ्य की मार्मिकता को और भी बढ़ाया है। जैसे - ‘x¯Ö‘Ö»ÖŸÖß Æ‡ ²Ö±ú’ कहानी में -

‘²Ößºþ | ²Ößºý | ²Ößºý |’

‘इस तरह चीखते क्यों हो? बीरू अब कहाँ?’

‘बीरू कहाँ है?’

‘बीरू तो मर चुका।’

‘²Ößºþ?’

‘बीरू नहीं है। बीरू तो तीन साल पहले मर चुका।’

‘मर गया?’

‘हाँ, याद नहीं है, वह आँधी-¯ाानी वाली रात, बर्फ़ पर रक्त के दाग़ लाल कीचड़।’[13]

इस तरह के छोटे-छोटे सांकेतिक वाक्यों द्वारा स्थितियों की गहनता का आभास होता है। साथ ही मानसिक आरोहों - अवरोहों भरे द्वन्द्वों, आत्मपीड़न तथा पश्चाताप भरे स्वर कहानी में दिखाये गये हैं जिसकी आत्मग्लानि भरी अभिव्यक्ति में इतनी मानसिक विक्षिप्तता हेतु वेदना के तीव्र स्वर त्वरित गति से प्रयुक्त हैं।

दरअसल विदेशी भूमि पर सृजित होने के कारण ऐसे भाव और भी गहराते गये हैं। वैसे, भारतीय संदर्भों में भी पात्रों की मानसिक स्थिति का रूपांकन सारगर्भित भाषा व सूत्रात्मक बंधे वाक्यों द्वारा किया गया है। जैसे ‘ज़िन्दगी और गुलाब कú ±ú»Ö’ कहानी में - “प्यार से भी बड़ी एक और आग होती है, पेट की। वह आग धीरे-धीरे सब कुछ लील लेती है।”[14]

जैसे वाक्य में कितनी अर्थजनित गहराई है जिसके द्वारा पूरी कहानी की पृष्ठभूमि एक ²Öार में ही दिमाग में कौंध जाती है और यथार्थ ज़िंदगी से जुड़ी अनुभूतियों भरे स्वर सामने आ •ÖÖŸÖ Æï |

इसी तरह की अनेकानेक ऐसी अभिव्यक्तियाँ हैं, जहाँ लेखिका ने पूरे मनोयोग से वातावरण की गहनता, पात्रों की मनोवै-ाानिक अभिव्यंजना और कथ्य की सार्थक व्यंजना व्यक्त

की है। महानगरीय सभ्यता के खोखलेपन का ज़िक्र रहा हो या वर्तमान जीवन की विसंगतियाँ ÆÖ - सर्वत्र लेखिका ने कहीं व्यंग्यपरक भाषा, तो कहीं संक्षिप्त भाषा, तो कहीं सपाट बयानी - परन्तु सर्वत्र भावानुरूप भाषा का सफल प्रयोग किया है। भाषा के तमाम नवीन प्रयोगों में लेखिका द्वारा क्षण-क्षण से जुड़ी हुई सांकेतिकता व्यंजनात्मकता, व्यंग्यमयता और परिवेश का मानवीकरण करके सर्वत्र अभिव्यक्ति कौशल में नवीनता को पुष्ट किया है। पात्र की मनोगत स्थिति का सजीव उद्घाटन बड़ी ही जीवंतता से कहानी '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' में दृष्टव्य है - "किसी बात में हस्तक्षेप न करने के निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी जैसे सजी हुई बैठक में उनकी "ÖÖ¸¯ÖÖ‡Ô £ÖÖß | ^नकी सारी खुशी एक उदासीनता में डूब गई।"[15]

इस तरह पात्र के मनोगत द्वन्द्वों को बारीकी से खोला है, जिसमें पुरातन और आधुनिक मान्यताओं के संघर्ष को मनोगत भावभूमि में पैठकर दिखाया है। इस तरह उषा प्रियंवदा की कहानियों में उनकी सहजता, स्वाभाविकता के साथ ही नूतन शिल्प दृष्टव्य है। जो कि जीवन के नए मूल्यों के कारण अपेक्षित भी है। मोहन राकेश ने लिखा है - "जीवन के नये संदर्भ कलात्मक अभिव्यक्ति के नये संदर्भ स्वत: ही प्रस्तुत कर देते हैं। कहानी-शिल्प का विकास लेखन की प्रयोगसिद्धि पर उतना निर्भर नहीं करता जितना उसके '´Ö™¸' की आंतरिक अपेक्षा पर।"[16]

कुल मिलाकर उषा प्रियंवदा की कहानियों की भाषा सरल और सहज संप्रेषणीय है। पात्रों के अनुरूप भाषा की बेबाक अभिव्यक्ति में मुहावरों आदि का प्रयोग अत्यल्प ही है, पर संवादों में गठन में - "कहाँ वह डायन, कहाँ बेचारा नटराजन।" (मछलियाँ) जैसे वाक्य पात्र की मनोवृत्ति को साकार रूप में सामने ला देते हैं। इनकी कहानियों में द्वन्द्वों व अन्त:करण के चक्करों में डूबती-उतराती गहराइयों में लेखिका ने सचेतनता के साथ भाषा की अभिव्यक्ति को कथ्य से सीधा जोड़ दिया है। वातावरण की जीवंतता को जागृत करने की कला अत्यंत सार्थक बन पड़ी है- "चलने के पहले वह बड़े उकताए से भाव से एअरपोर्ट के शोरगुल, रेल-¯Ö»Ö, ±úß»Ö-मालाओं, धक्का-मुक्की, रोने-धोने से अलग जहाज चलने की घोषणा के इन्तज़ार में खड़ी हुई थी।... तभी लाउडस्पीकर पर भर्राई सी आवाज़ कहने लगी - कुवैत, बेरूत, रोम, प्राग, लन्दन ....।"[17]

‡सी तरह चाहे पात्रों की मानसिकता के दिग्दर्शन हो, या फिर कथ्य की तारतम्यता हेतु अन्य प्रसंगों को जोड़ा गया हो सर्वत्र लेखिका ने अपनी भाषा में बिखराव नहीं आने दिया है। आलोचक नामवर सिंह ने भी इनकी कहानी '¾ÖÖ¯ÖÃÖß' में भाषा के नयेपन को स्वीकार किया है।

स्पष्ट है कि इनकी कहानियों में छोटे-छोटे प्रसंगों, घटनाओं या अन्य जीवन सन्दर्भों का ज़िक्र पूरी कलात्मक नवीनता से जोड़कर किया है, जहाँ पर शिल्प स्वत: ही अभिव्यक्ति से जुड़कर अपने 'कथ्य' की मार्मिकता को खोलकर रख देता है। जिसको '³ÖÖÂÖÖ' की समर्थता द्वारा एक सार्थक अभिव्यक्ति के रूप में सर्वत्र देखा जा सकता है।

अंग्रेज़ी भाषा-¿ौली और वाक्य-विन्यास का प्रभाव :

उषा प्रियंवदा की कहानियों में भाषा की अपनी विशिष्ट भूमिका है। यहाँ भाषा केवल प्रेषण का माध्यम नहीं है और न वह केवल मात्र, किसी बात को एक खास ढंग से कह ¤ÖÖß Æ | उसमें भाषिक संवदेना परिवेश के जीवंत चित्रों के माध्यम से उभरती है। उनकी कहानी के अधिकांश पात्र उच्च मध्यवर्गीय अथवा शहर से संबंधित होने से तथा विदेशीपन के प्रभाव के कारण उनकी भाषा में अंग्रेज़ी भाषा-शैली और वाक्य - विन्यास का प्रभाव देखा जा सकता है। अभिजात्य पात्रों द्वारा निजी परिवेश को वाणी देने के लिए तथा पात्रों की मानसिक आंतरिकता व्यक्त करने के लिए अंग्रेजी का प्रयोग बहुत किया गया है। यहाँ भाषा कथा की बारीकी और संवेदना के गहरे स्तरों को व्यक्त करने में अत्यंत सक्षम बन गयी है।

इनकी कहानियों में अंग्रेज़ी शब्दों और वाक्य-विन्यास से प्रभावित हिंदी समानक शब्दों और वाक्यों की मनोहारिणी योजना देखने योग्य है। यहाँ कुछेक निदर्शन प्रस्तुत हैं - यथा आत्मीयता, विमनस्क भाव, बहुत ठण्डी तरह सोचने - विचारने, '<ŒÃ¯Ö™' आँखें, एक सोयी - ÃÖß ¤Ö¯ÖÆर, ठण्डी और मोहक शाम, द्रव अंधकार, मौन रहस्य, तन्द्रिल मन, धीर प्रतीक्षा, "¾ÖÆ लेटी थी, मौन, बंधनमुक्त, अलसायी-ÃÖß"[18] स्टैग पार्टी देना आदि। अंग्रेज़ी के सं-ÖÖ ¿Ö²¤ 'अनइज़ीनैस' के अर्थ में '†Ã¾ÖÖÛÃÖŸÖ' का भी प्रयोग नया जान पड़ता है। "यथा-£ÖÖ›ß-ÃÖß †Ã¾ÖÖÛÃÖŸÖ अनुभव करता सा ..."[19] इसी प्रकार निम्न वाक्य अंग्रेज़ी भाषा-शैली का स्मरण दिला सकता है - "एक अनुभूत खालीपन, शून्य की भावना भी।"[20] या- "उसकी आँखें अब शांत, तोषपूर्ण नहीं दीखतीं, वे एकाएक बेचैन हो आयी हैं।"[21] एक जगह पर अंग्रेज़ी शब्द 'ग़ÖÃ™-ÆÖˆÃÖ' का हिन्दी

समानक शब्द 'मेहमान कमरा' दिया गया है। इसी प्रकार '‡™ß´ÖÃÖß' अंग्रेज़ी का हिन्दी समानक ¿Ö²¤ 'आत्मीयता' का प्रयोग तो अनेक स्थलों पर मिलता है और '‡™ß´Ö™' का 'आत्मीय' | ‡ÃÖß प्रकार नार्मल, डिप्रेस्ड, रोब, रिसेप्शन-रूम, डाइनिंग हॉल, डिनर, लंच, होस्टल, स्टार्ट, पार्टी, »ÖÖ‡²Ö¸ी, फर्निचर, थिएटर हॉल, ऑफिस, युनिवर्सिटी, ट्रेन, डिपार्टमेंट, फिल्म, फेवरिट, क्लब, नर्वस, कूल, प्रोग्राम, ड्राइवर, हाई, हैलो, क्लासरूम, रिटायर, फोन, प्लैट, पेरेन्टस्, ब्यूटिफुल, Ã¾Öß™, ›Ö†¸, <¿Ö™, हनीमून, कार्पेट, इमेज, रोमांस, होटल, कुशन, लैम्प, अफेयर, आदि अनेक अंग्रेज़ी शब्द भाषा में घी-शक्कर की तरह घुले-मिले रूप में सीधे प्रयुक्त हुए हैं, जिससे भाषा की पात्रानुकूलता में विशेष वृद्धि ह‡ Æ |

अंग्रेज़ी विशेषणों के प्रभाव से कुछ नये विशेषण - शब्दों के प्रयोग के प्रति भी लेखिका की विशेष रुचि देखी जा सकती है। यथा-स्निग्ध मुस्कान, सहज निश्छलता, कृत्रिम सन्नाटा, मधुर विस्मय, आत्मीय वातावरण, आहत पीड़ा, उत्सुक आँखें, धीर-प्रतीक्षित भाभी, कोमल व्यवहार, खुली हुई सूनी-रिक्त आँखें, फीकी हँसी, विद्रूपमय मुस्कान, अचीन्हे रोष, आर्द्र चेहरे की स्निग्धता, सुखद मौन जैसे विशेषण विचारणीय हैं।

अंग्रेज़ी संस्कृति में 'वीक-एण्ड' मनाने की विशिष्ट परंपरा रही है। उसी के प्रभाव से लेखिका ने एक स्थल पर 'ÃÖ¯ÖÖÆÖÿÖ' बहुवचन-रूप हिंदी में भी चला दिया है - "एक अव्यक्त-ÃÖß ^¤ÖÃÖß ³Öß, •ो सप्ताहांतों को अक्सर मन पर छा जाती है।"[22] इसी प्रकार 'गÖ›-ईवनिंग' के अर्थ में उसके हिंदी समानक शब्द 'सुखद संध्या' का प्रयोग दर्शनीय है - "एक सुखद संध्या के लिए धन्यवाद दिया।"[23] इसी प्रकार शब्दों और वाक्यांशों की पुनरावृत्तियों पर भी अंग्रेज़ी ¿Ö²¤-योजना की छाप देखी जा सकती है। यथा -

1) "कितनी चमकदार, कितनी सुंदर आँखें हैं लड़की की !"[24]

2) "कभी नहीं। अब कभी, कभी, कभी नहीं। वहाँ वापस लौटने पर भी नहीं। थर्ड स्ट्रीट के कमरे में, खिड़की खोलने पर भी नहीं। पूरी ज़िंदगी खड़े रहने पर भी नहीं। पागलों की तरह सुधीरा का नाम पुकारते हुए सड़क पर भागने पर भी नहीं। कभी नहीं। अब कभी नहीं।"[25]

3) "यह बो-ï, यह थकान, अब और नहीं, और नहीं।"[26]

वाक्यों को अपूर्ण रखकर भी कभी अर्थ-व्यंजनाएँ की जाती हैं। अत: अधूरे वाक्यों की योजना करने की भी विशेष प्रवृत्ति और रुचि इनकी कहानियों में देखी जाती है। यथा-

1) “यह बात नहीं कि मम्मी में कोई दोष था, फिर भी...”[27]

2) “तब मैंने गंभीरतापूर्वक सोचा नहीं था। मु-ो अनुमान भी न था कि मु-Ö ‹ÃÖÖ लगेगा। अब ´Ö-ो लगता है कि ...”[28]

3) “यदि तुम रोगियों को देखो तो जानो कि किस तरह आखिरी साँस तक जीने के ×»Ö‹ »Ö›ÌüÖ ¸ÆüÖ Æî †Ö¸ü ...”[29]

अंग्रेज़ी वाक्य-विन्यास की छाप निम्न उदाहरणों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है-

1) “उसका जीवन एक लम्बी प्रतीक्षा बन गया था- उस पदचाप के लिए, जो सुनाई नहीं पड़ी; पत्र, जो नहीं आया; फोन, जिसकी घंटी कभी उसके लिए नहीं बजी।”[30]

2) “लौटने पर कुछ दिन हमेशÖ †•Ö®²Öß, †•Ö®²Öß-सा लगता है। उजाड़, धूल-³Ö¸üÖ, बेरौनक।”[31]

3) “पर आज का दिन उसका अपना, सोचने के लिए, याद करने के लिए, दुख मनाने के ×»Ö‹।”[32]

कíÆüâ-कहीं पर तो पूरे-के-पूरे वाक्य भी अंग्रेज़ी के ही हैं। यथा-

1) “सब्स हिम राइट। बट तारा, यू हैव इम्प्रूव्ड, आइ मीन, यू आर लुकिंग एज़ ‡±ü..‹•Ö ‡±ü...!”[33]

2) “ओ विजी, यू आर सो स्वीट!”[34]

3) “शी वाज अ ब्यूटीफुल गर्ल!”[35]

5.1.2 ²Ö¿²Ö-विधान :

×¿Ö»¯Ö×¾Öधि के उपादान के रूप में बिम्ब का अत्यधिक महत्व है। बिम्ब एक प्रकार की मानस प्रतिमा है। जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है तब बिम्ब की सृजना होती है। साहित्य कोष के अनुसार-“प्रस्तुत परिवेश के संवेदनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मानस में अतीत की तथा कभी अस्तित्व न रखने, न घटने वाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ भी रहती हैं। बिम्ब शब्द इसी मानस प्रतिमा का पर्याय है।”[36] मनुष्य स्वभावत: घटना और वस्तु को बिम्ब रूप में ही ग्रहण करता है और फिर प्रतीकों और बिम्ब के माध्यम से अपने-आपको अभिव्यक्त करता है। इससे कथा साहित्य अधिक दृश्यात्मक और अलंकृत होता

है। कैलाश वाजपेयी के अनुसार-"जहाँ शब्दों द्वारा चित्र खड़ा करना बिंब की मूलभूत विशेषता है। वहीं अपनी प्रकृति में बिम्ब अलंकृति और इंद्रियगत विशिष्टता इन दो तत्वों से भी युक्त होता है। अपनी अलंकारिकता के कारण ही बिम्ब संक्षिप्त और व्यंजनापूर्ण बन पाता है तथा इंद्रियगत विशिष्टता के कारण वह संगीत और चित्रकला के निकट आ जाता है।"[37]

बिम्ब की इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखकर अपनी रचना को अधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए उषा प्रियंवदा ने बिम्बों की सुंदर रचना की है। उन्हें मनोहारी बिम्बों की योजना में विशेष रुचि और सिध्दहस्तता रही है। उन्होंने बिम्बों की सृष्टि में विशेष रूप से सतर्कता बरती है। विविध प्रकार के बिम्बों की सृष्टि से इनकी कहानियों की भाषा समृध्द हुई है। इनकी कहानियों में शब्दगत, रूपगत, स्पर्शगत, गंधगत और रंगगत बिम्बों की योजना के प्रति विशेष ´ÖÖÆ दीख पड़ता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

5.1.2.1 शब्दगत बिम्ब :

1) "उसी के निकट शायद चौका था, क्योंकि कढ़ाई में कलछी चलने की आवाज़ साफ़ सुनाई दे रही थी। फिर एक छनाका हुआ, शायद पानी डाला गया।"[38]

2) "कमरे के गहरे गाढ़े मौन के बाहर सीत्कार करती हुई पेड़ों की शाखाएँ हैं, वह स्वर जैसे दूर तक फैलता जा रहा है।... केवल तेज़ हवा का स्वर यथार्थ था और हर नया -गोंका जो शाखाओं को -गक-गोरता हुआ दूर तक चला जा रहा था, उसकी आवाज़ निरंतर मेरे कानों में ŸÖ•Ö ÆÖŸÖß "Ö»Öß •ÖÖ ¸Æß £Öß |[39]

3) "अन्दर से उनके बर्तन खटकाने की आवाज़ आती है... रात मेंढकों का सम्मिलित Ã¾Öर, कभी - कभी बादल गरजते हैं ... हर पन्द्रह मिनट पर घड़ी बजती है।"[40]

5.1.2.2 रूपगत बिम्ब :

1) "दाहिनी बाँह मोड़कर उस (टीटी) ने सिर के नीचे रख ली है, बाँयी बाँह नीचे –Ö»Ö ¸Æß Æ, ÃÖÖ>ß Æ»का-से बादामी रंग की है, जिसकी सिल्क टेबिल-लैम्प के प्रकाश में f–Ö»Ö×´Ö»ÖÖ ¸Æß Æ |"[41]

2) “यहाँ पहुँचकर भूमि समाप्त हो जाती है। विस्तृत जल-राशि, जहाँ आकर ग्रीन बे मिशिगन सागर में खो जाती है, तट के किनारे सघन वृक्ष, जिनके पत्ते पत-ग्र के आगमन की सूचना देते हुए हलके पीले पड़ गए हैं, कुछ वृक्षों के पार छोटे-छोटे पर्वतों की एक श्रृंखला। दाईं ओर एक सार्वजनिक टेलिफोन, तट से हटा हुआ एक कैफ़े, जिसकी दीवारों का सफ़ेद रंग पानी ´Ö ‘Ö»Ö-घुलकर मैला-सा हो आया है।”[42]

3) “उजले, सफ़ेद बेसिन के किनारे पानी की बूँदें फिसल रही थीं। माया की आँखें उस एक बूँद पर टिक गईं, जिसे सूरज की पहली किरन ने इन्द्रधनुषी रंगों से सजा दिया था।”[43]

5.1.2.3 स्पर्शगत बिम्ब :

1) “समीर ने विचित्र दृष्टि से रीना को देखा और कुछ कहने जा ही रहा था कि रीना ने अपने दोनों हाथ उसके कंधे पर रख दिए।... समीर का ह्रदय भर आया। उसे लगा कि उसके अंदर कठोर लौह पिंड पिघल गया है।... उसने मृदुलता से रीना को बाहों में भरकर उस के केशों में अपना मुँह छिपा लिया। समीर का शरीर एक स्वर्गिक अनुभूति से पुलक उठा। साथ ही एक अव्यक्त विषाद ने बाहें फैला उसे ढाँक लिया।”[44]

2) “उस (कुँवर) के -ुके हुए हाथ का स्पर्श उसे अनेक अनजाने संदेश दे रहा है। वह एक पुरुष का स्पर्श है, एक प्रेमी का भी ...”[45]

3) “उस स्पर्श से मेरा (रोहिनी का) सारा शरीर थरथरा उठा। उस क्षण में मैं जैसे दो हो गयी। मेरा एक भाग शरीर से अलग, दूर खड़ा निरपेक्ष दृष्टि से मेरे दूसरे भाग को जो कि †रविन्द के स्पर्श मात्र से आकुल, अधीर हो उठा था, देखने लगा, अरविन्द की उँगलियाँ मेरे कन्धों में गड़ने लगीं - और उस क्षण मेरा चीखकर रोने को मन हो आया।”[46]

5.1.2.4 गंधगत बिम्ब :

उषा प्रियंवदा की कहानियों में गंधगत बिम्ब के उदाहरण विरल हैं। यथा -

1) “उसकी साँसों में बरसों बाद पुरुष-शरीर की अपनी विशिष्ट गंध भर गई, तम्बाकू, पसीने और अनाम हल्की-सी सुगन्ध, सूखी धरती पर पानी की पÆ»ÖÖß ²ÖÖ”Ö¸-सी चिर प्रिय, चिर नूतन ।”[47]

2) “सारे दिन हींग, नारियल के तेल और विविध मसालों की गंध गलियारों में मँडराया करती थी ।”[48]

3) “भाभी की धोती मैली थी और उसमें घी की तेज़ महक आ ¸ÆÖß £ÖÖß ।”[49]

5.1.2.5 रंगगत बिम्ब :

1) “पोर्टिको की धूमिल, पीली दीवारों पर गहरे, बैंगनी रंग में फूलती हुई घनी बेगमबेलिया थी । अपने वैभव में लचकती--Ö´ÖÖŸÖÖß-बलखाती । जब हवा आती, तो माया अपनी खिड़की से उनसे बैंगनी रंग के फूल टूट-टूटकर उड़ते हुए देख सकती थी ।... इस वक्त सूरज की किरणें बेगमबेलिया पर पड़कर उसके रंग को और चटकीला बना रही थीं ।”[50]

2) “रोशनी बेम्बी के कोट और मीरा के मुख पर पड़ रही थी । जैसे वह चाँदनी-ÃÖß थी, जिसमें मीरा के चेहरे का उदास साँवलापन धुलकर निखर आया था ।”[51]

3) “डॉक्टर कुमार के स्वागतार्थ दिए गए उस भोज में मैंने नीली साड़ी पहनी थी ।... नीली सिल्क की साड़ी, उस पर चटक नारंगी बार्डर । नीला ब्लाउज़ साड़ी में कुछ ऐसा घुल-मिल गया था कि सुनहरे तारों से बुना नारंगी बार्डर ही िलमिला रहा था । बार्डर के रंग की ¾ÖÖÃÖß Æß चटक लिपस्टिक ।”[52]

5.1.3 प्रतीक विधान :

मूलत: फ्रांसीसी काव्य-साहित्य से प्रारंभ प्रतीकों का प्रयोग आज साहित्य की हर विधा में देखा जा सकता है । क्योंकि आज हमारे ही आस-पास का जीवन इतना जटि»Ö <¾Ö ¤²ÖÖ-Ö ÆÖ गया है जिसकी सांकेतिक अभिव्यक्ति प्रतीक-विधानों द्वारा ही संभव है । प्रतीक के शाब्दिक अर्थ को देखें तो यही ध्वनित होता है कि जिस अर्थ को हम सीधी-सरल भाषा में न कह सकें, उसे व्यंजनात्मक रूप में किसी विशिष्ट अर्थ की व्याख्या हेतु प्रयोग किया जाय । डॉ.परमानन्द

श्रीवास्तव ने भी इसी बात को मानते हुए लिखा है - "व्यंजना के नये माध्यम की खोज में आज का कहानीकार नये और उपयुक्त प्रतीकों का अन्वेषण करता है। 'रचना' में प्रवाहमान अन्तर्धाराओं को वह प्रतीक पद्धति द्वारा ही व्यक्त करता है। ... अपने जीवनानुभवों को रचनात्मक अनुभवों का रूप देने के लिए व्यक्तित्व का जो विलयन अपेक्षित होता है, वह 'प्रतीक' को सम्मुख कर देने में ही सम्भव हो पाता है।"[53]

यहाँ जिस प्रतीक - योजना का ज़िक्र किया है, यह तो स्पष्ट ही है कि पात्रों के मनोवै-ाानिक विश्लेषण हेतु ही प्रतीक-योजना का प्रयोग संभव है। कहानियों में प्रतीक - प्रयोग की उपादेयता इस बात की ओर एक संकेतार्थ है कि हम इसके प्रयोग द्वारा किसी अन्य बिन्दु की ओर देख रहे हैं; किसी और संकेत को स´Ö-ा रहे हैं, और फलत: कहानी में काव्यात्मकता का एहसास गहराने लगता है। आज की कहानी में प्रतीक - विधान की उपादेयता की ओर संकेत करते हुए कहानीकार राजेन्द्र यादव लिखते हैं - "कथा के उपजीव्य बन जाने के खतरे और बाहरी सीमाओं के बावजूद प्रतीक ही एक ऐसा विधान है, जिसमें दूर तक चले जाने वाले प्रभावों और परिणतियों को व्यंजित किया जा सकता है। और पाठक प्रस्तुत के कथ्य की विराटता को स्वयं सायास प्राप्त करने की संतुष्टि महसूस करता है।"[54]

यही कारण है कि प्रतीकवादी कहानियों में अनुभूतियों की व्यंजनापरक अभिव्यक्ति द्वारा ŸÖ´ÖÖ´Ö ^»Ö-ावों, समस्याओं, व्यक्ति या वर्गीय मनोवृत्तियों आदि की सूक्ष्म और सांकेतिक अभिव्यक्ति प्रतीक विधान द्वारा ही सम्भव है। हाँ, यह ज़रूर है कि इन कहानियों में एक जटिलता या अतिबौद्धिकता जनित दुरूहता जैसा एहसास होता है, या कि ये कहानियÖÖ अधिकांशत: अभिजात्यवर्गीय समस्याओं में ही उल-ी रह जाती हैं, किंतु यह सत्य है कि आज के जीवन की जटिलता और आधुनिक युग की विड़म्बनापरक स्थितियों की सूक्ष्म व्यंजना हेतु प्रतीक-विधान ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा हमें किसी विशिष्ट अर्थ की सूक्ष्म व्यंजनापरक अभिव्यक्ति बोध की गहराई मालूम होती है और साथ में कहानियों की भावानुभूतिकारक कलात्मकता के अनूठे दर्शन भी जिसने आज के जीवन द्वन्द्वों एवं पात्रों की मन:स्थितियों को पूरी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है।

उषा पियंवदा की अधिकांश कहानियाँ इस प्रतीक-विधान से भरी पड़ी हैं। इन्होंने ज़्यादातर उच्च मध्यवर्गीय और मध्यवर्गीय व्यक्तियों की समस्याओं का ही चित्रण किया है, जिसमें पात्रों की मनोगत स्थितियों की सूक्ष्म व्यंजना लेखिका ने वर्तमान जीवन की जटिलता की

सापेक्षता में की है। हाँ, यह फिर भी सत्य है कि दुरूह से दुरूह बिन्दु की अभिव्यक्ति भी लेखिका ने बड़े ही सूक्ष्म एवं सरलतापूर्वक ढंग से की है। कहानी के शीर्षकों तक में प्रतीक-योजना दृष्टव्य है। '"ÖÖ¤ "Ö»ÖŸÖÖ ¸ÆÖ' कहानी के शीर्षक द्वारा कथ्य के बिन्दु की ओर प्रतीकÖ£Ö ध्वनित है। कहानी में रोहिणी के जीवन का प्रतीकार्थ आकाश में चलते चाँद की तरह एकान्त और निस्संग है जिसे अकेलेपन में ही एक दिन ढल जाना है। यहाँ चाँद के समान जीवन के एक गति से बढ़ते रहने की ओर संकेत है। जिस प्रकार चाँद की एक गति है, नियति है, उसी प्रकार का जीवन-चित्रण रोहिणी का है, कहानी के अंत में वह विनय से कहती है - "´Ö-ने अकेले ही जीना है विनय। जो कुछ मैंने तुमसे कहा उसे प्रलाप सम-ाकर भूल जाओ।"[55] के बाद शीर्षक की प्रतीक - व्यंजना - ""ÖÖ¤-जो अब भी आकाश में अपनी अन्तहीन यात्रा पर चला जा रहा है।"[56] वाक्य नि:संदेह कलात्मक सृष्टि का प्रमाण है। 'कच्चे धागे' कहानी भी इसी प्रतीकात्मकता की ओर संकेत करती है। लेखिका ने आधुनिक परिवेश में रिश्तों के स्वरूप को उजागर करने का प्रयास किया है। ये रिश्ते कच्चे धागों के समान होते हैं। परीक्षा की घड़ी आने पर इनके कच्चे होने की असलियत खुल जाती है। कहानी में कुंतल की सतरंगी चूड़ियाँ उसके सतरंगी सपने एवम् उसके दिल के प्रतीक हैं। कहानी में भावना के कच्चे धागों से बुने ¸¿Ö´Öß सपनों के दु:खद अंत का मार्मिक चित्रण हुआ है।

इसी प्रकार के प्रतीक-²ÖÖ-Ö ÃÖ †ÖŸÖ-प्रोत कहानी 'मछलियाँ' में भी सांकेतिकता तथा सूक्ष्म अभिव्यक्ति द्वारा कहानीकार ने अपनी कलात्मकता का परिचय दिया है। एक तथ्य है कि कहानी में प्रतीकों के प्रयोग द्वारा जटिल से जटिल और दुर्बोध स्थितियों की भी व्याख्या बड़ी ही सफलता और सूक्ष्मतापूर्वक की गई है। यही कारण है कि जटिल और बौद्धिक आवरण के ²ÖÖ¾Ö्जूद भी ये कहानियाँ अपना मार्मिक प्रभाव छोड़ने में सफल रहती हैं। 'मछलियाँ' शीर्षक के साथ ही कथावस्तु का प्रतीकार्थ यहाँ कितनी कुशलतापूर्वक व्यंजित हुआ है - "वाशिंग्टन में मैंने एक नाटक देखा था जो बहुत पसंद आया '"Ö™ß ´Ö"»Öß, ²Ö>ß ´Ö"»Öß' ×•ÖÃÖ´Ö ²Ö>ß ´Ö"»Öß "Ö™ß मछली को निगलती रहती है। तब से कभी-कभी सोचती हूँ कि क्या छोटी मछली उलटकर वार भी नहीं कर सकती?" कहकर वह अनमनी सी हँसी - "तुम नहीं सम-ोगे।"[57] •ÖÃÖ प्रयोगों द्वारा पूरा कथ्य मन को काफ़ी गहरे तक अपने प्रतीक-विधान द्वारा छू जाता है।

इसी तरह के तमाम प्रयोग लेखिका ने मानसिकता की अभिव्यक्ति हेतु प्रकृति में भी प्रतीकों को चुनकर किये हैं। कहीं कहानी के अंत में - "एकाएक लहरों का गर्जन बढ़ गया।

शायद, ज्वार आ रहा था।"[58] जैसे वाक्यों द्वारा होता है, तो कहीं –रर रहे पत्तों, बाँसों के पेड़, अकेली निर्जन सड़कों, यूक्लिप्टस के पेड़ों आदि के वर्णनों की सांकेतिक अभिव्यक्ति 'अकेले मन' के प्रतीकार्थों को खोलकर सामने रख देती है। जिससे समस्त स्थितियों की –लक पूरी मार्मिकता और संवेदना के साथ सामने आ जाती है।

कÆ¾-कहीं पर उषा प्रियंवदा ने प्रतीकों का सूक्ष्म एवं सांकेतिक प्रयोग किया है। '–ÖŠÖ दर्पण' कहानी हमें जीवन-यथार्थ के दर्पण में भावुकता या भावना के –ूठे मोह को देखना छोड़कर अत्यंत यथार्थवादिनी दृष्टि अपनाकर एकदम व्यावहारिक हो जाने का ही सत्परामर्श देती है। कथांत में अमृता यति के लिए कुछ किताबें लेकर उसे देने के लिए रेस्त्राँ में जाती है, यहाँ पर यति के आने से पहले कुँवर आ जाता है और उसके साथ चाय पीते हुए अमृता की चेतना यह अनुभव करती है कि - "कुँवर यथार्थ था, वास्तविक।"[59] यति वहाँ आकर दोनों को देख उल्टे पैरों लौट जाता है। रेस्त्राँ से घर लौटते समय अमृता यति के लिए लाया हुआ किताबों का पैकेट वहीं सीट पर छोड़ देती है और कुँवर द्वारा "यह पैकेट आपका है?"[60] पूछने पर मात्र इतना कहती है - 'नहीं' और कुँवर के साथ बाहर निकल जाती है। यहीं पर कहानी समाप्त हो जाती है। यहाँ पर 'पैकेट' स्वत: यति के साथ उसके निजी आत्मीयतापूर्ण संबंधों का प्रतीक है। पैकेट को छोड़ना मानो यति के प्रति अपने व्यर्थ मोह-भाव को छोड़ने का ही संकेत है।

'x¯Ö'Ö»ÖŸÖß Æ‡ ²Ö±ú' कहानी का शीर्षक भी सांकेतिक है। निजी अपराध-बोध के कारण कथानायक अक्षय विभक्त मनस्कता नामक मनोरोग का शिकार हो जाता है। सुधीरा के प्रेमी की मृत्यु हो जाने के पश्चात् अक्षय के अवचेतन मन में निजी अपराध-बोध की जो '²Ö±ú' •Ö´Ö चुकी थी, वह छबि के 'सर्वात्मना समर्पण' से अवश्य अब कुछ पिघलनी आरंभ हो गई थी। यही प्रस्तुत कहानी के शीर्षक का औचित्य जान पड़ता है। '²Ö±ú' वस्तुत: यहाँ 'मानसिक जड़ता' की स्थिति का ही सशक्त प्रतीक है।

'™™ Æ‹' कहानी की नायिका टीटी एक रोगी संतान (पुत्र) के जन्म लेने के कारण एक x¾Öxचत्र मनोग्रंथि सें ग्रस्त हो जाती है, जिसका संबंध अतृप्त मातृत्व या वात्सल्य-भावना से ही लगाया जा सकता है। उसके घर में भास्कर देखता है कि-"किसी सुंदर पेड़ की आपस में गुँथी हुई शाखाओं को काट कर मेज़-सी बनाई गई है जिसके ऊपर पारदर्शी काँच है, जिससे वे गुँथी हुई शाखाएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं।"[61] भास्कर सोचता है कि ऐसी विचित्र शाखाएँ उसने "¯ÖÆ»Ö

कभी नहीं देखी ।"[62] '´Ö•Ö'-सी काष्ठ-वस्तु टीटी के उल–ो हुए अतृप्तिपूर्ण मातृत्व की ही सशक्त प्रतीक है। हम इसे प्रो.कृष्णमूर्ति और उनके उल–ो हुए दाम्पत्य-जीवन का भी एक प्रतीक मान सकते हैं।

उषा प्रियंवदा के प्रतीक कहीं-कहीं खटकते भी हैं या अकलात्मक नज़र आते हैं। 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल' कहानी में गुलाब के फूल वास्तव में जीवन में मिलने वाली सुख-सुविधाओं के ही सशक्त प्रतीक बना कर उभारे गए हैं। प्रतीक - निर्वाह के लिए आद्यन्त इसी प्रतीक का 5-6 बार सायास प्रयोग हुआ है, जो कि डॉ.नामवर सिंह जैसे समीक्षकों को बेहद नागवार लगा है। उन्हें इस प्रकार की आवृत्ति अकलात्मक होने के कारण बेतरह खटकी है, जो कि ठीक ³ÖÖ Æ | "ज़िंदगी ने उसे भी गुलाब के फूल दिये थे, लेकिन उसने स्वयं ही उन्हें ठुकरा दिया -"[63] जैसे वाक्यों की एकाधिक आवृत्तियों से ऐसा लगता है, मानो लेखिका को पाठकों की व्यंजनाग्राहिणी प्रतिभा पर बिल्कुल भरोसा ही न रह गया हो। इससे कहानी की अपेक्षित कलात्मकता को अवश्य क्षति पहुँची है। इस प्रतीक का एकाध बार उल्लेख ही कहानी के कथ्य-सत्य को गहन कर सकता था, उसकी 5-6 बार आवृत्तियों की कोई आवश्यकता ही न थी।

समग्रत: प्रतीकों की भरमार उषा प्रियंवदा की कहानियों में इतनी ज़्यादा है जो परिवेश से पैदा हुई जटिलता के कारण और भी अधिक गहराई से पात्रों के द्वन्द्वों को सामने मुखरित कर देती है। स्पष्टत: प्रतीक-प्रयोग द्वारा लेखिका ने कथ्य की पकड़ को सार्थकता प्रदान की है जो कि प्रवासी प्रभाव के कारण और भी स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी बन पड़ी है। वैसे भी यह तो साफ़ है कि पाश्चात्य देशों में रह रहे व्यक्तियों की अन्तर्मुखी मानसिकता के सजीव उद्‌घाटन हेतु प्रतीक व्यंजना बेहद अपरिहार्य भी थीं। यह एक सच्चाई भी है, साथ ही आवश्यकता भी। जिसने प्रतीक व्यंजना को अनुभूतिपरक साभिप्राय सार्थकता प्रदान की। अ–ेय ने भी माना है कि - "महत्व या मूल्य प्रतीक का या प्रतीक में नहीं होता, यह उससे मिलने वाली अनुभूति की गुणात्मकता में होता है।"[64]

5.1.4 ¿Ö»Öीगत नवीनता :

यह सच है कि नयी कहानी में भी नयी कविता की तरह शिल्प का वैविध्य भिन्न-×³Ö®Ö स्वरूपों में देखा जा सकता है। बिम्ब, प्रतीक, संकेत, दुरूहता, बौद्धिक जटिलता जैसी बातों को

लेकर ही आलोचक नामवर सिंह ने नयी कहानी की साम्यता नयी कविता के बल पर की है- "अभी तक जो शब्द नयी कविता के लिए बदनाम (?) थे, उन्हीं से कहानी भी अलंकृत हो रही है।"[65] लेकिन यहाँ इस प्रसंग को बढ़ाने की बजाय मेरा मतलब व मन्तव्य उषा प्रियंवदा की कहानियों के शिल्प-विधान को लेकर है। जैसा कि स्पष्ट है उषा प्रियंवदा की लेखकीय चेतना की पृष्ठभूमि प्रवास से प्रभावित है, इस कारण भी इनके शिल्प पर कथ्य, भाषा, शैली, परिवेश आदि कई जगहों पर हम प्रवासी प्रभाव को स्पष्टत: देख सकते हैं। यहाँ तक कि इनके पात्रों की मन:स्थिति चित्रण हेतु प्रयुक्त शब्दावली का ज़िक्र किया जाय, या लेखिका द्वारा वर्णित कथ्य की गहराई हेतु उसकी अपनी शैलीगत किसी विशेषता को आँका जाय- इनके प्रवासी प्रभाव की –ालक को तो किसी भी तरह नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। यहाँ पर इसका सीधा सा तात्पर्य यही है कि लेखिका ने कथ्य में जिस अकेलेपन, अजनबीपन, टूटन, शून्यता की स्थिति, ÃÖ¡ÖÖÃÖ-भोग व सार्त्र-कामू आदि अस्तित्ववादियों की वैचारिकता को दिखाया है - उसके निरूपण में परिवेश की जिस –ालक को लेखिका ने जिस शैली में पिरोया है वह नि:संदेह शिल्पगत नवीन प्रयोग ही है। शिल्पविषयक चर्चा में श्री.सुरेंद्र ने लिखा है - "नये शिल्प का प्रयोग चेष्टित होकर उतना नहीं है जितना वस्तु की आंतरिक विवशता का परिणाम होकर - नए शिल्प में कथाकार की वस्तु दृष्टि का लगातार योग रहता, तो वस्तु चयन में लेखक का शिल्पकोण बराबर काम करता रहता है।"[66]

उषा प्रियंवदा की शैली में सर्वत्र सांकेतिकताप्रधान सूक्ष्म शैली, व्यंजनाबोध से भरपूर शाब्दिक प्रयोग, बिम्बप्रधान विवेचन ,प्रतीकों द्वारा कथ्य की स्वाभाविकता में संवर्धन के साथ ही आत्मकथात्मक, स्वालाप, प्रलाप, पूर्वदीप्ति आदि तमाम शैलीगत विवि¬ÖŸÖÖ< x³Ö®Ö-x³Ö®Ö ºþ¯ÖÖ में एकसाथ देखी जा सकती हैं। इनके माध्यम से ही लेखिका ने कथ्य की बारीकी को, परिवेश की सघनता को और तमाम आधुनिक जीवन की विसंगतियों से पैदा हुई 'आयरनी' को सीधे-सीधे संप्रेषित किया है, जो अपनी बात की अर्थवत्ता को हम तक पहुँचा पाने में सक्षम है।

उषा प्रियंवदा की कहानियों को पढ़कर यह बात और भी साफ़ हो जाती है कि इनके शिल्प का वैशिष्ट्य कहानी की आंतरिक माँग के अनुरूप कितना अपरिहार्य भी है। क्योंकि जीवन की तमाम समस्याओं को सांकेतिक ढंग से उभारकर मानसिक ऊहा-पोह भरी स्थितियों की अभिव्यक्ति में अंतर्मन की सूक्ष्म जाँच-¯Ö>ŸÖÖ»Ö «Ö¸ü जिस वैयक्तिकता प्रधान भावोद्दीपक शैली के दर्शन होते हैं, उसमें नि:संदेह अनुभूति प्रधान कथ्य का होना अवश्यम्भावी हो गया है।

ऐसी अनुभूति जो कहानी की यथार्थ पीठिका की ओर संकेत करती है। नरेश मेहता के अनुसार 3Öß- "कहानी अभिव्यक्ति होती है, घटना मात्र नहीं।"[67]

निश्चय ही यहीं से सांकेतिकता का वह ज़िक्र आता है जबकि रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति में घटनात्मक वर्णन को छोड़कर सिर्फ़ कहानी के उस मार्मिक बिन्दु की ओर हमें ले चलता है, जिसके द्वारा व्यक्ति व उसके अंतर्मन को पूरी परिवेशगत ईमानदारी के साथ उजागर किया जाता है। उषा जी की कहानियों में इसी सांकेतिकता की ओर यत्र-तत्र संकेत है। कहानी 'कां™ß»Öß "ÖÆ' ´Ö "ज़ीवन की राह पर चलते हुए यदि कोई राही किसी पेड़ की छाँव में खड़ा हो जाए तो मैं उसे बुरा नहीं सम-ाती, क्योंकि मैंने जाना है कि सुख क्या है...।"[68] के साथ ही कहानी की समाप्ति किसी बिन्दु की ओर संकेतित करती है, जिसकी अभिव्यंजना बड़े ही सार्थक ढंग से की गई है, जो की यहाँ पर संवेदना के मर्म को सीधे स्पर्श करती है। इस अंतिम वाक्य में Æß 'सांकेतिकता' का प्रत्यक्ष रूप कहानी के पूरे कथ्य को निचोड़कर सामने ला देता है। इसी तरह के अनेक प्रयोग लेखिका ने कहानियों में यत्र-तत्र किए हैं। दरअसल आज की कहानी संकेत करती नहीं बल्कि स्वयं एक संकेत है[69] जो कि कहानी की प्रभावान्विति में, एवं समूची वस्तुस्थिति को सामने लाने में एक अनिवार्य पहलू के रूप में मौजूद रहती है। यही कारण है कि आज के जीवन की जटिलता एवं परिस्थिति से उपजी वैयक्तिकता के दौर में मानसिक बिन्दुओं की 'संकेत' द्वारा ही सार्थक अभिव्यक्ति संभव है - जिससे कहानी की अंतर्वस्तु सामने आ सके।

इसी तरह सूक्ष्म और सांकेतिक बिम्ब-विधान का भी सफल और सार्थक प्रयोग कहानियों में यत्र-तत्र दृष्टव्य है, जिससे कथ्य की अर्थवत्ता में गहराई का आना बेहद स्वाभाविक बन पड़ा है | 'कोई नहीं' कहानी में नमिता के जीवन की एकरसता, उदासी, ऊब, शून्यता आदि की मार्मिक व्यंजना सूक्ष्म से सूक्ष्म बिम्ब प्रयोंगों द्वारा स्वाभाविक ढंग से की गई है। जैसे कि - "ऐसे ही दिन बीतते रहे और हमारी आँखों की चमक फीकी पड़ती गई, हमारे काले बालों में कहीं-कहीं सफ़ेद ŸÖÖ¸ दिखने लगे और हमारे युवा हँसते हुए चेहरों पर न जाने कैसी रूखी, रीती, कठोर मुद्रा आकर जमकर बैठ गई।"[70]

इसी तरह के अनेक बिम्बों का जगह-जगह प्रयोग है। हाँ, यह तो स्पष्ट ही है कि इनकी कहानियों के शिल्प विधान में प्रवासी प्रभाव के कारण ही कथ्य में अलगाववाद, एकरसता जैसे विविध चित्रण हैं। यही कारण है कि इनके शिल्प के पीछे पाश्चात्य प्रभाव नज़र आता है। जैसा कि डॉ.मधु सन्धु ने लिखा है - "चेतन प्रवाह एवं पूर्व दीप्ति पाश्चात्य शिल्प हैं। ये शिल्प

स्मृति द्वारा अतीत के अंधकार को दीप्त करते हैं। हैनरी जेम्स, मेरिडिथ, मिसडोरिथी रिचर्डसन, जेम्स ज्वायस तथा वर्जिनियावुल्फ ने प्रथमत: इस शिल्प का प्रयोग किया है। पूर्वदीप्ति में अतीत का क्रमिक विकास नहीं रहता, जबकि चेतन प्रवाह में चेतना की सूत्रबद्धता अथवा प्रवाह बना रहता है।"[71]

उषा प्रियंवदा की कहानियों की पृष्ठभूमि ज़्यादातर विदेशी ही है, यही कारण है कि इनकी कहानियों में भी पूर्वदीप्ति जैसे प्रयोग कई जगहों पर देखे जा सकते हैं। 'ÃÖ²Ö¬Ö' कहानी में इसका प्रयोग श्यामला की मन:स्थिति के सटीक उद्घाटन हेतु किया गया है। कहानी का प्रारंभ और अन्त एक जैसे बिन्दुओं से प्रारंभ होता है - 'सुनीता कपूर' द्वारा की गई आत्महत्या। जिसका संपूर्ण चित्रण कहानी में अनवरत जारी रहता है। श्यामला की चेतनÖ «Ö¸Ö ÆÜß ÃÖ´ÖÃÖÝÖ स्थितियाँ क्रमश: खुलती जाती हैं और हर पहलू को मानसिक स्तरों द्वारा जोड़कर मूर्तवत सामने ला देती हैं। ऐसी ही स्थितियों का उद्घाटन कहानी 'स्वीकृति' में भी देखा जा सकता है।

कहानियों में आत्म-कथात्मक शैली का प्रयोग अधिकांश जगहों पर हुआ है। 'एक कोई ¤ÃÖ¸Ö', 'कोई नहीं' आदि कहानियाँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कुछेक कहानियों में पूर्वदीप्ति शैली के प्रयोग के कारण स्वालाप और प्रलाप जैसे प्रयोगों द्वारा पात्रों की मन:स्थिति व द्वन्द्वों को सफलतापूर्वक उभारा गया है। वस्तुत: अन्तर्मन की परतों के उद्घाटन में जहाँ भी ऐसा करना आवश्यक हुआ है वहाँ इसका सफल चित्रण भी दृष्टव्य है। कहानी 'x¯Ö'Ö»ÖÖÝÖß Æ‡ ²Ö±ü' ´Ö -

"कौन रोया?"

"कोई नहीं।"

"कोई रोया था।"

"कोई नहीं रोया।"

"²ÖßÖþ। ²ÖßÖþ। ²ÖßÖþ।"

*** "xÃÖ¸ ´Ö £ÖÖ>Ö-थोड़ा दर्द है। हाथों से माथा थामकर अक्षय याद करने की चेष्टा करता है। सुधीरा कमरे में आयी थी, कुछ कह रही थी, शायद बीरू के बारे में। बीरू अब कहाँ? बीरू तो तीन साल हुए मर चुका।"[72]

जैसे प्रयोगों द्वारा पात्र के स्वालाप-प्रलापपरक मन:स्थितियों की व्यंजना बड़ी ही मार्मिकता से संवेदनाओं को प्रत्यक्षीकृत रूप में सामने लाकर की गई है। उषा प्रियंवदा के पात्र बहुधा इन्हीं सब मानसिक ऊहा-पोह भरी स्थितियों से गुज़रते हैं। यही वजह है कि कहानियों में

पात्रगत आत्मचेतना प्रधान शैली का प्रयोग है जिसमें अन्तस का उद्घाटन ‘Ã¾ÖÖ»ÖÖ¯Ö’ द्वारा किया गया है। ऐसे ही विविध प्रयोगों से भरपूर इनकी कहानियों की अभिव्यक्ति में अनुभूति प्रधान शैली के कारण एक जीवंतता का बोध अक्सर बना रहता है। चित्रात्मकता द्वारा हर स्थिति का Æ-²Ö-हू चित्र आँखों के सामने अंकित हो जाता है। कहानी ‘सुरंग’ ´Ö -

“बेबी आँगन में ऐसे बैठी रहती है जैसे कोई वृक्ष उग आया हो। मौन, निस्पंद, आत्मरत | ‡¬Ö¸-उधर का शोर लहरों की तरह घटता-बढ़ता रहता है और शायद बहुत बार ऊपर से उसे बिना छुए निकल जाता है।”[73]

इसी तरह कहानी ‘”¼ß का दिन’ में पात्र की मनोगत स्थितियों में वही रिक्तता-²ÖÖ¬Ö, एकाकीपन की परतें, जीवन की सारहीनता तथा खोखलापन जैसे भावबोधों का चित्रण भी बखूबी पूरे पैनेपन के साथ किया है, जिसमें एक तरह की काव्यात्मकता का एहसास होता है - “.... इसलिए कि ज़िंदगी के दिन एक-एक करके गुज़रते जाएँ और हर गुज़रा हुआ दिन उसके जीवन का खालीपन और भी गहरा करता जाए और एक दिन वह सोचे कि इस जीवन में उसने क्या पाया? तो पता चले कि वह एक लम्बे मरुस्थल की तरह था।”[74]

इस तरह के अनेकानेक प्रसंग कार्यशील नारी की मानसिकता को लेकर यत्र-तत्र दृष्टव्य हैं जिसमें एक व्यक्त-अव्यक्त-सी पीड़ा उसे निरंतर बाँधे रखती है, नितांत वैयक्तिकता भरे एहसास के क्षणों की व्यंजना जिनके लिए जगह-जगह बिम्ब विधान, सांकेतिकता, भाषा की काव्यात्मकता, आलंकारिकता और पात्रगत अन्दर्द्वन्द्वों, मानसिक व्यथा का चित्रण अपनी शैली की कुशलता द्वारा किया है, जो बेहद हृद्य एवं स्वाभाविकता से भरपूर है। सर्वत्र सुन्दर एवं स्वाभाविक प्रतीक-विधान द्वारा प्राकृतिक प्रेम की व्यंजना भी यत्र-तत्र दृष्टव्य है, जो बराबर व्यक्ति और उससे जुड़े परिवेश की -ालक सूक्ष्मता से संकेतित करती चलती है।

कुल मिलाकर मनोवै-ानिक धरातल पर पात्रों के विश्लेषण में इनकी अपनी शैली के विविध प्रयोग पूरी अर्थवत्ता को साकार कर देते हैं, जिनमें वैचारिकता और बौद्धिकता से ओत-प्रोत वर्णन कहानी के हर बिन्दु पर सहजता और स्वाभविकता के साथ चित्रित हैं।

5.1.5 पात्रों का शील-निरूपण :

पात्रों के शील-निरूपण पर दृष्टिपात करें तो हमें यह -ाात होता है कि उषा प्रियंवदा ने पात्रों के चरित्र-चित्रण की लगभग सभी प्रमुख पद्धतियों का अपनी कहानियों में आश्रय ग्रहण किया है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

5.1.5.1 लेखिका द्वारा पात्र-ÿ“ात्रण :

मानव-मनोवि-ाान का गहन अध्ययन करने वाली इस शैली के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

क॥) “सत्यभामा जी ने पार्टी दी थी, कोई खास बात न थी, बस ऐसे ही, जिसमें ऊबे हुए पुरुषों ने बिज़नैस, ब्रिज और क्लब की बात की थी, सजी-सँवरी स्त्रियों ने एक दूसरे की साड़ियों के दाम भाँपने की चेष्टा की थी, छिटपुट बातें और अनुपस्थित लोगों की निंदा की थी।”[75]

ख॥) ‘मोहबन्ध’ कहानी में लेखिका ने स्वयं नीलू के शारीरिक सौंदर्य के बारे में यह लिखा Æ- “ओठों की लालिमा, मोतियों की आब-दक्षिणी सिल्क की साड़ी स -ालकती शरीर की कमनीय रेखाएँ।”[76]

ग॥) “शायद आज नई रात को अक्षय आत्महत्या कर ले और कल जगह-जगह छोटे-छोटे समूहों में खड़े होकर उसके साथी, विद्यार्थी उसकी मृत्यु पर खेद प्रकट करें।”[77] यहाँ नायक अक्षय की मूमूर्षा या मृत्यु-कामना संकेतित हुई है। यह एक दिवास्वप्निल कामना या विचÖ¸ Æß के रूप में व्यक्त किया जा सका है।

5.1.5.2 ¯ÖÖ¡Ö «Ö¸Ö †ÖŸ´Ö-चित्रण :

क) राजन अपनी पत्नी नीलू के विषय में, विशेषत: उसकी उच्छृंखलता के विषय में उसकी सखी अचला से कहता है - “¤ÖÂÖ ´Ö¸Ö Æß Æ | मैंने शुरू से ही उसे बिगाड़ दिया। जो उसने चाहा, दिया, कभी राह में नहीं आया। पर अब सोचता हूँ कि मैंने ठीक नहीं किया।”[78] यहाँ राजन तटस्थ दृष्टि से अपने ही चरित्र की एक प्रकार से शल्यचिकित्सा कर रहा है।

ख) भास्कर अपने ही बारे में सोचता है - “अगर इतना दब्बू न होता, तो ठीक रहता। स्मार्टनैस से ही काम बनता है। मैं अपनी सीमाएँ जान रहा था। भारत की कंज़रवेटिव

युनिवर्सिटी का छात्र, कभी 'Ã´ÖÖ™ ÃÖ™' का अंग नहीं रहा, अंग्रेज़ी नहीं बोली, कॉफ़ी-ÆÖ‰ÃÖ ´Ö नहीं बैठा, रोमांटिक साहित्य नहीं पढ़ा। भाषा-×¾Ö-ज्ञान का छात्र हूँ - रूखा, नीरस।"[79]

ग) अक्षय छवि से कहता है - "क³Öß-कभी बÆÖ ‘Ö²Ö¸Ö ˆšÖÖ Æ । ¯Ö¸ ÖÖ´Ö ¯ÖÖÃÖ ÆÖÖß हो, तो सारे संशय दूर हो जाते हैं।"[80]

5.1.5.3 एक पात्र के द्वारा अन्य पात्र का चरित्र-चित्रण :

क) 'मेनका: रंभा: उर्वशी' कहानी में विनोद की चाची रश्मि का वर्णन करते हुए कहती Æ - "<ÃÖß ²Ö›ß-बड़ी आँखें, ऐसे लाल-»ÖÖ»Ö ÆÖš! ÆÃÖÖß Æ, ÖÖ ±»Ö –Ö›Ö Æ । †Ö¾ÖÖ•Ö <ÃÖß मीठी कि सुनते रहो। रंग ऐसा कि सोने के गहने घुलमिल जाएँ।"[81]

ख) 'मछलियाँ' कहानी में विजी नटराजन से मुकी के संबंध में कहती है - "उसकी आँखें लम्बी-लम्बी हैं, वह सोफेस्टिकेटेड है, कार चलाती है, अंग्रेज़ी में कविता लिखती है, पीली मछलियाँ पालती है। वह सभी को अच्छी लगती है, तुम्हें, मनीष को, सबको ..."[82]

ग) '™™ Æ<' कहानी में मिसेज़ नायक भास्कर को प्रो.कृष्णमूर्ति के विषय में कहती है - "वह दक्षिण प्रदेश के हैं, प्रख्यात वैज्ञानिक, जब भी भारत जाना चाहते हैं, उन्हें यहाँ अधिक सुविधाओं की व्यवस्था कर रोक लिया जाता है।"[83]

5.1.5.4 रेखाचित्र द्वारा पात्र-चित्रण :

क) ""Ö™Ö-सा कोमल, गोरा-गोरा बच्चा, मुँह पर भवों की पतली-सी लकीरें, लम्बे-लम्बे रेशमी पलक। जब क्रोधित होकर रोता था, तो गोल-गोल आँसू गालों पर आ पिघलते थे और सारा काजल अपने साथ बहा ले जाते थे।"[84]

ख) 'मोहबन्ध' कहानी में राजन का एक रेखाचित्र देखें - "राजन का गोरा चेहरा, ´ÖÖ£Ö से उपर सँवारे गए बाल, उसकी घनी भौंहें, सामने सड़क को देखती सीधी आँखे... उसकी ठोढ़ी में हल्के-से गढ़े का आभास, उसकी कमीज़ का बढ़िया कालर...लम्बे, गोल नाखून...।"[85]

ग़्) "फिर वारिया (कल्पना में) आकर खड़ी हो गई, नाटे कद की दुबली, पतली, थोड़ी-ÃÖß 'आर्टिफिशियल' लगने वाली लड़की। लम्बे खुले बाल, आधे आगे, आधे पीठ पर, बड़ी-²Ö›ß आँखें ..."[86]

5.1.5.5 ÃÖ¾ÖÖ¤Ö «Ö¸Ö ¯ÖÖ¡Ö-चित्रण :

क़्) '´ÖŒÖÖ †Ö¸ ¿Ö×¿Ö' कहानी में मुक्ता की बुआ विकास और उसके घरवालों के सामने मुक्ता के चरित्र को प्रस्तुत कथन के माध्यम से गलत साबित करने का प्रयास करती है - "¾ÖÆÖ हर एक से मिलती जुलती है, साथ सिनेमा जाती है, पिकनिक होते हैं, साथी पार्टियां देते हैं। ´Ö-ने तो कतई पसंद नहीं। भाई साहब को कोई फिक्र ही नहीं है। बड़ी हुई, शादी कर दें। पर ´ÖŒÖÖ Æ¸ "Öß•Ö ´Ö ¤ÖÂÖ निकालेगी। कोई उसे पसंद ही नहीं आता।"[87]

ख़्) 'अकेली राह' कहानी में जया के इस कथन द्वारा उसका चरित्र उजागर होता है। उसकी मानसिक अवस्था से हम रू-²Ö-ºþ ÆÖÖ Æ - "... ´Ö-ने लगता है कि सांस तो ¸Ö•Ö »ÖÖß Æ, चलती फिरती हूँ, सभी काम करती हूँ, पर जीती कुछ क्षण ही हूँ, जैसे आज इस क्षण में ज़िंदा हूँ, क्योंकि मेरी हँसी, मेरे अस्तित्व के कुछ मायने हैं। शाम खतम होगी तो ज़िंदगी चुक जाएगÖß। मैं अपने घर लौट जाऊँगी और आप अपने घर, और फिर तय नहीं कि फिर कब मिलेंगे। मैं साँस लेती रहूँगी, मगर कभी कोई साँस सीने में अटक जाएगी। मेरी आँखें अपनेआप भर आएँगी।"[88]

5.1.5.6 सूक्ष्´Ö ³ÖÖ¾Ö-भंगिमाओं द्वारा पात्र-चित्रण :

क़्) "अमृता की दोनों हथेलियाँ यति के बालों पर टिकी थीं और वह सम-ÖÖÖ Æ‹ ˆÃÖÃÖ कुछ कहती जा रही थी। उसकी साँस गले में फँस रही थी और शरीर में बड़ी विचि¡Ö-ÃÖß बेकली समायी जा रही थी।"[89]

ख़्) "कागज़ की उस पुर्जी को मसल कर एक कोने में फेंकते हुए वह (किरन) फोन की ओर बढ़ गयी, सफ़ेद रंग के फोन पर जम आयी धूल की परत पर ध्यान गया, पर नम्ब¸ ×´Ö»ÖÖÖ हुए वह उत्कंठित हो आयी थी।"[90] किरन की यह एक ज़रा-सी भंगिमा उसके पति के प्रति पूर्ण

उपेक्षा-भाव के साथ-साथ अपने बच्चों (यहाँ पर बच्चियों) के प्रति भी मोह-हीनता के भाव को ÆÛ ¯Ö¤Ù¿Öत करती है। इसके विपरीत उसे अपने प्रेमी मैक्स से कितना प्रेम है, इसका भी संकेत उसके इसी एक हाव-भाव से संकेतित हो जाता है।

गö) "½ÖÆ ×±ú¸ ¯Ö•ÖÖ ¯Ö¸ •ÖÖ¸ ¤ ¿ÖÖß¿Ö ´Ö -ाँकने लगी थी, एक अदम्य आशा लिए कि शायद इस बार वह -ाँकने वाली युवती पहले से भिन्न हो और वह कुछ भिन्न थी भी।"[91]

5.1.5.7 ¯Ö¡Ö-¿Ö»Öß «Ö¸Ö ¯ÖÖ¡Ö-चित्रण :

कö) 'नई कोंपल' कहानी में बिन्नी अपनी सखी माला को लिखे हुए पत्र में अपनी सास तथा पति के स्वभाव का वर्णन करती है- "...´ÖÖ»ÖÖ ´Ö-े तो यहाँ सभी चाहते हैं। सासजी का Ã¾Ö³ÖÖ¾Ö •ÖÖ¸þ ŸÖÖ•Ö Æ, ¯Ö¸ ´Ö-ासे वह कभी कुछ नहीं कहतीं। सारे घर की ज़िम्मेदारी मु-Ö ÆÛ ¤ रखी है। वह भी मेरा खयाल रखते हैं। हर वक्त उन्हें यही ध्यान रहता है कि मु-े किसी तरह की तकलीफ न हो। मैं तो सोचती हूँ कि न जाने किन पुण्यों के फल से मु-Ö ‹ÃÖ ¯Ö×ŸÖ ×´Ö»Ö ..."[92]

खö) 'नष्ट नीड़' कहानी में समीर रीना को पत्र लिखकर अपने दोषों को स्वीकार करता है और अपनी स्थिति से उसे अवगत कराता है - "रीना एक दिन तुम ने मु-े पत्थर होने का उलाहना दिया था। इसी से नहीं आया, क्योंकि पत्थर नहीं हूँ। मु-े माफ कर देना, रीना, मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिया। पर मैं स्वयं भी खुश कहाँ रह पाया? अगर लिखने बैठूँ तो रातें बीत जाएँगी, पर मेरी बातों का अंत न होगा। तुम्हारी आँखें रीती हो जाएँगी, मगर वे सारे आँसू भी मेरा दर्द न मिटा सकेंगे। दोषी तो मैं हूँ ही रीना।"[93]

5.1.6 अन्य विशेषताएँ :

उषा प्रियंवदा की कहानियों के शिल्प विधान के बारे में कुछेक चर्चाओं के बाद यह बात साफ़ तौर पर ज़ाहिर हो जाती है कि उनका लेखन विशुद्ध रूप से परिवेश से सृजित मानसिकता से प्रेरित रहा है क्योंकि एक लम्बे समय तक विशेष प्रयास के दौरान वस्तु-स्थितियों में, रोज़म¸Ö के जीवन में जिस अजनबीपन, अलगाववाद पारस्परिक संबंधों में क्षणिकता एवं अस्थायित्वकारी

प्रवृत्तियों को देखा - यह सब पूँजीवादी देशों में बढ़ रही दिनों-दिन की यांत्रिक जीवन की जटिलता का ही परिणाम है। यही कारण है कि कहानियों के कथ्य में सर्वत्र वही भाव, प्रतीक, संकेत आदि के प्रयोग दृष्टव्य हैं जो व्यक्ति की गूढ़ मानसिक द्वन्द्वों की स्थितियों को उजागर कर दे। बस मुख्य वजह यही थी जिससे इनका शिल्प-विधान भी काफ़ी प्रभावित रहा क्योंकि कथ्य के अनुरूप शिल्प का ढलना बेहद स्वाभाविक सी प्रक्रिया है। इसे लेखिका के सृजन की निजी शैली का परिणाम भी कहा जा सकता है।

बाह्य जीवन की जटिलता, यांत्रिकता, परिवेशजन्य स्थितियाँ अक्सर व्यक्ति के अन्तर्मन को प्रभावित और उद्वेलित करती रहती हैं। यह तो एक स्वयं सिद्ध बात हुई किन्तु सवाल यह उठता है कि क्या इसके लिए ज़रूरी है कि उनकी अभिव्यक्ति हेतु इन्हें शिल्पगत विशिष्टता का जामा पहनाया जाय? क्या भाषा व शिल्पगत सरलता आज के जीवन की माँग नहीं हैं? परन्तु यहाँ एक बात स्मरणीय है कि शिल्पगत विशिष्टता, कुशलता, मार्मिकता और स्वाभाविक प्रतिपादन ही कथ्य में निखार ला सकता है। दूसरी, इसमें भी महत्वपूर्ण बात जो हमें लगती है कि बौद्धिकता के आवरणों से मुक्त इनका शिल्प-विधान कभी-कभी बेहद कृत्रिम-सा नहीं लगता? जब वे वाक्यों में अभिधान वृत्ति को छोड़कर लक्षणा पर लक्षणा और व्यंजना पर व्यंजना शक्ति द्वारा सर्वत्र आलंकारिक भाषा का प्रयोग करती हैं, क्या ऐसी स्थितियाँ बोन्Ö»Ö नहीं लगतीं?

लेकिन ऐसे प्रश्न बहुत ज़्यादा मायने नहीं रखते क्योंकि इनकी कहानियाँ मुख्यतः नारी पात्रों के ही इर्द-गिर्द सिमटकर रह जाती हैं जिनमें वैयक्तिकता की प्रधानता ही अक्सर देखी जाती है। ऐसे में, पात्र के व्यष्टि मन का उद्‌घाटन कितनी सफलता पूर्वक हुआ है? बस यही देखना और व्यक्त करना लेखिका का मन्तव्य रहा है जो कि एक सफल प्रयास है। स्पष्ट है कि इनकी कहानियाँ एक आम, मजदूर, निम्नवर्गीय पात्र के जनजीवन से जुड़कर अपनी अÖ¾ÖÖ•Ö ŸÖ•Ö नहीं करती। यही कारण है कि पात्र एक सीमा तक ही सिमटकर अपनी अभिव्यक्ति दे पाते हैं और ये पात्र भी एक विशेष तबके तक सीमित हैं। एक विस्तीर्ण व समष्टिगत भू-भाग की आवाज़ को बुलंदियों तक पहुँचाना इनका लक्ष्य नहीं रहा है। यही कारण है कि लेखिका के ×¿Ö»¯Ö-विधान में उतनी सहजता और सरलता नहीं आ पायी है बल्कि इसकी जगह अक्सर चमत्कारिक नूतन शिल्प के ही दर्शन हुए हैं। जैसे कहीं-कहीं कहानी का प्रारंभ और अन्त एक ही बिन्दु से शुरू होकर एक ही मानसिक चेतना के घेरे तक चक्कर काटता हुआ वहीं जाकर

समाप्त हो जाता है, तो कहीं एकदम सांकेतिक अर्थ-प्रधान होकर- “™ ¤ †¤र वन” •ÖÃÖß शब्दावली द्वारा पूरे अर्थ को ध्वनित कर देते हैं। और कहानी का इतना लम्बा-चौड़ा घेरा यहीं सिमटकर खत्म हो जाता है। लगता है कि किसी एक विशेष सीमित क्षेत्र तक ही इनका दायरा ‘x±¡™’ ¸ÆÜÖÖ Æ - बृहत् समुदाय की आवाज़ से परे, जन-जीवन-†Ö´Ö-नागरिक से बेखबर रहकर।

इस संदर्भ में यह विचारणीय है कि लेखिका ने मध्यवर्गीय व्यक्ति की स्थितियों पर अपनी सूक्ष्म नज़र डाली है। जिसकी ¤Ö ÃÜÖ¸ Æ - एक विशुद्ध भारतीयता से जुड़े, भारत में ही ¸“Ö-बसे व्यक्ति का अंकन तो दूसरा विदेशी भूमि पर प्रवासी भारतीय। इन दोनों ही तरह के पात्रों की स्थितियों का परीक्षण, विश्लेषण और बाह्य-आंतरिक स्थितियों का नक्शा खींच देना ही लेखिका का मन्तव्य रहा है (क्योंकि इनका अपना स्वयं का जीवन भी इन्हीं सब परिधियों में आबद्ध रहा है)। यही कारण है कि लेखिका ने ऐसी प्रत्येक स्थिति का ढाँचा सूक्ष´ÖÜÖ´Ö ¥ÛÂ™ ÃÖ तैयार किया जो कि उनकी आस-पास की ज़िंदगी में ही बिखरे तन्तु थे। हाँ, यह अवश्य है कि इनकी मार्मिक अभिव्यक्ति में लेखिका ने पूरी शिल्पगत चारुता द्वारा हर स्थिति का हू-²Ö-Æ x“Ö¡Ö आँखों के सामने कैनवास रूप में प्रस्तुत कर दिया। हमारे आज के नगरीय जीवन के बीच में रह रहे व्यक्तियों की मानसिक स्थितियाँ निश्चित रूप से सफल एवं सार्थक बन पड़ी हैं। अर्थवत्ता तथा अर्थगर्भत्व भाषा एवं शैली के हर बिन्दु पर देखा जा सकता है। स्वयं लेखिका ने कहा है - “मेरी कहानियों के पीछे एक बीज ज़रूर होता है, एक विचार, एक इमेज, एक अनुभव या अनुभूति का ...।”[94] यहाँ लेखिका ने आत्मानुभूति प्रधान शिल्प को स्वीकारा है।

पात्रों की अस्मिता खोज, नारी स्वातंत्र्य की गूँज और सर्वत्र सारगर्भित शैली की विद्यमानता ने लेखिका के शिल्पगत वैशिष्टय में चार चाँद लगा दिए हैं। जिसमें संक्षिप्तता, विषयानुकूलता और अर्थपूर्ण नवीन प्रयोग प्रमुखत: वे लक्षण हैं जिनके द्वारा प्रकृति के सामान्य अंकन में भी मानवीय जीवन की हलचल को लेखिका ने अंकित करने का प्रयास किया है। वर्तमान जीवन की समस्त विद्रूपताओं, विसंगतियों को अपनी संश्लिष्ट अभिव्यक्ति द्वारा, साथ ही भाषा के वैविध्य द्वारा यथार्थ की ओर दृष्टि खींचकर युगीन संक्रमणों को वाणी दी है। यह सब कुछ नवीनतम शिल्प सौंदर्य, बिम्ब, संकेत, प्रतीक आदि द्वारा ही संभव था। यही कारण है कि लेखिका ने अपने कथ्य के सफल संप्रेषण हेतु कहानी की आंतरिक बुनावट में यथार्थ भरी अनुभूतियों का सृजन किया तथा आज की सच्चाइयों को सामने रखा।

ज़ाहिर है कि युगीन सन्दर्भों का सही ढंग से सम्प्रेषण एक सही माध्यम द्वारा ही संभव है। यहीं से कहानी-कला के विकास की सम्भावनाओं के नवीन द्वार भी खुलते हैं। उषा प्रियंवदा के शिल्प-विधान की विशेषता और अर्थवत्ता कथावस्तु के भावात्मक संयम और पात्रों की मन:स्थितियों को पूरी भावगत ईमानदारी से चित्रण द्वारा अनेकों यथार्थ जीवन के चित्रों को, वर्जनाओं को स्वर देने में निहित है। ऐसे मूल स्वरों का प्रस्तुतीकरण बिना अभिव्यक्ति कौशल के भला कैसे संभव था? क्योंकि कथ्य को यदि साध्य रूप में भी माना जाए तो बिना साधन के कथ्य की महत्ता ही कैसे संभव है? दोनों को अलगाकर कहानी का सम्प्रेषण ही संभव नहीं है। इस विषय में डॉ.लक्ष्मणदत्त गौतम ने लिखा है - "आज की कहानी के दो छोर हैं - कथ्य और शिल्प। वे भिन्न नहीं हैं। इनकी पारस्परिक सापेक्षता को तीन स्तरों पर देखा जा सकता है | प्रथम स्तर संवेदना या वस्तु का है, जहाँ कथ्य का विन्यास होता है, उसकी रूपाकृति बनती है। दूसरा स्तर संदृष्टि का है, जो चरित्रीकरण से निर्मित होता है। तीसरा स्तर, प्रामाणिकता या ¯Öx¸¾Öè¿Ö "Ötना का है जो शैली की यथार्थपरकता से सम्बध्द है।"[95]

इससे भी साफ़ हो जाता है कि कहानी विषयक उपर्युक्त सभी बातों को उषा प्रियंवदा की कहानियों में पूरी प्रामाणिकता के साथ वस्तु और विन्यास दोनों को एक साथ ही सफलतापूर्वक देखा जा सकता है। लेखिका की लेखन शैली में नि:संदेह स्वाभाविकता का आग्रह सर्वत्र रहा है, जो हमारी अपनी ही ज़िंदगी के जुड़े बिन्दुओं को सामने लाने में समर्थ रहß Æ | यही तो उनकी कलात्मकता भरी सार्थक पहचान भी है।

5.2 उषा प्रियंवदा के उपन्यासों का शिल्प-विधान :

युग का यथार्थ यदि साहित्य की किसी विधा में मुखर हो उठता है तो वह है - कथा ÃÖÖ×हत्य। कथा साहित्य में भी कहानी की अपेक्षा उपन्यास में जीवन का विस्तार अधिक होता है। प्रसिध्द मार्क्सवादी आलोचक रैल्फ फॉक्स ने तो उपन्यास को व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य कहा है।[96] ›Ö.Æ•ÖÖ¸ी प्रसाद द्विवेदी का कहना है - "उपन्यास किसी देश की साहित्यिक विचारों की प्रगति को सम-ने के लिए उत्तम साधन माने गये हैं, क्योंकि जीवन की यथार्थताएँ ही उपन्यास को आगे बढ़ाती हैं। मनुष्य के विचार आचारों और बढ़ती हुई यथार्थताओं के बीच निरंतर उत्पन्न होती रहनेवाली खाई को पाटना ही उपन्यास का कर्तव्य है। इसलिए उपन्यास के

अध्ययन का मतलब होना चाहिए किसी जाति या समाज के बढ़ते हुए विचारों और निरंतर उत्पन्न होते रहनेवाली जीवन की यथार्थ परिस्थितियों से संपर्क स्थापित करते रहने के प्रयत्नों का अध्ययन। जन्म से ही उपन्यास यथार्थ जीवन की ओर उन्मुख रहा है।"[97] युग का यह यथार्थ समयानुसार बदलता रहता है। प्रत्येक युग का यथार्थ बोध अपनी दृष्टि से सोचता सम–ÖÝÖÖ ÆÌß नहीं किंतु इसके साथ-साथ वह अतीत की सांस्कृतिक विरासत का पुनर्मूल्यांकन भी करता है। ‡ÃÖ ×¾Ö×¿ÖÂ™ यथार्थ बोध के आधार पर ही युग रचनात्मक प्रवृत्तियाँ प्रकाश में आती हैं। दूसरे शब्दों में युग का रचनात्मक स्वभाव (Creative Temper) युग के यथार्थ बोध के आधार पर ही निश्चित होता है। नया यथार्थ-²गोध पुराने रूढ़ रूपविधान को लेकर सामने नहीं आ सकता। वह अपने लिए अभिव्यक्ति का नया माध्यम खोजता है। इसी से अभिव्यंजना शिल्प में नया प्रयोग होता है।

दरअसल जब रचनाकार अपने अनुभव-ÃÖ¾ÖêदनSा को रूपायित करना चाहता है तो उसको शिल्प का माध्यम अपनाना पड़ता है क्योंकि उसके अंतर्जगत की बाह्य अभिव्यक्ति शिल्प के माध्यम से ही होती है इसलिए शिल्प एक ओर जहाँ रचना-प्रक्रिया से संबंधित Æî | ¾ÖÆüÖ रचना के बाह्य रूप-विधान से भी रचनाकार के रचनात्मक अनुभवों के अनुकूल ही रचना का शिल्प भी परिवर्तित होता रहता है क्योंकि शिल्प अंतत: रचनात्मक अनुभवों के आंतरिक दबाव की परिणति ही है। संप्रेषणीयता की दृष्टि से शिल्प का सुगठित एवं कथ्य के अनुकूल होना आवश्यक है तभी वह प्रभावोत्पादक हो सकता है। शिल्प के माध्यम से ही रचनाकार का भावजगत मूर्तरूप धारण करता है लेकिन इस प्रक्रिया में अभिव्यक्ति को सही ढंग से संप्रेषित करने के लिए रचनाकार को आत्मसंघर्ष भी करना पड़ता है तभी वह रचनात्मक अनुभवों के अनुकूल सार्थक शिल्प की सृष्टि में सफल हो सकता है। अत: आवश्यक है कि शिल्प कथ्य से असंपृक्त या आरोपित प्रतीत न हो।

उषा प्रियंवदा के उपन्यास कला प्रधान न होकर कथ्य प्रधान हैं। अत: उनके उपन्यासों का शिल्प कला के बो-ा से आक्रान्त न होकर सहज एवं स्वाभाविक है। उन्होंने मानव जीवन के चित्र को प्रस्तुत करते समय इस बात का ध्यान रखा है कि जहाँ तक संभव हो वे पात्रों का पारदर्शक और हूबहू रूप सामने रख सकें। दूसरे शब्दों में पात्रों के चेतन, उपचेतन एवं अवचेतन मन के सभी स्तरों का दर्शन कराने का प्रयत्न उन्होंने किया है। मानव व्यक्तित्व के संघटनात्मक और निर्माणात्मक तत्वों को विभिन्न कोणों से तथा विभिन्न आयामों से विभिन्न

ºþ¯ÖÖ ´Ö ×चत्रित करने का उनका प्रयत्न रहा है। यथार्थ जीवन को प्रस्तुत करते हुए तटस्थ रहने का प्रयास भी उन्होंने किया है और उनकी तटस्थता ही उनकी कला का प्राण बन गई है। इसीलिए कथा कहने की विविध पद्धतियों का प्रयोग हुआ है। यह नया शिल्प रूपकात्मक और अभिव्यंजनात्मक है। बहिर्जीवन के साथ-साथ आभ्यंतरिक जीवन को अभिव्यक्त करने के लिए सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता, चेतना-¯Ö¾ÖÖÆ <¾ÖÓ अनेक विविध रूपों का प्रयोग उनके उपन्यासों में हुआ है। सरलता, सादगी, सहजता और तारतम्यता उनकी शैलीगत ×¾Ö¿ÖÂÖŸÖÖ< Æ |

5.2.1 भाषागत नवीनता :

शिल्प के विभिन्न तत्वों में भाषा एक प्रमुख अंग है, क्योंकि अन्य सभी तत्वों की उपयोगिता अभिव्यक्ति को ही सशक्त एवं सक्षम बनाना है। भाषा अभिव्यक्ति के सभी माध्यमों में सर्वाधिक प्रचलित एवं महत्वपूर्ण है। मानव जीवन के विकास के साथ-ÃÖÖ£Ö ³ÖÖÂÖÖ का विकास भी होता रहा है। प्रत्येक युग की भाषा के अपने रचना-संस्कार एवम् उसकी भाषिक मान्यताएँ रही हैं। युग की बदलती परिस्थितियों एवं जीवनबोध के अनुकूल भाषा में भी परिवर्तन उपस्थित होता है और यह परिवर्तन युग विशेष के व्यक्तिमन की आंतरिक अभिव्यक्ति की माँग होता है। मानव जीवन की संवेदनाओं को प्रकट करते हुए उपन्यास की भाषा ने रचनात्मक स्तर पर अपना विकास किया है। अनुभव-संवेदना को सही रूप से संप्रेषणीय बनाने के लिए उपन्यास की भाषा के रचना-विधान ने उसी स्तर पर अपनी मूल्य चेतना को बदला भी है।

उषा प्रियंवदा की भाषा भी परम्परागत भाषा-रूप का निर्वाह न करते हुए नवीनता से युक्त है। जब विषय आधुनिक है, तो भाषा को आधुनिक होना ही था। सच्चे अर्थों में इनकी भाषा आधुनिक है। जो बात कहनी है, वह मन में बहुत साफ़ है, इसीलिए भाषा में गज़ब की सफाई है। भाषा इतनी सहज सक्षम है कि बात सीधे-सीधे संप्रेषित होती है। इनके उपन्यासों को पढ़ना भाषा की एक समतल, शान्त और काँच-सी पारदर्शी सतह पर चलना है। यह सतह अपनी स्वच्छता से आश्वस्ति देती है। लेकिन यह सब भाषा तक ही सीमित है; भाषा के भीतर जो कथा होती है, वह बेहद बेचैन कर देने वाली है। इस कथा को पढ़ते हुए हम एक ऐसे पाठ से

ग֕Ö¸ÖŸÖ Æ •ÖÖ Æ´Ö लगातार सम्पूर्ण का आभास कराता हुआ, एक अधूरी, अतृप्त ज़िंदगी की कसक साथ-ÃÖÖ£Ö ¤ŸÖÖ “Ö»ÖŸÖÖ Æ |

आधुनिक भाषा किस रूप में बनी है, का संधान बहुत कठिन है। न कटे-पिटे वाक्य हैं , न बड़े संयुक्त-मिश्र वाक्य हैं, न डॉट्स की भरमार ... न ही उर्दू एवं अंग्रेज़ी आदि के अधिक शब्दों का प्रयोग हुआ है - फिर भी सच्चे और स्वस्थ अर्थों में भाषा आधुनिक है। यह आधुनिक भाषा वाक्यों के विन्यास से और भाषा की सादगी से संभव हो पायी है। खोजें, तो विशुद्ध संस्कृत के शब्द भी बहुत हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन भूमि पर खड़े होकर ही उनकी भाषा आधुनिक हो गई है। इससे भाषा में आई गहराई भी उल्लेखनीय है। विन्यास के साथ भाषा के लहज़े व ढाँचे से भी ऐसा हुआ है। उषा जी ने रोज़मर्रा की भाषा में लिखने की कोशिश की है। वरन् ऐसा कहें कि ऐसा जीवन उठाया, जो रोज़मर्रा की भाषा के अलावा व्यक्त न हो सकता था। परंतु रोज़ की चर्चा के बीच संस्कार तो पारंपरिक हैं। बस, भाषाई संस्कार परिष्कृत होकर निकले और नये बन गये। भाषा का यह नयापन उनके उपन्यासों की बड़ी खूबी Æ |

संवेदना एवं वस्तु का ग्रहण बड़े गहरे स्तर में उतरकर हुआ है। अत: बातों की स्पष्टता एवं कोमलता भाषा के गुण बन गये हैं। इसी गुण के फलस्वरूप बहुत थोड़े में ढेर सारी बातें कÆी जा सकी हैं। 'थोरे ही मँह सब कहेई बु-ÖÖ‡' जैसी अभिव्यक्ति की माँग है, जिसे उषा जी ने साधा है। थोड़े में कहने से दृश्य नहीं जमता बस फ्लैशेज़ आते हैं, वही इनके उपन्यासों मे हैं। अनुभूति व सोच के साथ और जो कुछ भी कहा गया है, एकदम थोड़े ही में कहा गया है। चित्रमयता से आकर्षित करने की जगह इनके उपन्यासों में चतुरता व शालीनता से सूचनात्मकता का काम कराया गया है।

भाषा की शुद्धता और भी ध्यान आकर्षित करती है। कहीं कोई व्याकरण आदि की गलती या भूल नहीं के बराबर है। विशुद्ध हिन्दी का एक उदाहरण देखें- "x¾ÖaÖ »Ö²Ößं †¾Öx¬Ö ÃÖ अकेले रहते आयी थी। विद्या को कभी ठीक से जानने की चेष्टा नहीं की। हमेशा पूर्वग्रह लेकर ग्रस्त रही। और अब तो पापा बड़े निरीह, कातर, दुखी, मर्दित-से लग रहे हैं।"[98] अधिकांश शब्द संस्कृत के ही हैं, पर खटकते नहीं। 'स्नानागार' <¾Ö 'शयनकक्ष' •ÖÃÖ ¿Ö²¤ ³Öß ¬Ö>»»Ö ÃÖ प्रयुक्त हुए हैं और सहज बन गए हैं। इनके साथ चीज़ों आदि के अंग्रेज़ी नाम वैसे ही आते हैं और खप जाते हैं।

भाषा उपन्यासकार के हाथों में एक शक्तिशाली उपकरण है। वÖÆ ¿Ö²¤-योजना (Diction), वाक्य संरचना (Sentence Structure), वाक्य-विन्यास (Syntax) और ध्वनि-पैटर्न के प्रयोग द्वारा अपनी बात को विशेष प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने में समर्थ होता है, पाठक पर विशेष प्रभाव डाल सकता है। प्राचीन लेखकों की रचना में यदि व्याकरण-सम्मत, सुसम्बध्द वाक्य होते थे तो आजकल के लेखकों ने अपूर्ण वाक्यों के प्रयोग एवं विराम-चिन्हों, संयोजकों (Connectives) तथा परम्परागत वाक्य-रचना के बहिष्कार द्वारा अपनी शैली को लचकदार बनाया है। उषा जी ने भी अधूरे वाक्यों का सफलतापूर्वक प्रयोग करते हुए मन में उठने वाली भाव-तरंगों और क्षण-क्षण परिवर्तित होने वाली चेतना-धारा को सक्षम अभिव्यक्ति प्रदान करने में सफलता प्राप्त की है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

कü) "संबंधों का मरना-जीना आपने पहले क्यों नहीं सोचा? मैं गई थी आपके पैरों पड़ने कि मु-ÖÃÖ शादी करो? आपने ही मु-Ö ..."[99]

खÖ) "अम्मा हर वक्त रोना रोया करती है, नीरू की शादी, हम सब की पढ़ाइयाँ। कहती है कि डॉक्टर बन कर क्या करेगी। नीरू के बाद..."[100]

गÖ) "इनका कहना है कि ऐसे जल्दी में किए गए विवाह से शायद तुम सुखी न हो, क्योंकि ... क्योंकि ..."[101]

इन अधूरे वाक्यों द्वारा भी अपने संकेतों को पाठकों तक सम्प्रेषित करने में लेखिका सक्षम है और यही उनकी सफलता है।

कई जगहों पर उषा जी ने अपनी भाषा के प्रयोग द्वारा ही दृश्य या स्थान को मूर्तिमान और साकार कर दिया है। वातावरण के साथ ही वस्तुओं, व्यक्तियों, उनकी वेश-भूषा आदि का विवरण चित्रमय वाक्यों में देने से निश्चय ही वह दृश्य पाठक की कल्पना में साकार हो उठता है -

"राधिका ने अपनी खिड़की नीची कर रखी थी, जिससे प्लेटफार्म पर चलने-फिरने वालों के केवल धड़ दिखाई देते थे, लंबे घेरदार घाघरों में घबरÖ‡, ‡¬Ö¸-उधर दौड़ती स्त्रियाँ, फर्श पर नंगे पैरों की छाप, लाठी लिए, हाथ में पोटलियाँ थामे बौखलाए-से देहाती, खाली डिब्बे आपस में खनखनाते दूधवाले, और कभी-कभी डिब्बे के आगे चक्कर लगा लेनेवÖÖ»Ö ¤Ö-तीन शौकीन लोग।"[102]

इन शब्द-चित्रों के द्वारा लेखिका पाठक की चाक्षुष, श्रव्य, स्पर्श, गन्ध, स्वाद-ÃÖ²Ö-ÖÛ ऐन्द्रिय अनुभूतियों को जगाती है और पाठक दृश्य को विश्वासपूर्ण दृष्टि से ही नहीं देखता अ×¯ÖŸÖÖ उसे लगता है कि वह स्थल-विशेष पर घटना के समय स्वयं उपस्थित है।

इसके विपरीत लेखिका ने सामान्य भाषा-शैली द्वारा संक्षिप्तीकरण, अमूर्तीकरण, थोड़े में कहना आदि विशेषताओं का निर्वाह किया है। उन्होंने सामान्य भाषा-शैली द्वारा पात्र की सामान्य विशेषताओं पर प्रकाश डाला है, उसके विषय में -ाातव्य बातों को संक्षेप में बता दिया है | 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में निराशा एवं अकेलेपन को -ोलने वाली सुषमा का सरल भाषा-शैली में सुंदर चित्रण लेखिका ने किया है। यहाँ कम शब्दों में सुषमा की समग्र स्थिति को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है - "दूर कहीं दो लड़के। सड़क पर एक कुत्ता भूँक उठा और चौकीदार ने आवाज़ लगाई। होस्टल की सारी बत्तियाँ बु-ा चुकी थीं। सुषमा आँखें फैला-फैलाकर उस अंधकार में कुछ देखने लगी। उसकी उँगलियाँ आगे बढ़ीं और किसी को बिना छुए »ÖÖ™ü †Ö‡Ô। उसे पहली बार अपने अकेलेपन का इतना अहसास हुआ। उसे लगा कि सबकुछ उसे अकेले ही -ोलना है।"[103]

उषा जी ने लम्ब-लम्बे वाक्यों के साथ-ÃÖÖ£Ö "Ö™ü-छोटे वाक्यों का प्रयोग भी सफलतापूर्वक किया है | •ÖÆÖÑ »Ö´²Ö-लम्बे यौगिक वाक्य दृश्य का विस्तारपूर्ण चित्रण करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं या एक विशेष प्रकार की मन:स्थिति बताते हैं, वहीं छोटे-छोटे स्वतंत्र वाक्य पात्र के मन में उठनेवाले अन्तर्द्वन्द्व और उसससे उत्पन्न संभ्रम, खंडित प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने में अधिक सफल हुए हैं। 'शेष यात्रा' उपन्यास में अनु के संबंध में डॉ.गुडमैन के ये वाक्य दृष्टव्य हैं - "क्या हिंदुस्तान में तलाक़ नहीं होते? क्या वहा †Ö¤´ÖßÛ-औरतों के शादी के बाहर ¯ÖÏê´Ö-संबंध नहीं होते? क्या वहाँ अवैध बच्चे पैदा नहीं होते? आदमी का स्वभाव वही रहता है, चाहे पूरब हो या पश्चिम।... वह प्यार कैसा है? स्वार्थी, बिना आत्माभिमान के? जो ठुकराए, उसी के पैर पकड़ती रहो? यही सिखाती है तुम्हारी सभ्यता? मैं मानने को तैयार नहीं हूँ।"[104] लेखिका ने अपने उपन्यासों में यह विवेकपूर्ण चुनाव किया है कि कब और कहाँ लम्बे वाक्यों का और कब छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करे। यही कारण है कि उनकी वाक्य-रचना का प्रत्येक मोड़ पाठक पर पड़ने वाले प्रभाव को और अधिक निखार देता है।

उषा प्रियंवदा ने कई जगह काव्यात्मक भाषा का प्रयोग भी किया है। भाषा का काव्यात्मक प्रयोग पहले केवल अलंकरण के लिए होता था, कवित्व उपन्यास में अलग से चमकता

था। आज अनुभव किया जा रहा है कि बोलचाल की भाषा द्वारा भी काव्यात्मक आवेग उत्पन्न किया जा सकता है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' में काव्यात्मक भाषा का प्रयोग इस प्रकार हुआ Æ -

"मैं तुम्हें याद नहीं करूँगी, थकी और अपने निश्चय में दृढ़।
मैं तुम्हारी याद नहीं करती,
जो जीवन के प्रत्येक सुख से बँधी हुई है,
¾ÖÆ Ÿö´ÆÖ¸ß Ã´Ö×ŸÖ -
प्रत्येक सूने दिवस के अंत में जब निद्रा आती है।
जब रात्रि मेरी कसी चौकसी को ढीला कर देती है -
मेरे सारे बंधन शिथिल हो जाते ह -
मेरी इच्छा का उल्लंघन कर,
पहली नींद में जो पहला स्वप्न आता है,
मैं दौड़कर, दौड़कर, तुम्हारे वक्ष में सिमट जाती हूँ।"105

यह भाषा उत्कट संवेदनात्मक बोध जगाने में सफल रही है। उषा जी ने अक्षरों के अनुक्रम, आकांक्षाओं, आशा, निराशा, जि-ञासा तथा विस्मय का संरचनात्मक संग्रथन करके औपन्यासिक भाषा को लयात्मकता प्रदान की है। कहीं-कहीं तो उन्होंने गीतों की सृष्टि भी की Æ -

"1
ये गंधहीन
ÃÖ±ú¤ü ±ú»Ö
जिनका मैं नाम भी नहीं जानता
गूँथ लो इनको अपने बालों में
दे दो इन्हें रूप
सुगंध।
बना लो इन्हें
अपना गजरा।
2

टेसू का अकेले जंगल में फूलना,
परदेसी सड़क पर
•ÖÃÖ ÝÖ´Ö ।
3
अंधी आँखों की टकटकी में
उभरती है एक आकृति
क्या मेरी आँखों के अक्स में
तुम अपने को देख पाओगी ।"[106]

इतना ही नहीं तो कहीं-कहीं अनायास ही लोकगीत भी उनके उपन्यासों में समाविष्ट हो गये हैं -

""ाार बहू आवें बाले की,
दो गोरी, दो काली,
¤Ö -ुलावें, दो खिलावें,
ले सोने की थाली ।"[107]

मन:स्थिति का चित्रण करते समय उषा प्रियंवदा मनोवै-ाानिक भाषा का प्रयोग करती हैं । लगता है कि लेखिका ने मानव मन में घुसकर ही इन शब्दों की रचना की है । 'पचपन खंभे »ÖÖ»Ö ¤ßü¾ÖÖ¸' की सुषमा के नील से प्रेम संबंध हैं । यह सुषमा का निजी जीवन है । किंतु नील और सुषमा के संबंधों को लेकर कॉलेज में चर्चा शुरू होती है । सबके सामने सुषमा के व्यक्तिगत जीवन की धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं । सुषमा की त्रासद मन:स्थिति का सजीव चित्रण लेखिका ने किया है - "सुषमा दोनों हाथों से अलमारी थामे ×ÃÖ¸ -ुकाए खड़ी रही । उसके गाल तपने लगे और उसका मन होने लगा कि धरती फटकर उसे निगल ले । जो कुछ उसके लिए अमूल्य स्वर्गिक था, दुनिया की आँखों में वह कितना सस्ता और उपहासास्पद बन गया थÖ! उसकी पलायनवादी प्रवृत्ति ने उसे लड़कियों के सामने जाने से रोका । उसे लगा कि उसकी सारी शक्ति निचुड़ गई है । न जाने कितनी देर तक वह वैसे ही निष्प्राण टिकी खड़ी रही ।... नई किताबों की पंक्तियाँ जैसे आँखे थीं जो उसे घूर रही थीं । उसके कानों में वे काल्पनिक वार्तालाप गूँजने लगे जो हर कमरे, हर क्वार्टर और गलियारे में हुए होंगे । बीड़ी पीते हुए चपरासी और नौकर, आपस में हँसÖÝÖß "Ö¡ÖÖ‹, Ã™Ö±ú¾Ö´ÖÖ ´ÖÖ ±úÃÖ±úÃÖ ..."[108]

स्पष्टत: उषा प्रियंवदा की भाषा में युगानुरूप निराशा, भय और संत्रास व्यक्त होता है। साथ ही आंतरिक द्वन्द्व, दुविधाएँ और उन दुविधाओं से उभरने का साहस और प्रयत्न अप्रतिम, अपूर्व और अत्यंत विरल है। भाषागत सहजता, सरलता एवं प्रवाहात्मकता के साथ-ÃÖÖ£Ö चरित्रों के अनुरूप कहीं-कहीं व्यंग्यात्मकता का प्रयोग भी उषा जी करती हैं। 'पचपन खम्भेÖ »ÖÖ»Ö ¤ß¾ÖÖ¸,' 'रुकोगी नहीं राधिका,' 'शेष यात्रा' में मार्मिकता और प्रभावमयता की भाषा का रूप देखने को मिलता है। उनकी भाषा पात्रानुकूल और प्रसंगानुकूल है। चित्रात्मकता के कारण उपन्यासों में सजीवता निर्माण हो गई है। उन्होंने अपनी भाषा के माध्यम से राधिका का काँप जाना और उसका अपने परिवेश से कटकर अलगाव -नेलना प्रस्तुत किया है। इसके साथ प्रतीकात्मक भाषा को भी उन्होंने अपने उपन्यासों में अपनाया है। जैसे-डैन के द्वारा बाहों से कंधे घेर लेना, नये वातावरण में कल्चरल शॉक से गुज़रने के बाद, सहज होकर विदेशी जीवन के साथ सामंजस्य कर लेने की स्थिति का प्रतीक है। इसी प्रकार मनीष की बाहों से मुक्त हो जाने का प्रसंग भी राधिका के भारतीयता की ओर -नुकाव का प्रतीक है।

उषा जी के संवादों की भाषा भी अत्यंत सरल एवं प्रसंगानुकूल है, जो कथानक को गति प्रदान करती है। 'रुकोगी नहीं राधिका' में संवाद आद्यंत संक्षिप्त, सरल तथा संयत हैं। कुछ संवाद एक या डेढ़ वाक्यों के हैं।

राधिका और डैन का राधिका की शादी के बारे में संवाद - '´Ö-ने युवा पुरुष बहुŸÖ अपरिपक्व लगते हैं।'

'इसलिए कि तुम प्रत्येक में अपने पिता की सी मानसिक प्रौढ़ता ढूँढ़ती हो। मालूम है कि तुम मेरे साथ इतनी फ्री क्यों हो?'

'क्यों?' राधिका ने पूछा।

'क्योंकि तुम मु-नमें कहीं अपने पिता का प्रतिबिम्ब पाती हो।'

'ठीक है न?'

'बिल्कुल गलत' राधिका ने उँचे स्वर में प्रतिघात किया।[124]

उषा प्रियंवदा की भाषा में व्यंग्यात्मकता भी देखी जा सकती है। कभी-कभी लेखक स्वयं या अपने पात्र द्वारा अपने मन का विषाद और कडुआपन निकालने के उद्देश्य से अपना कथन इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि उस अभिव्यक्ति में एक विशिष्ट व्यंग्यात्मकता होती है। पात्र सीधे सरल या प्रत्यक्ष दोष दिखाने की अपेक्षा अप्रत्यक्ष रूप से दोष निदर्शन व्यंग्यात्मकता द्वारा करते

Æ| 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में अम्माँ सुषमा से फिज़ूलखर्च न करके नीरू की शादी के लिए पैसे जमा करने को कहती हैं। अम्माँ चाहती है कि जैसे सुषमा के पास सबकुछ है, वैसे नीरू और प्रतिमा भी सुख से रहें। तब सुषमा अपने मन के विषाद और कडुएपन को निकालने के उद्देश्य से अपना कथन व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है - "†³Öß कौन दुख है ! भूखी रहती हैं, या तन ढकने को कपड़े नहीं हैं? मैं कुँवारी रह गई तो कौन-सा आसमान फट पड़ा ! इन दोनों की भी अगर शादी न हो सकी तो क्या हो जाएगा?"[110] सुषमा जब कर्ज़ लेकर नीरू की शादी करने की बात करती है, तब अम्माँ कहती है कि नीरू उसके पिता की ज़िम्मेदारी है। वही कर्ज़ लेकर उसका विवाह करेंगे। ऐसे में सुषमा का यह व्यंग्यात्मक संक्षिप्त वाक्य तीर के समान सीधे ´Öन को भेद देता है - "कुछ मेरी कर दी, कुछ नीरू की कर देंगे।"[111] इस प्रकार भाषा व्यंग्यात्मकता के कारण अत्यंत प्रभावी हुई है।

क¤Æà-कहीं प्रकृति का अथवा वस्तुओं का मानवीकरण भी भाषिक सौंदर्य को ²ÖœÖÖŸÖÖ Æ -
"”Ö™Ö - सा अँधेरा घुमड़ आया था और बाहर के जो पेड़ हवा के सतत दबाव से टेढ़े हो गए थे, अब सिर पर ताड़ के पत्तों की छतरी और अपने विकृत तनों पर ऐसे -ूम रहे थे जैसे कि उन्हं इसी तूफ़ान की प्रतीक्षा थी।"[112]

उषा जी के पात्र पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होने के कारण और विदेशी वातावरण का चित्रण होने के कारण विदेशी भाषा का प्रभाव इन पात्रों पर हुआ है। अधिकांश पात्र उच्च वर्ग से जुड़े होने के कारण और शिक्षित होने से भी उनकी भाषा में कई अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग हुआ Æ| •ÖÃÖ - कॉलेज, एब्नॉर्मल, प्लेबॉय, वार्डन, लैक्चरर, ऑर्डर, कॉटेज, डिनर, ज्वैलर, ईवनिंग, इंटरव्यू, कंपटीशन, स्मार्टनेस, एयरोड्रोम, एसोसिएशन, डेस्टिनी, ट्रांसफर, इन्वॉल्व, रिलैक्स सिस्टर, नॉर्मल, कंडीशन, लेडीज़, टाइम, वाइफ़, बर्थडे, बेडरूम, स्टडी, बाथरूम, क्वार्टर, प्राइवेट, सीक्रेट, सेक्स, लंच, मैडम, ट्रीटमेंट, रिजेक्ट, लवर, रिज़ल्ट, मेकअप, फ्रस्ट्रेशन, न्यूज, केबिन, प्रॉमिस, कल्चर, पार्टनर, गर्लफ्रैंड, बॉयफ्रैंड, प्रोफ़ेशन, ऑफ़िस, नेचुरल, ड्रिंक, हाउस, अवौयड, स्टोर, डार्लिंग, प्रॉपर्टी, थैंक्स आदि अनेकानेक शब्द इनके उपन्यासों में मिल जाते हैं। अंग्रेज़ी शब्दों से संयुक्त वाक्य प्रस्तुत है - "अच्छी हो? सुना है तुम्हें **ड्राइविंग लाइसेंस** मिल गया Æ| ¯ÖÆ»Öß Æß **ट्राई में। एक्जामिनर** क¤Ö ×¸-ा लिया क्या?"[113]

ये अंग्रेज़ी शब्द अत्यंत सहजता से प्रयुक्त हुए हैं, जो पढ़ने पर खटकते नहीं। इनकी भाषा में अंग्रेज़ी शब्दों का हिन्दीकरण भी हुआ है। जैसे-बेंचों, पोस्टों, ट्रेनों, स्टेशनों, केबिनों, टूरिस्टों आदि। कहीं-कहीं अंग्रेज़ी वाक्यों का प्रयोग भी हुआ है। जैसे-

"थैंक्स फॉर एवरीथिंग वाना। विश यू लक !"[114]

"एन्जॉय योर कार, यू मेड अ गुड चोयस"[115]

"यू शूड गेट मैरिड नाउ"[116]

"ही कैन गो टू हैल!"[117]

वाक्य-विन्यास पर भी अंग्रेज़ी का प्रभाव देखा जा सकता है। जैसे - "बेवकूफ लड़की, भुच्च गँवार बनी रहेगी। निरक्षर भैंस, सारे दाँत गिर जाएँगे, क्या करेगी तब।"[118]

"ÃÖ>क के मोड से राहुल की गाड़ी अन्दर मुड़ती है, हल्की-सी आहट, दरवाज़ा खुलने और बन्द होने की।"[119]

"बातें, इम्तिहान की, कोर्स की, विद्या कितना पढ़ती है, मिस शर्मा के पास आज वह फिर आए थे, उनकी ¾ÖÖ ³ÖÖ ŸÖÖ †Ö‡ Æ‡ Æ।"[120]

समग्रत: उषा प्रियंवदा ने भाषा के माध्यम से उपन्यास के पात्रों की मानसिक बनावट, अलगाव, संस्कृति के प्रति द्वंन्द्व गहराई से व्यक्त किया है। चित्रात्मकता, काव्यात्मकता, व्यंग्यात्मकता, सांकेतिकता आदि के कारण अनुभूति एवं विचारों का सहज संप्रेषण हो पाया है। सरल और सीधी भाषा में छिपे प्रतीक, पात्रों के वैशिष्टय को उल्लेखनीय बनाते हैं। मनोवै-ाानिक भाषा के कारण नायिकाओं का मनोवि-ाान मार्मिक बन पड़ा है। अधूरे एवं छोटे-"Ö™ वाक्यों का प्रयोग भी सफलतापूर्वक हुआ है, जिससे पात्रों के मन में उठनेवाले अन्तर्द्वन्द्व और उससे संभ्रम, खंडित प्रतिक्रियाएँ सफलतापूर्वक व्यक्त हुई हैं। पात्रानुकुल, प्रसंगानुकूल भाषा के ÃÖÖ£Ö-साथ काव्यात्मकता के कारण भाषिक सौंदर्य बढ़ गया है। संवादों की भाषा भी अत्यंत सरल, सहज एवं संक्षिप्त है। अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से विदेशी वातावरण का चित्रण स्वाभाविक लगता है। अंग्रेज़ी भाषा के शब्द भी इनकी भाषा में पूर्ण रूप से घुल मिल गए हैं। साथ ही प्रकृति का मानवीकरण भी भाषिक सौंदर्य बढ़ाता है। कुल मिलाक¸ ˆÂÖÖ प्रियंवदा की भाषा परम्परागत भाषा-रूप का निर्वाह न करते हुए नवीनता से युक्त है।

5.2.2 प्रतीक विधान :

अनुभूति को अधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। ÃÖÖ×ÆüÙय कोश के अनुसार - "प्रतीक शब्द का प्रयोग दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है।"[121] यह कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समान रूप, वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। डॉ.पद्मा अग्रवाल का कहना है - "प्रतीक अचेतन अवस्था की भाषा होता है। मन के भीतर भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रतीक सशक्त माध्यम है।"[122] प्रतीक मनोजगत की ऐसी सृष्टि है जिसके द्वारा अंतर्जगत का व्यावहारिक अध्ययन अधिक प्रामाणिकता के साथ किया जा सकता है। अदृश्य, अस्पर्श की अभिव्यक्ति प्राय: प्रतीक के माध्यम से की जा सकती है। आधुनिक काल में मनुष्य के सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग अधिकाधिक होने लगा है।

उषा प्रियंवदा के उपन्यास भी प्रतीकों से भरे पड़े हैं, जिससे इन उपन्यासों का साहित्यिक मूल्य और बढ़ गया है। इनके उपन्यासों के प्रतीक सुसम्बध्द (Compact) हैं। वे एक शक्तिशाली ऐन्द्रिय प्रभाव (Impression) डालते हैं। लेखिका ने जानबू-न कर अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए इन प्रतीकों का प्रयोग किया है और वास्तविकता पर एक विशिष्ट अर्थ लाद दिया है। प्रतीक-प्रयोग द्वारा इनकी भाषा नये सांचे में ढल गई है, उसमें कल्पना का वैभव और अनुभूति की द्रावकता आ गई है।

'रुकोगी नहीं राधिका' में प्रतीक योजना का सफल निर्वाह हुआ है। उपन्यास के सारे चरित्र ही प्राय: प्रतीक व प्रतिनिधि हैं। इनमें विद्या का मनोवै-ज्ञानिक प्रतीक होना सबसे साफ़ है। इलेक्ट्रा ग्रंथी को पैदा करने के रूप में वह प्रतीक बनकर आती है और उसके मरने के बाद राधिका ग्रंथी से मुक्त भी हो जाती है। नानी तो परंपरा एवं समर्पणशील संस्कृति की प्रतीक है हीं। राधिका आधुनिक स्त्री जीवन की, तो रमा परंपरागत स्त्री जीवन की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है।

भाषा के माध्यम से हर वाक्य में उषा प्रियंवदा ने राधिका की मन:स्थिति व्यक्त की है •ÖÖ †ÛÃÖÙत्व के यथार्थ को प्रतीकात्मक रूप से स्पष्ट करती है। इस संदर्भ में डॉ.सुशीला शर्मा लिखती हैं - "कमरे का बदला रूप राधिका के व्यक्तित्व का प्रतीक है जिसमें पुरानी राधिका के कुछ चिह्न ज्यों के त्यों उपस्थित हैं। राधिका द्वारा कमरे की सज्जा में सूरजमुखी के चमकदार

पीले फूलों की तस्वीर टांगना, काठ की उड़ती हुई चिड़िया लगाना तथा पारदर्शी कांच की दुगाची रखना प्रतीकात्मक रूप में राधिका के कलाप्रिय व्यक्तित्व की अंतरंग वृत्तियों की व्यंजना करता है। उसके मन में छिपी गृहणीत्व व घर पाने की आकांक्षा उनसे व्यक्त होती है।"[123]

इसी प्रकार मनीष की बाहों से मुक्त हो जाने का प्रसंग भी राधिका के भारतीयता की †0̈¸ -ुकाव का प्रतीक है। राधिका जब मनीष के साथ घूमकर लौटती है तो खिड़की के बाहर का अंधेरा, बंद दुकानें, बू-ने हुए साइन बोर्ड, इक्का दुक्का जाने वालों का दिखना, उसके भीतरी अंधकार को व्यक्त करता है। इसी प्रकार शंकर-परिवार जहाँ भारतीय संस्कृति की विकासमानता के वर्तमान रूप की सीमाओं के संकेत देता है, वहीं मामा के परिवार की भावनामय संसक्ति उस मधुर टीस को कुरेद देती है, जिससे आज हम वंचित होते जा रहे हैं, नानी की स्मृतियों और नातिन की शादी के लिए रखे उनके गहनों की तरह यदि हम इन्हें सँजोकर नहीं रख सके तथा उनकी दी अठन्नी की तरह मुट्ठी में कसकर यदि हम इस हार्दिकता को, अपनत्व भाव को नहीं पकड़ सके, तो जो हम खो देंगे, उसकी क्षति अपूरणीय ही रहेगी। इसका जितना तीव्र एहसास उषा जी दिलाती हैं, वह शायद यहाँ से अलंघ्य दूरी पर अमेरिका में उनके रहने के कारण ही है। इस तरह अमेरिका ने इस कृति को ढेरों क्षितिजों को खोलने की सार्थकता दी है।

उपन्यास के अंतिम पृष्ठ पर पिता - राधिका की बात शुरू होते ही एक जुगनू कमरे ´0̈ उड़ने लगता है। तब उस पर खास ध्यान नहीं जाता। लेकिन जब पिता का प्रस्ताव वह ठुकरा देती है, पिता फिर उस जुगनू को एकटक देखने लगते हैं। तब हम सम-ा पाते हैं यह कलात्मक प्रयोग कि वह जुगनू पिता की आशाओं का था, जो अब आँख से ओ-ाल हो जाने की पीड़ा एकटक रूप में उन आँखों को दे रहा है। इसी बीच पिता का कुशन की टेक लगाना भी, पिता के लिए किसी और सहारे के न रह जाने का संकेत बन जाता है। सब कुछ कह-सुन लेने के बाद राधिका मनीष से पूछती है, 'फिर कब आओगे?' 'अब तो तुम आना' कहकर मनीष जो गया, तो संकेत करता गया कि अब राधिका जायेगी ही, रुकेगी नहीं। इस प्रकार के ढेरों आयाम संकेत प्रतीक रूप में प्रस्तुत उपन्यास में छिपे पड़े हैं।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास का शीर्षक ही प्रतीकात्मक है। इन्हीं खम्भों एवं दीवारों के बीच सुषमा का जीवन बीत रहा है। कॉलेज के ये पचपन खम्भे और लाल दीवारें उन परिस्थितियों के प्रतीक हैं, जिनमें रहकर सुषमा को ऊब तथा घुटन का तीखा अहसास होता है।

कॉलेज का यह परिसर फैल कर पूरे भारतीय परिवेश को ध्वनित करने लगता है - ^ÃÖ ¯Öx¸¾Öü¿Ö के सामाजिक निषेधों और उसमें व्यक्ति की छटपटाहट को मूर्त करने लगता है। खम्भे एवं दीवारें सुषमा की एकरस जीवनचर्या और उसकी अलंघ्य सीमाओं को बिंबित कर देते हैं।

सुषमा आधुनिक आत्मनिर्भर युवती का प्रतिनिधित्व करती है। नौकरी ने जहाँ उसे एक सामाजिक रुतबा और एक हद तक आर्थिक स्वातंत्र्य दिया है-वहीं उसे पारिवारिक शोषण से भी •Öü> ×दया है। परिवार के लिए आर्थिक उपार्जन का साधन बन गई इस युवती के मनुष्य एवं व्यक्ति रूप को धन के वर्चस्व के सामने नकार दिया गया है। और सुषमा के लिए नौकरी का †£Ö Æ - एकाकी, एकरस विषादमय जीवन दशाओं को जीते रहने की मजबूरी। आत्मनिर्भर होने के बावजूद वह भारतीय समाज के अदृश्य एवं क्रूर प्रतिबन्धों से बँधी है और उसकी जड़ताओं एवं अयाचित तांक--ांक, फूहड़ घुसपैठ से आतंकित है। व्यक्ति जीवन में प्रेम तत्व की अनिवार्यता स्वत: सिध्द है और वह सौंदर्य का उच्चतम मानवीय अनुभव भी है। लेकिन सामाजिक निरादर और अवमूल्यन के भय के साये उसका रूपांतरण कर डालते हैं। आत्मा की उन्मुक्ति के बजाय वे देते हैं गहरा अपराध बोध और यह एक सुन्दर अनुभव दूसरे ही पल कुरूप और भयावह, फूहड़ और आतंककारी हो जाता है। ऐसे में वह अनुभव करती है कि, "•Ö²Ö Æ´Ö ±ú»Ö की पंखुड़ियाँ नोचकर फेंक देते हैं तब फूल को कैसा लगता होगा, मैं अब सम-Ö ¯ÖÖ‡ Æ | उस नुची पंखुड़ियों के ढेर पर मैं बैठी हूँ।"[124] यहाँ फूल सुषमा का प्रतीक है जिसकी पंखुड़ियाँ उसके तथाकथित अपनों ने और रूढ़िवादी समाज ने नोच डाली हैं।

"... इन कुछ दिनों में कमरे में कितनी बेतरतीबी आ गई थी ! छत के एक कोने में मकड़ी ने जाला पूर दिया था। स्टैंडर्ड लैंप के शेड पर धूल की मोटी पर्त ... कैलेंडर में कई दिन पहले की तारीख... कमरे के परदे में भौंरी के हाथों के धब्बे।"[125] यह कमरा सुषमा का प्रतीक है। यह बेतरतीबी कमरे के साथ-साथ सुषमा के जीवन में भी आ गई थी। नील को सम-ÖÖŸÖ हुए उससे आँखे न मिला पाने के कारण सुषमा का रुमाल को अपनी उँगलियों से बार-²ÖÖ¸ मरोड़ना, उँगली में पड़ी अँगूठी को बार-बार उतारना-चढ़ाना उसकी मन:स्थिति की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। उपन्यास के अंत मे नील को प्राप्त करने की आखिरी उम्मीद, उसे एअरपोर्ट मिलने जाने के लिए तैयार होते हुए सुषमा जब लिपस्टिक लगाती है तो उसके होंठ एक लाल टेढ़ी-सी रेखा बन जाते हैं। यह उसके भीतर की अकुलाहट, उत्सुकता और बेचैनी का प्रतीक है किन्तु टैक्सी वापस भेजकर अपनी पसीजी हथेली से रगड़कर होठों को पोंछना अपने

सहज नारीत्व का गला घोंटना है। इस प्रकार परिवार के लिए वह खुद को होम कर देती है। उषा जी ने पात्रों की मानसिकता की सूक्ष्म व्यंजना करने वाले ऐसे प्रतीकों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है।

'शेष यात्रा' में अनु से तलाक़ के दस वर्ष पश्चात् जब प्रणव अनु से मिलता है तब उसके भीतर अनु के प्रति ममत्व, दुलार, करुणा उमड़ने लगती है। किंतु तभी वह महसूस करता है कि "पूरी तरह सूख गए ठूँठ में गरमी में पानी पाकर एकाध कोंपल भले ही फूटे, ¯Ö¸ ¯Ö¸Ö ŠŠ ×±ü¸ Æ¸Ö-भरा होगा, इसकी कोई गारंटी नहीं।"[126] यहाँ ठूँठ प्रणव का, प्रणव-अनु के संबंध का प्रतीक है। अनु से दूर होकर प्रणव का जीवन एक प्रकार से ठूँठ बन गया है। प्रणव ने अपने कुकर्मों के कारण ही अपने हरे-भरे, पल्लवित (सुखी) जीवन को ठूँठ में परिवर्तित कर दिया। उसे पता है कि अनु से मिलने के पश्चात् भले ही एकाध कोंपल अर्थात् खुशी की लहर उसके जीवन में दौड़ गई हो, किंतु फिर से उसका जीवन पल्लवित हो जाए यह संभव नहीं है। अनु से उसके संबंध पूर्ववत कभी नहीं हो सकते।

'†ÿÖ¾Ö¿ÖÞ' उपन्यास का नामकरण '²ÖÃÖ¸ß' †Ö¸ 'वनश्री' की तरह प्रतीकात्मक और ÃÖÖ£ÖÖक है। इस शब्द में वाना के भीतर बजने वाली बाँसुरी, अंतर्वंशी, की ओर संकेत है, जिसे शिवेश नहीं सुन पाया पर राहुल शुरू से ही सुनता रहा। इसमें 'एक स्त्री का अतृप्त इच्छा-ÃÖÖÃÖÖ¸' ही नहीं बज रहा, बल्कि चुनमुन जैसी करोड़ों भारतीय नारियों की करुण रागिनी बज रही है, जिसे अपने शिश्नोदर व्यापार में व्यस्त शिवेश जैसे 'ґÖÖ¾Ö¤ß' पुरुष नहीं सुन पा रहे। केवल सोने की चूड़ियाँ पहना कर कृता£Ö ÆÖ ¸Æ Æ |

'भया कबीर उदास' में भी प्रतीक योजना का सफल निर्वाह हुआ है। इस उपन्यास में एक कैंसरग्रस्त नारी के जीवन की अन्तर्यात्रा प्रतीकात्मक शिल्प विधि द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से प्रस्तुत की गई है। लिली कैंसर से पीड़ित है। एक दिन चलते-चलते उसे पौपी का फूल सड़क की एक दरार में खिला हुआ नज़र आता है। तब वह सोचने लगती है कि फूल को पता नहीं कि गैरेज से गाड़ी निकलेगी और उसे कुचल डालेगी। उस फूल के पास कुछ ही दिन हैं। यह फूल लिली का ही प्रतीक है, जिस प्रकार वह फूल का पौधा सड़क की दरार में उग कर फूल के नष्ट होने का कारण बन रहा है। ठीक उसी प्रकार लिली में भी कैंसर की बीमारी के उग जाने से उसके जीवन के भी कम दिन बचे हैं। वह सोचती है कि "पौपी का यह जंगली बीज कहाँ से आया और उस दरार में उग उठा। घास में, क्यारियों में, गमलों में नहीं, सीमेंट में।"[127]

तात्पर्य यह है कि यह भयंकर बीमारी जो उसके भी नाश का कारण बन रही है कहीं और स्थान न पाकर उसी के शरीर में क्यों उग गई? इस बीमारी के कारण उसके भी कम दिन बचे हैं।

एक जगह पर शेषेन्द्र लिली से कहता है- “बाँधो न नाव इस ठाँव” [128], जिसका प्रतीकार्थ यह है कि स्थायी रूप से शेषेन्द्र अपने जीवन में किसी स्त्री को स्थान नहीं देना चाहता। यहाँ ‘नाव’ लिली का प्रतीक है और शेषेन्द्र लिली से साफ़-साफ़ कह रहा है कि मैं पूर्ण रूप से तुम्हारा स्वीकार नहीं कर सकता। कैंसर की बीमारी के कारण लिली को लगता है कि शेषेन्द्र ही क्या, किसी भी पुरुष के साथ स्थाई संबंध बनाना उसके लिए अब संभव नहीं है। इसीलिए वह ÃÖÖ“ÖÝÖß Æ - “कोई भी ठाँव शायद न बचे इस नाव को बाँधने के लिए।”[129] साथ ही उपन्यास में लहरें जीवन की प्रवाहमयता का प्रतीक हैं।

इस प्रकार उषा प्रियंवदा ने भाषिक सौंदर्य को गहरी अर्थवत्ता से सम्पन्न करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया है। उन्होंने प्रतीकात्मक शैली के माध्यम से अपनी रचनाओं को जीवन्तता प्रदान करने का प्रयत्न किया है। इनके उपन्यासों में पात्रों की अंतश्चेतना का प्रतीकात्मक निर्वाह सफलतापूर्वक हुआ है। प्रतीकात्मकता और सांकेतिकता का सुंदर समन्वय इन रचनाओं में हुआ है। संक्षेप में उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में प्रतीकों का प्रयोग शिल्पगत, भाषागत, एवं कथ्यगत सौंदर्य का अभिवर्ध्दन करता है।

5.2.3 बिम्ब योजना :

बिम्ब एक शब्दनिर्मित चित्र माना जाता है। बिम्ब हमारी अनुभूतियों को पुन: रचते हैं। यह हमारी इन्द्रियों में उद्वेलन पैदा करता है, यह स्पर्श, सुनना, स्वाद, -ाान, प्राण व बुध्दि तक को संवेदनशील बना देता है। बिम्ब हमारी चेतना को, कल्पना को पुनर्जीवित करता है। चाहे वह पदार्थ, दृश्य या घटना हमारे सामने उपलब्ध ही न हो। बिम्ब का क्षेत्र-×¾ÖÃÝÖÖ¸ ³ÖÖÂÖÖ ‹¾Ö ×¿Ö»¯Ö दोनों तक है, किंतु आज इसका प्रयोग शैल्पिक स्तर पर पर्याप्त मात्रा में मिल रहा है। बिम्ब का निर्माण कल्पना के मूर्त होने पर होता है। बिम्बों की आवृत्ति जिस व्यंजना को जन्म देती है, उसी से प्रतीक जन्म लेते हैं। “प्रतीक में जातीय चेतना होती है, बिम्ब में व्यक्ति की चेतना। प्रतीक में तीव्रता और सांकेतिकता होती है, बिम्ब में समग्र और पूर्ण का गुण रहता है। प्रतीक केन्द्राभिसारी होता है, पर बिम्ब केन्द्रापसारी।”[130]

प्रतीक प्रयोग के समान ही बिम्ब-योजना में लेखक को सावधानी बरतनी चाहिए। कविता में सर्वप्रथम हमारा ध्यान बिम्ब की ओर आकृष्ट होता है, पर उपन्यास में यदि वह प्रकट होता है तो अन्तर्धारा के समान जिसका -ान हमें ध्यान देने पर ही होता है। कथानक-विकास और पात्र के चरित्र पर अधिक ध्यान रहने के कारण उपन्यास में बिम्ब की स्थिति गौण हो जाती है। प्राय: हम उन्हें दृष्टान्त (Illustrative Figures) मानकर उनको महत्व नहीं देते, घटना और पात्र को आलोकित करने वाले उपयोगी तत्व मानकर पढ़ने के तुरन्त बाद उन्हें भूल जाते हैं। अनेक उपन्यासकार भी उनका प्रयोग बहुत गम्भीरतापूर्वक नहीं करते, पर कुछ उपन्यासों में उनका प्रयोग रचना के अभिन्न अंग के रूप में गंभीरतापूर्वक किया गया है।

उषा प्रियंवदा ने भी बिम्बों का प्रयोग गंभीरता पूर्वक किया है। उन्होंने बिम्ब-योजना के द्वारा अपनी कृति को वैविध्य एवं व्यापकता प्रदान की है। साथ ही ऐसे प्रसंगों की अनुभूति करायी है जो थोड़े समय के लिए विशेष अर्थबोध के निमित्त अस्तित्व ग्रहण करते हैं। इनके उपन्यासों में प्राय: रूप, रंग, गंध, स्पर्श और शब्द की अनुभूति कराने के लिए बिम्बों का प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :

5.2.3.1 रूपगत बिम्ब :

क) "ऊपर देखने से रोज़ आकाश का एक नया रूप, कभी पारदर्शी नीलापन, कभी सफ़ेद बादलों की -ालर; कभी गहरे सलेटी पार्श्वभूमि पर हलके रंगों के थक्के; सुबह गुलाबी, फिर सुनहरे और फिर मध्याह्न की कड़ी धूप में विलीन।"[131]

ख) "नीना अपेक्षाकृत अल्हड़ थी, चॉकलेटी रंग का चुड़ीदार और सफ़ेद चॉकलेटी प्रिंट का कुर्ता, और आयु के अनुपात से दोनों ही लड़कियों के मुख पर अधिक मेकअप था। प्रेमा भी अपनी ओर से काफ़ी सज्जित थी, तरबूजी नायलॉन की साड़ी, ठंड में बिना बाहों का ब्लाउज़।"[132]

ग) "उसके बाल तरतीबवार, आँखें, नीली, बैगनी, गुलाबी रंगों से उजागर, होठों पर लाली; गालों पर पाउडर - सब कुछ एकदम सही, दुरुस्त; वैसा ही घर का हाल, -ाका-ाक रसोई, अलमारी में तहाए बगुले के पंखों जैसे धवल, सुगंधित लांड्री किए हुए वस्त्र..."[133]

5.2.3.2 शब्दगत बिम्ब :

क) "सड़क पर चाहे जितना सन्नाटा हो, दीवार पर चढ़ी और शीत में सूख गई बेल की टहनियाँ हवा के हर -ोकें से खिड़की के शीशे पर सिर पटकती हैं। कभी कोई रात का पक्षी चीख उठता है। नीचे भट्ठी चलती है, खट्, खटाक्,खट्; कमरा गरम हवा से भर जाता है और वह पुरानी लोहे की मशीन एक -ाटके के साथ बन्द हो जाती है। सारी रात यही क्रम चलता रहता है। खट्, खटाक्, खट् और सन्नाटा।"[134]

ख) "बस याद है कि वह कोने में पड़ी आराम कुर्सी पर बैठी, तन्मयता से वर्षा और तूफ़ान का निनाद सुन रही थी। कहीं कोई खिड़की रह-रहकर भड़भड़ा रही थी, और हवा पेड़ों को क्रूरता से -ाक-ÖÖर रही थी, यह भी एक संगीत था, इसमें लय भी थी और ताल भी।"[135]

ग) "†ÖÃÖ-पास का शोर कमरे में घुस आया, नीचे आँगन में फटाफट धोए जाते कपड़े, सामने पार्क में गेंद खलते बच्चों की आवाज़ें, पीछे गली में किसी स्त्री का कर्कश स्वर, और इन सबके ऊपर रेडियो पर फिल्मी धुनें"[136]

5.2.3.3 स्पर्शगत बिम्ब :

क) "सुषमा ने शाल कसकर लपेट ली। जिस दीवार से वह टिककर बैठी थी, उसकी ठंडक उसकी हड्डियों तक को छेदने लगी। नील की बाँह जहाँ उसे छू रही थी, वहाँ कुछ गरमाई थी और सुषमा को वह स्पर्श बहुत प्रतीकात्मक लग उठा। उसने सोचा कि इस क्रूर, कठोर, अंधकारमय दुनिया में वह नील से ही कुछ सांत्वना पा सकती है। नील के स्पर्श में स्निग्धता है, उष्णता और आत्मीयता।"[137]

ख) "जहाज के बाहर पैर रखते ही हवा के -ोंके ने राधिका को छुआ, खूब तीखी ठंडी हवा ने, जिससे वह एकदम काँप उठी। तब डैन की बाँह ने उसके कंधों को घेर लिया।"[138]

ग) "नाव मोटर से चलती है, चप्पू से नहीं, बीच के तख्ते पर वाना और चाची बैठी हैं, सामने बच्चों के साथ राहुल, बीच में जगह कम है, राहुल का पैर वाना के पैर से छू रहा है; शरीरों ने पहचान बना ली है; वाना के पैरों में मीठी-मीठी थकान है, और पूरे शरीर में ढेर-ÃÖß शराब पी लेने का सा खुमार। उसके पैर की छगुनी तक इस समय सम्पूर्ण तुष्टि से छकी हुई है।"[139]

5.2.3.4 रंगगत बिम्ब :

क) "अक्टूबर के उजले-उजले सुनहले दिन। हर तरफ़ रंग-Æß-रंग, मेपल वृक्षों के हरे, पीले और लाल पत्ते, ओक के ताँबई किनारों पर सुनहले रंग की पट्टी और हनी लोकस्ट की ¯ÖÝÖ»Öß-पतली महीन कटाव की पत्तियाँ, हवा के चलने पर पीले बसन्ती पर्दे की तरह थरथराती, बलखाती, नीचे आ गिरती हैं।"[140]

ख) "वह बाहर गलियारे में बैठी है। एक चटक पीली साड़ी में, जैसी साड़ियाँ, भक्तगण बाज़ार में ख़रीदते हैं और गंगा को अर्पण करते हैं। पीली साड़ी पर लाल और जोगिया रंग के फूल छपे हैं जिनकी आभा उसके गहरे साँवले चेहरे पर जगमगा ¸Æß Æ| ¸ÖÆ»Ö को देखकर वह थोड़ा-सा हँसती है। उसके उज्ज्वल, छोटे-छोटे दाँत चमकते हैं।"[141]

ग) "अपने शयन कक्ष में भी उसने स्वयं सफाई की और उनके आने से पहले तैयार हो गई। उसने मूँगिया रंग की चंदेरी की साड़ी और वैसे ही रंग का, बिना बाँहों का ब्लाउज़ पहना, गले में नीली डोरी पिरोए मोती की एक लड़ डाल ली जिसका छोटा-सा नीला फुँदना पीठ पर लटक रहा था।"[142]

5.2.3.5 गंधगत बिम्ब :

क) "बहुत दिनों बाद, राधिका भारतीय स्टेशनों का एक अपना ही शोरगुल सुन रही थी, उनकी एक अपनी ही गंध, बर्फ़ में जमी मछलियों की सिसियांद, कच्चे-पक्के फलों, पसीने और मैले कपड़ों की गंध और कोयले का महीन चूरा भी उसे अब अप्रिय नहीं लग रहा था।"[143]

ख) "अचानक अनजाने राहुल का चेहरा उस अँधेरे में उजागर हो उठता है, तो क्या मु-ो राहुल से प्यार हो गया है या केवल एक दैहिक आकर्षण, राहुल की महक जो औरों की तरह उसे भी खींच रही है - पर अब महक कहाँ, वह तो कब का चला गया है फिर भी इस घर, इस कमरे, इस पलंग पर उसकी सुगंध है।"[144]

ग) "शायद वह भी सारी सुबह काम करता रहा होगा। उससे पसीने की जो गंध उठी, वह यमन के नासारंध्रों से टकराई; ताज़ी खोदी जाती मिट्टी, दूब के साथ मिली हुई स्वस्थ युवा पुरुष की पसीने की महक। यमन अचकचाकर पीछे हट गई। क्या उसके अपने शरीर की कोई

रुग्ण गंध है? कीमोथेरपी के विषकाकटेल की, रेडिएशन के दौरान दग्ध मांस की? अस्पताल में कैसी विशेष गंध बसी रहती है और बहुत दिनों से बीमार लोगों के बिस्तर और कमरे से एक सिसियाँद-ÃÖß ^šŸÖß ¸ÆŸÖß Æ |”[145]

इस प्रकार उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में इन विविध प्रकार के बिम्बों की मनोहारिणी योजना से इनकी भाषा समृद्ध हुई है। ये बिम्ब रूप, रस, गंध, श्रवण, घ्राण की सभी संवेदनाओं से जुड़े हैं। साथ ही ये बिम्ब सूक्ष्माभिव्यक्तियों, सौंदर्यानुभवों एवं अर्थ संस्कारों के विविध स्तरों को प्रस्तुत करते हैं।

5.2.4 शैलीगत विविधता :

अंग्रेज़ी शब्द (Style) स्टाइल के अनुवाद के रूप में और विशिष्ट पद रचना के लिए प्रयुक्त '¸ß×ŸÖ' शब्द के मिलते-जुलते अर्थ में हिन्दी में '¿Ö»Öß' शब्द का प्रचलन हुआ है। बर्नाडशॉ की दृष्टि में "प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति ही शैली का अथ और इति है।"[146] स्वीफ्ट के अनुसार- "Style may be defined proper words in proper places."[147] चेस्टर फील्ड ने शैली को 'विचारों का सुन्दर वेश' कहा है तो इमोन ने विचारों को थमाने वाला चौखटा। गो£Ö का कहना है - "An authors style is a faithful copy of his mind"[148] बुफोन का ´ÖŸÖ Æ - "style is man's own, it is a part of his nature"[149] सबके निचोड़ स्वरूप यह कहा जा सकता है कि "शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनात हैं।"[150] उपन्यास में शैली का विशेष संबंध कथा-ŸÖŸ¾Ö †Ö¸ ¯ÖÖ¡Ö-तत्व संबंधी रहता है। शैली द्वारा ही लेखक वास्तविकता को रूपायित करता है। उसी से लेखक के दृष्टिकोण का पता चलता है, अत: शैली उपन्यास शिल्प का मूल तत्व है।

शैली एक ओर लेखक के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती है, दूसरी ओर उन पात्रों के "ÖÖ×¸×¡ाक गुणावगुणों एवं स्वभावगत विशेषताओं का संकेत करती है जिनके वक्तव्यों और विचारों को उपन्यासकार अपने विवरण-विश्लेषण का विषय बनाता है। शैली द्वारा ही लेखक स्थिति के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करता है और उसी के द्वारा वह स्थिति के उपयुक्त वातावरण तथा उसकी पृष्ठभूमि से उद्भूत कार्य के बीच होने वाले तनाव को प्रस्तुत

करता है। शैली द्वारा ही बौद्धिक की जगह भावात्मक तर्क प्रस्तुत किया जाता है जिसे पढ़ते समय पाठक को काव्य का भावात्मक आनन्द प्राप्त होता है; वह शब्दार्थ से अभिव्यक्त वातावरण या दृश्य की ओर ध्यान न देकर कल्पना-प्रसूत वातावरण में विचरण करने लगता है; वर्णन का अभिधेयार्थ गौण हो जाता है; उसका कलात्मक बिम्ब ही पाठक को अभिभूत कर लेता है। अत: उपन्यास तभी सफल होगा जब उसको प्रस्तुत करने की शैली आधुनिकतम होगी। उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। ये सारे शैलीगत प्रयोग इतने घुलमिल गये हैं कि इस प्रवाही गति में उसे संश्लिष्ट शिल्प कहा जा सकता है। यानी सारी विधियों का उपयुक्त एवं सधा प्रयोग, जिसमें सब एक दूसरे के पूरक हों। और इस प्रक्रिया में लेखिका इतनी सिद्धहस्त हैं कि जब जो प्रयोग चाहे, कर देती हैं। कुछ प्रमुख शैलियाँ इस प्रकार Æ -

5.2.4.1 आत्मकथात्मक शैली :

क³Öß-कभी उपन्यासकार किसी उपन्यास के प्रमुख पात्र बनकर अथवा किसी पात्र का स्थान ग्रहण करके प्रथम परुष की ओर से कथा का वर्णन करता है, उस शैली को आत्मकथात्मक शैली कहा जाता है। व्यक्ति के अन्तर्जगत का लेखा-जोखा इस शैली द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। आत्मकथा में मनुष्य अपनी जीवनी आप कहता है। उपन्यास का कोई पात्र भी लेखक का स्थान ग्रहण कर लेता है और वह पाठकों को प्रत्यक्ष रूप से संबोधित करता हुआ उससे सीधे संपर्क स्थापित करता है। वैसे तो उपन्यासकार पूरे उपन्यास में अपने अनुभव किसी न किसी प्रकार से प्रस्तुत तो करता है। इस शैली का प्रयोग उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है।

'†ŸÖ¾Ö¿Öß' उपन्यास में वाना का जीवन और व्यक्तित्व आत्मकथात्मक शैली से प्रखर हो ˆŠÖ Æ - "मैं कब से एकाधिक स्तरों पर जीती आई हूँ, पत्नी, माँ-जो मेरी शिक्षा रही; पर अन्दर की स्त्री, जो हमेशा इस शान्त मुखाकृति के भीतर रेस्टलेस, खोज में व्यस्त, इधर-उधर भटकती रही, जहाँ भी जो कुछ मिला, उसी को कंगाल की तरह सँजोती रही, अब यह बेईमानी और नहीं चल पाएगी, मैं कब तक अपने को ठगती रहूँगी, कब तक अपने स्व को अपूर्ण रक्खूँगी।"[151]

‘शेष यात्रा’ की अनु भी अपने डॉक्टर बनने की कथा इस प्रकार सुनाती है - “´Ö–ो उन दिनों बहुत गुस्सा आता था, आप पर, अपने पर, दोस्तों पर। यह बात मु–ो हर वक्त कचोटती थी कि मैं एक व्यक्ति की हैसियत से कुछ भी नहीं रही ... बार-बार लगता कि मैंने वह साल क्यों खो दिए, बिरियानी और कबाब बनाने में? कुछ किया क्यों नहीं, अपने को कुछ आगे क्यों नहीं बनाया। उसी मानसिक तनाव में मैंने सोचा कि अच्छा, अभी तो सारी उमर पड़ी ही हुई है, चलो कुछ बनने की कोशिश तो कर लो।... इत्तफाक से मेडिकल कॉलेज में एडमिशन मिल गया; माँ की भी इच्छा थी कि मैं डॉक्टर बनती; एंड हियर आई ऐम - नोबेल प्राइज़ विजेता की ×¸ÃÖ“Ö ™ß´Ö ´Ö ...”[152]

5.2.4.2 विश्लेषणात्मक शैली :

विश्लेषणात्मक शैली तर्क प्रधान होती है। इस शैली के अंतर्गत सूक्ष्म अंतर्जगत की अभिव्यक्ति स्वाभाविकता से हो जाती है। यह शैली हिंदी के औपन्यासिक संरचना का मार्मिक मोड़ है। इस शैली के तहत उपन्यासकार विषयवस्तु, पात्र, विचार या वातावरण को नए ढंग से प्रस्तुत करता है। विषयवस्तु की दृष्टि से उपन्यासकार जीवन के विस्तृत परिवेश को त्यागकर उसके किसी एक पहलू पर विशेषता पूर्वक प्रकाश डालता है।

उषा प्रियंवदा ने इस शैली का आवश्यकतानुसार प्रयोग कियÖ Æ, ‘भया कबीर उदास’ ´Ö उषा प्रियंवदा ने कैंसर बीमारी की भयंकरता का वर्णन इसी शैली में अंकित किया है। जैसे- “युद्ध-कैंसर से महायुद्ध। वह अक्सर सोचती है कि इस रोग के सन्दर्भ में युद्ध का रूपक क्यों प्रयोग किया जाता है? शायद इसलिए कि कुछ कोषाणु अपने ही शरीर में आतंकवादियों की तरह आततायी बन जाते हैं और स्वयं उसी को ही नष्ट करने लगते हैं। तभी उनसे संघर्ष में ŸÖ¸Æ-तरह के अस्त्र प्रयोग किए जाते हैं, रुग्ण अंग को काटकर निकाल दो; ज़हर से शरीर को भर दो जिससे कैंसर अणु नष्ट हो जाएँ, फिर भयंकर एक्स-रे किरणों से उस भाग को ही दग्ध कर दो। पर इस महायुद्ध की प्रक्रिया में तुम कैसे टूट जाती हो, बिखर जाती हो, आहत और क्षत-विक्षत ! कभी तो सम–ा में नहीं आता कि रोग अधिक दारुण है या उसका उपचार।”[153]

5.2.4.3 वर्णनात्मक शैली :

वर्णनात्मक शैली वह है जिसके द्वारा उपन्यास के विस्तृत क्षेत्र का चित्रण व्याख्या सहित प्रस्तुत किया जाता है। इस शैली को अपनाने वाले उपन्यासकार के पास इतिहासकार की सुविधाएँ विद्यमान रहती हैं। वह जीवन के किसी भी क्षेत्र को अपनी कथा का माध्यम बना सकता है। घटना बाहुल्य, पात्र आधिक्य, लम्बे संवाद तथा भाषण योजना जैसी अनेक समस्याएँ इस शैली के अंतर्गत सरल बन जाती हैं।

उषा प्रियंवदा ने 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में सुषमा की मानसिक उद्विग्नता का चित्रण वर्णनात्मक शैली में किया है - "घड़ी की टिकटिक सारे कमरे में गूँज रही थी। सुषमा बार-²ÖÖ¸ आँखे खोल घड़ी की सुइयों को देख लेती। उसका शरीर ऐसा निढाल था जैसे उसकी सारी शक्ति रिस गई हो। हर बार समय देखती और उसकी विवश पलकें छलछलाई आँखों पर मुँद आतीं। वह इतनी उद्विग्न क्यों थी, वह स्वयं नहीं जान पा रही थी। उसे रह-रहकर लगता कि जैसे किसी भीषण घटना का सूत्रपात हो गया है। एक अ-ात भय उसके ह्रदय में समाता जा ¸ÆÖ £ÖÖ |"[154]

'†ŸÖ¾Ö¿Öß' में विदेश जाने के पश्चात् वाना में आये परिवर्तन का वर्णनात्मक शैली में किया गया चित्रण इस प्रकार है - "अमरीकन मालकिन ने उसे वाना ही बना दिया। लहँगे फरिये से फराक से साड़ी और अबकी स्कर्ट-ब्लाउज़ व क्रिस्तीन की दी हुई, छोटी, कसी काले चमड़े की स्कर्ट और सफ़ेद ब्लाउज़, कालर पर हल्की-ÃÖß "Ö®Ö™। बाल एकदम छोटे, सलीकेदार, सँवारी भौंहें, लिपस्टिक - जैसे किसी ने पकी जामुन को कुचल दिया हो। कितने दिन अटपटा लगा था, आगे न पल्ला, न दुपट्टा, जाँघों से लेकर नीचे तक खुली टाँगें, फिर आदत पड़ गई - अच्छा लगने लगा।"[155]

5.2.4.4 ¯Ö¾Ö¤ßÛû¯ŸÖ ¿Ö»Öß :

फ्लैशबैक टेकनिक को हिन्दी में पूर्वदीप्ति शैली कहते हैं। इस शैली में पात्रों की वे प्रतिक्रियाएँ अभिव्यक्त की जाती हैं जिनका संबंध पहले घट चुकी घटना से होता है। इसमें भूतकाल, वर्तमानकाल और फिर भूतकाल इस ढंग से कथावस्तु विकसित होती है। इस शैली के

द्वारा कथानक को विशिष्ट बल और गठन प्राप्त होते हैं । स्वातंत्र्योत्तर काल में यह शैली सर्वाधिक प्रचलित दिखाई देती है ।

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में कई जगह टुकड़े-टुकड़े में फ्लैशबैक के माध्यम से वर्तमान के साथ अतीत की बुनावट बहुत रोचक भी है और तर्कसंगŸ‚ ³‚ß | 'रुकोगी नहीं राधिका' ´‚ कई सारे फ्लैशबैक आये हैं । अमेरिका से लौटती हुई राधिका के एयरपोर्ट पहुँचने से उपन्यास शुरू होता है । तो फिर इसके पहले की सारी घटनाएँ फ्लैशबैक में ही आती हैं । यानी पिता की शादी, उसके पहले दोनों का प्रीतिपूर्वक साथ रहना, डेनियल के साथ अमेरिका जाना, वहाँ रहना, घर की यादें, उस दौरान सोचना-अनुभव करना आदि सबकुछ फ्लैशबैक में ही आना था †‚र आया है । परंतु वर्तमान से अतीत में जाने की यह आवाजाही इतनी सहज व सरल है कि ख्याल ही नहीं आता - कब फ्लैशबैक आया और कब गया । यह बार-बार होता भी है । ये फ्लैशबैक इतने सघन और संक्षिप्त हैं कि राधिका की यादों में आते हुए उसकी चेतना के प्रवाह में चलने की प्रक्रिया भी बन जाती है । उषा जी ने अपने सभी उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली एवं चेतना प्रवाह का सफलतापूर्वक निर्वाह किया ह |

5.2.4.5 ¯‚¡‚ ¿‚»‚ß :

हिन्दी साहित्य में पत्र शैली की शुरूआत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से हुई । उनके पश्चात् श्रीधर पाठक, पं.बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त आदि के साहित्यिक तथा आत्मकथात्मक रचनाओं में ¯‚¡‚-शैली के प्रयोग हुए हैं । दरअसल यह शैली पाश्चात्य उपन्यासकारों की थी । हिन्दी में इस शैली के उपन्यास बहुत कम दिखाई पड़ते हैं । पर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग हुआ है । इस शैली में कथावस्तु का विकास पत्रों के माध्यम से होता है । उषा प्रियंवदा ने भी कुछ उपन्यासों मे इस शैली का प्रयोग किया है ।

'शेष यात्रा' उपन्यास में अनु विदेश में ब्याही जाने के पश्चात् अपनी संपन्नता के बारे में मामी को लंबी-लंबी चिठ्ठियाँ लिखती है - "चीज़ें कितनी सारी चीज़ें हैं, मामी, आपको क्या लिखूँ । हर चीज़ जुटा दी है ।... कैसी अजीब-†•‚ß²‚ "‚ß•‚ Æ, '‚¸-गृहस्थी चलाना बस खेल लगता है ..."[156] '†Ÿ‚¾‚¿‚ß' में राहुल को पत्र में क्या लिखा जाता है यह सम-ाते हुए रत्ना कहती है - "चिठ्ठी में ये लिखते हैं, परमप्रिय प्राणेश्वरी, मैं जल्दी ही कैद पूरी करके घर पहुँचने

वाला हूँ, तुम किसी चीज़ की चिन्ता मत करना। लिखानेवाला परसुराम और लिखनेवाला श्री मुन्ननप्रसाद, –ÖÖÃÖß ¾ÖÖ»ÖÖ |"[157] इस पत्र से ही रतना के बाप का चरित्र स्पष्ट हो जाता है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में मीनाक्षी सुषमा को एक लम्बा पत्र लिखकर अपने मंगेतर के बारे में उसे बताती है। इस पत्र से उसकी मन:स्थिति उजागर हो जाती है। सुषमा की मौसी भी एक पत्र लिखकर उसे सूचित करती है कि वह नील के हाथों साड़ियाँ भेज रही है। वहीं से नील और सुषमा का संबंध जुड़ जाता है।

5.2.4.6 स्वप्न शैली :

उपन्यासकार कई बार स्वप्न द्वारा पात्र के अचेतन को पकड़ने का प्रयास करता है तो कई बार दिवा स्वप्न द्वारा उसकी आकांक्षा को प्रगट करता है। '†ŸÖ¾Ö¿Öß' में उषा प्रियंवदा ने वाना के अचेतन को प्रस्तुत करने के लिए स्वप्न शैली का प्रयोग किया है। वाना शिवेश की पत्नी है और दो बच्चों की माँ, किंतु वह राहुल से प्रेम करती है। यथार्थ में जिन संबंधों की स्थापना संभव नहीं, उन्हें वह स्वप्नों में स्थापित होते देखती है - "वाना सपना देख रही है। वह पुराने बनारस वाले घर में है। वह तिमंजले की छत पर कपड़े बटोरने गई है। ...सारे कपड़े बाँहों में भरकर वह मुड़ी है, वहाँ कोई आड़ में खड़ा है; उसने बाँह पकड़ कर वाना को बरसाती की छत के नीचे खींच लिया है। ...अब वह वाना को प्यार कर रहा है ... वाना उसका चेहरा नहीं देख पा रही है; पर उसका लम्बा, सुगठित युवा शरीर और उसकी सुगंध वह पहचान रही है। वह प्रत्युत्तर में उससे लिपटी हुई है। ... वह अपने को रोक नहीं पा रही है ..."[158] वाना अपनी कुंठाओं को स्वप्न में पूर्ण होते देखती है। वाना दिवा स्वप्न भी देखती है जिसमें वह एक राजकुमारी है और राहुल उसका आशिक।

5.2.4.7 डायरी शैली :

डायरी व्यक्ति का निजी दस्तावेज है। वह उसमें उन्हीं बातों को लिखता है जिन्हें वह किसी के सामने सामाजिक बंधनों के कारण प्रगट नहीं कर पाता। अत्यंत गोपनीय होने से इससे पात्र के अचेतन को पकड़ने में बड़ी सहायता मिलती है। डायरी चाहे एक पात्र की हो या

अनेक, लिखी जानी चाहिए प्रथम पुरुष शैली में। इससे अन्तर्मन को सम-ने में बड़ी मदद मिलती है। इस शैली को स्वाधीनोत्तर उपन्यासकारों ने युग यथार्थ के संप्रेषण के सिलÃÖ»Ö ´Ö अपनाया है। इसका नतीजा यह निकलता है कि यहाँ व्यक्ति मन के अंतरंग के रेशे-रेशे खुल •ÖÖŸÖ Æï।

उषा प्रियंवदा ने 'भया कबीर उदास' में डायरी शैली का सफल प्रयोग किया है। उपन्यास में कैंसर डायरी, कैंसर डायरी-II, कैंसरी डायरी -III, कैंसर डायरी-IV, कैंसर डायरी-V, कैंसर डायरी परिशिष्ट इन शीर्षकों के अंतर्गत डायरी शैली का प्रयोग किया गया है। 'क¾ÖÃÖ¸' की भयंकरता और मरीज़ का इस बीमारी के साथ संघर्ष दिखाने के लिए ही डायरी का सहारा लिया गया है। ताकि पाठक इस बीमारी की पीड़ा को गहरे में अनुभव करे। लिली के जीवन में कैंसर के प्रवेश से ही डायरी शैली का प्रारंभ हाŸÖÖ Æî - "मैंने जब पहली बार दबा-दबाकर देखा, सिर्फ़ सख़्त, कड़ी पीड़ाहीन गाँठे ..."[159] और तब तक इस शैली का निर्वाह होता है, जब तक सर्जरी, कीमोथेरपी, रेडिएशन आदि के द्वारा इस बीमारी के विषाणु को शरीर से बाहर नहीं निकाला जाता। इस डायरी के कारण ही पाठक लिली की पीड़ा से युक्त त्रासद जीवन से रूबरू होता है।

इन शैलियों के अलावा उषा प्रियंवदा ने चित्रात्मक, व्यंग्यात्मक, काव्यात्मक, संवादात्मक आदि शैलियों का प्रयोग भी किया है जिसकी चर्चा हमने भाषा के अंतर्गत की है। इस प्रकार की विभिन्न शैलियों के आवश्यकतानुसार प्रयोग के कारण उनकी रचनाएँ अधिक सार्थक और सुंदर बनी हैं। अत: शैलियों के प्रयोग में उषा प्रियंवदा को पूर्ण सफलता मिली है।

5.2.5 पात्रों का शील-निरूपण :

लेखकीय वर्णन और पात्रों के कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण की पुरानी पद्धति के अतिरिक्त नये कथ¾Ö-साहित्य में चरित्र-चित्रण शिल्प का नवीन विकास हुआ है। अन्तरंग चरित्र विकास में नये मनोवै-ानिक प्रयोग हो रहे हैं और बाह्योपचाराधारित छोटी-मोटी बातों को भी "Ö×¸¡Ö-विकास में सहायक मानकर उनका सूक्ष्म आकलन होता है। उषा प्रियंवदा ने चरित्र-चित्रण की लगभग सभी पद्धतियों का अपने उपन्यासों में प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत Æï -

5.2.5.1 लेखिका द्वारा पात्र-चित्रण :

क) “ºÖ²Ößß ²Ö†Ö हँसमुख थी, ज़िन्दादिल-ÆÖÃÖ-परिहास प्रवीण। वह गोरी थीं, और उनके गोल-मटोल चेहरे पर सोने के लम्बे-लम्बे बुन्दे और नाक में बड़ी-सी हीरों की लौंग बहुत सजती थी। उन्हें पान खाने का शौक था और उनके आने पर चाँदी के पानदान की सफ़ाई और पॉलिश होती थी। कत्था, चूना, कतरी सुपारी और ज़र्दा मँगाया जाता था।”[160]

ख) “प्रणव एक साधारण-सा व्यक्ति है। बाज़ार के चेहरों में एक चेहरा, कुछ उसमें अलग नहीं है। साधारण कद-काठी, साधारण रूप-रंग, बस विलायती डॉक्टरी की डिगरी अलग है।”[161]

ग) “अंजी नाटे कद की स्त्री है। उसका रंग देखकर लगता है कि पीढ़ी दर पीढ़ी धूप में पकता आया है, फिर भी साँवलेपन के नीचे सुनहरी-सी आभा है, गेहूँ की पकी बालियों जैसे। ²Ö›ß-बड़ी पानीदार भावुक आँखें - नोकदार पलकें।”[162]

5.2.5.2 ¯ÖÖ¡Ö «ÖÓ¸Ö †ÖŸ´Ö-चित्रण :

क) ‘†ÝÖ¾Ö¿Öß’ की वाना शीशे के आगे खड़ी होकर अपने ही सौंदर्य पर मुग्ध हो जाती है †Ö¸ †ÖŸ´Ö-चित्रण करती है - “मैं सचमुच सुन्दर हूँ, वह अपने से कहती है, पाँचों प्रकार की सुन्दरता - सुन्दर काया, न नाटी न बहुत लम्बी, सुन्दर दाँत और अस्थियाँ, सुन्दर बाल, और पाँचवीं; सन्तान होने पर भी वयक्षय नहीं; एक तन्वंगी देह।”[163]

ख) ‘पचपन खम्भे लाल दीवारें’ की सुषमा स्वयं को नील की दृष्टि से देख उठती है - “ख»ÖÝÖÖ Æआ ऐसा रंग, जिस पर उसकी पतली स्वाभाविक वक्र भौंहे और बड़ी-बड़ी दीप्त आँखें बहुत खिलती थीं। लंबी नाक और सुघड़ पतले होंठ, आधे कान बालों से ढँके थे और उनकी लबों में मोतियों के कर्णफूल, बिना बाँहों का ब्लाउज़ और बिलकुल उसी रंग की फिरोज़ी साड़ी।”[164]

ग) ‘शेष यात्रा’ की अनु प्रणव से तलाक़ हो जाने के बाद इस प्रकार आत्म-चित्रण करती Æ - “मैं मन की अच्छी हूँ, चेहरा? बुरा नहीं, मैं खाना अच्छा पकाती हूँ... मैं हाईस्कूल और इंटर

´Ö ±ÖÃ™ †Ö‡ £Öß, ´Ö–ने सीना-पिरोना आता है, मु–नमें भावनाओं की गहराई और एकाग्रता है, मैं †“”ß ×´Ö¡Ö Æ |”[165]

5.2.5.3 एक पात्र द्वारा अन्य पात्र का चरित्र - ×चत्रण :

क) ‘भया कबीर उदास’ की लिली वनमाली का वर्णन इस प्रकार करती है -“आँख, कान, होंठ सभी दुरुस्त हैं, अनुपात में। नहीं, बदसूरत तो नहीं कह सकते, व्यक्तित्व है और इस समय आतिथेय होने और महँगे सूट की ठसक। क़द भी ठीक-ठीक है, और सूट के नीचे एक सुगठित-सुडौल शरीर का आभास है, कुल मिलाकर ठीक-ठाक।”[166]

ख) ‘†ŸÖ¾Ö¿Öß’ में वाना के बदले हुए रूप को देखकर राहुल को –टका लगता है। उसकी दृष्टि में परिवर्तित वाना का नया रूप इस प्रकार है - “उसकी स्कर्ट उँची है - ²Öß“Ö •ÖÖ‘ÖÖ तक। कसा हुआ सफ़ेद स्वेटर, सफ़ेद प्लास्टिक के बुन्दे, पलकों पर रंग, होठों, गालों सभी पर »ÖÖ»ी। सबसे ज़्यादा बदला है वाना का चेहरा; वह बनारस वाली भोली लड़की कहाँ गई राहुल सोचता है। वाना का चेहरा कसाकसा है, भावहीन अपने में संपुटित, खोई-खोई आँखें, बनावटी मुस्कान, जिसमें होठ हिलकर रह जाते हैं, मुद्रा में कोई अंतर नहीं आता।”[167]

ग) ‘रुकोगी नहीं राधिका’ में राधिका के संबंध में अक्षय कहता है - “राधिका बहुत पुनीत-सी दिखती है, अनछुई-सी, कौमार्य की लज्जा से भरपूर; माथे से पीछे सँवारे गए बाल, चिकना उघड़ा मस्तक, धनुषाकार पर हल्की-हल्की भौंहें, और आँखे, जो बहुत बड़ी होते हुए भी असाधारण रूप से दीप्तिवान लगती हैं, छोटी-सी खड़ी नाक, अपेक्षाकृत लंबा ´ÖÆ |”[168]

5.2.5.4 सूक्ष्म भाव-भंगिमाओं द्वारा पात्र-चित्रण :

क) “सारिका अब खुलकर रो रही है, वाना के दिल को कोई नाखूनों से छील रहा है। वह उठकर उसके पास खड़ी हो जाती है और धीरे-धीरे उसके बाल थपथपाने लगती है। वह खुद दुखी हो आई है, उदास आँखों से वह खिड़की के बाहर देखती है जहाँ घना अँधेरा है जिसमें बर्फ़ के गाले भी छुप गए हैं।”[169]

ख) "धूप में खड़े-खड़े वाना के फीके, पीले चेहरे पर थोड़ी अरुणाई आ गई है, उसकी लम्बी नुकीली पलकें नीचे -ुकी हुई हैं, मुस्कराते हुए होठों के कोनों से चेहरा खिल उठा है। वाना इस समय उसे बहुत आकर्षक लग रही है।"[170]

ग) "-Öß¸-धीरे चलकर वह (लिली) पलंग पर लेटे हुए वनमाली के पास आकर बैठ जाती है। कुछ देर दोनों एक-दूसरे को देखते हैं। वनमाली का चेहरा कसा-कसा है, आँखे बेहद उदास। पास की मेज़ पर ऐशट्रे में रखी हुई सिगरेट उठाकर वह एक गहरा कश लेता Æ।"[171]

5.2.5.5 ÃÖ½ÖÖ¤Ö «Ö¸Ö ¯ÖÖ¡Ö-चित्रण :

क) लिली की मम्मी के इस कथन से रैनी के स्वभाव का पता चलता है-"बड़ी उमर की £Öß। ²ÖÆÖ "ÖÃÖ, ÆÖशियार। पैसेवाली। दो बच्चों की माँ। ... बहुत खिटखिट करती थी। बहुत शक्की स्वभाव की थी।"[172]

ख) '†ÖÖ¾Ö¿Öß' में राहुल की सुंदरता का वर्णन करते हुए रत्ना कहती है - "तुम तो जनम के खूबसूरत हो, इत्ते लम्बे, इत्ते सुन्दर। मैं तो ठीकरी हूँ ठीकरी, तुम्हारे सामने, तुम तो हीरामणि हो।"[173]

ग) 'शेषयात्रा' में प्रणव अनु के मानसिक अत्याचारों का ब्यौरा देते हुए कहता है - "´Ö¸ß ²Öß¾Öß अनु को पागलपन के दौरे पड़ते हैं। उसमें यह अपना सारा आपा और सुधबुध खो ²ÖŠÖß Æ। ´Ö-ा पर शारीरिक हमले करती है, नोचती-खसोटती है, अभद्र गालियाँ देकर, मुँह पर थूककर मु-ो ज़लील क¸Öß Æ - इसने सारा घर तहस-नहस कर डाला है।"[174]

5.2.5.6 रेखाचित्र द्वारा पात्र चित्रण :

क) "विद्या इस समय मूँगा सिल्क की साड़ी पर पश्मीने का शाल ओढ़े हुए थी। लंबा, ¤²Ö»ÖÖ ¿Ö¸ß¸, ^"ÖÖ ´ÖÖ£ÖÖ, ¯ÖÖ»Ö चेहरे पर खिंची-खिंची आँखें, खड़ी नाक और बेहद पतले होंठ। बीच की माँग निकालकर दोनों ओर से सादे तरीके से बनाए गए बाल। मुद्रा पर प्राध्यापिका होने की गरिमा, और पहनने-ओढ़ने में आभिजात्य।"[175]

खÖ) "अब वह भी तैयार है - बूट, लम्बे मोज़े, दस्ताने, काला कोट, सिर पर स्कार्फ़;... स्कार्फ़ और कालर के बीच उसका अपना चेहरा बिलकुल बच्चों की तरह दीखता है। ढके हुए माथे के नीचे पŸÖ»Ößü-पतली प्राकृतिक धनुषाकार भौंहें, चमकीली आँखें, सीधी सतर सुडौल नाक, †Ö¸ ¯ÖŸÖ»Ö-¯ÖŸÖ»Ö ÆÖšü-सब एक क़तार से निकलते हैं।"[176]

गÖ) "कारिन कढ़ा हुआ कश्मीरी फिरन पहने थी। बहुत छोटे बाल, जिससे उसके सिर का सुंदर आकार दीखता था, छोटा उज्ज्वल माथा, हल्की भौंहे, ग्रे रंग की आँखें, खड़ी नाक, सुंदर, हल्के गुलाबी होंठ।"[177]

इस प्रकार उषा प्रियंवदा का शिल्प परंपरागत शिल्प नहीं है। उन्होंने शिल्प के स्तर पर पुराने प्रतिमानों को नकारते हुए कुछ नए प्रयोग किए हैं। क्योंकि पारम्परिक शिल्प-विधान आधुनिक भाव-चेतना के अनुकूल न था। इन्होंने कथ्य को विशेष महत्व दिया है जिससे इनका कथा-साहित्य रचनात्मक स्तर पर जीवन से जुड़ गया है। इनके कथा-साहित्य में बदलती मन:स्थितियों, संघर्षों एवं समय के परिवर्तन को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने के लिए नवीन प्रयोग हुए हैं। इन्होंने बिम्ब-विधान के द्वारा गहरी अनुभूतियों को अधिक अर्थ-संदर्भ प्रदान किया है। प्रतीकों के प्रयोग एवं शब्द-चित्र द्वारा दो विभिन्न अनुभूतियों अथवा विचारों को समन्वित रूप में प्रस्तुत किया है। विविध संबंधों को कलात्मक स्तर पर निभाने के लिए उन्होंने अलग-अलग शैलियों का प्रयोग किया है। विभिन्न शैलियों के आवश्यकतानुसार प्रयोग के कारण उनकी रचनाएँ अधिक सार्थक और सुंदर बनी हैं। इन्होंने चरित्र-चित्रण की सभी पद्धतियों का सफल निर्वाह किया है। इनकी भाषा भी परम्परागत भाषा-रूप का निर्वाह न करते हुए नवीनता से युक्त है। जब विषय आधुनिक है, तो भाषा को आधुनिक होना ही थÖ | कुलमिलाकर उषा प्रियंवदा का कथा साहित्य कथ्य और शिल्प दोनों निकषों पर खरा और पूरा ˆŸÖ¸üŸÖÖ Æî |

:: ÃÖ¤ü³ÖÔ ÃÖæ“Öß ::

१) कैलाश वाजपेयी : आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प,पृ.-19

2) ›üÖ.´Ö¬Öã ÃÖ¬Öã : साठोत्तर महिला कथाकार,पृ.-152

३) हिंदी साहित्य कोश,पृ.-837

४) सुरेंद्र उपाध्याय : कहानी: प्रवृत्ति और विश्लेषण,पृ.-310

५) उपेन्द्रनाथ अश्क : लहर, १९६१ (सं.) देवीशंकर अवस्थी - नई कहानी : संदर्भ और प्रकृ×ŸÖ,
¯Ö.-51

६) डॉ.नामवर सिंह : कहानी : नई कहानी, पृ.-14

७) डॉ.धनंजय वर्मा : आज की हिन्दी कहानी, पृ.-12

८ डॉ.राजेन्द्र यादव : कहानी : स्वरूप और संवदेना, पृ.-191

९) मोहन राकेश : वक़लम खुद, नई कहानियाँ, जुलाई १९६३, पृ.-64

१०) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-153

11) ¾ÖÆß, ¯Ö.-108

१२) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-79

१३) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-71

१४) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-110

15) ¾ÖÆß, ¯Ö.-103

१६) मोहन राकेश : वृत्ति १९५९ / सं.देवीशंकर अवस्थी - नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति,
¯Ö.-97

१७) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-39

18) ˆÂÖा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-107

19) ¾ÖÆß, ¯Ö.-121

20) ¾ÖÆß, ¯Ö.-126

21) ¾ÖÆß, ¯Ö.-127

22) ¾ÖÆß, ¯Ö.-114

23) ¾ÖÆß, ¯Ö.-118

२४) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-51

२५) उषा प्रियंवदा - एक कोई दूसरा, ¯Ö.-72

26) ¾ÖÆß, ¯Ö.-72

२७) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-36

२८) उषा प्रियंवदा : फिर बसंत आया, पृ.-57

२९) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-10

३०) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-22

३१) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-49

३२) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-44

३३) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-54

३४) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-120

35) ¾ÖÆß, ¯Ö.-20

३६) हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, ¯Ö.-558

३७) कैलाश वाजपेयी : आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प, पृ.-79

३८) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-44

३९) उषा प्रियवंदा : एक कोई दूसरा, पृ.-113

40) ¾ÖÆß, ¯Ö.-76

41) ¾ÖÆß, ¯Ö.-115

४२) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-80

४३) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-40

४४) उषा प्रियंवदा : फिर बसंत आया, पृ.-56

४५) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, ¯Ö.-45

४६) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-86

47) ¾ÖÆß, ¯Ö.-27

४८) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-109

४९) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-44

50) ¾ÖÆß, ¯Ö.-41

51) ^ÂÖÖ ×¯Öयंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-41

52) ¾ÖÆß, ¯Ö.-12

५३) डॉ.परमानन्द श्रीवास्तव : हिंदी कहानी की रचना प्रक्रिया, पृ.-283

५४) डॉ.राजेन्द्र यादव : एक दुनिया समानान्तर, पृ.-66

५५) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, - ¯Ö.-61

56) ¾ÖÆß, ¯Ö.-86

५७) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-100

58) ¾ÖÆß, ¯Ö.-95

५९) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-45

60) ¾ÖÆß, ¯Ö.-45

61) ¾ÖÆß, ¯Ö.-113

62) ¾ÖÆß, ¯Ö.-113

६३) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, - ¯Ö.-107

64) †-नेय : आत्मनेपद, पृ.-256

६५) डॉ.नामवर सिंह : कहानी: नई कहानी, पृ.-31

६६) सुरेन्द्र : नई कहानी: प्रकृति और पाठ, पृ.-76

६७) नरेश मेहता : तथापि: (निवेदन), दिसम्बर - 1961, ¯Ö.-1

६८) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-71

६९) डॉ.नामवर सिंह : कहानी : नई कहानी, पृ.-32

७०) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-47

७१) डॉ.मधुसंधु : कहानीकार निर्मल वर्मा, पृ.-128

७२) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-71,72

७३) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-70

७४) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-47

७५) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, ¯Ö.-34

७६) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-18

७७) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-72

७८) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-24

७९) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-108

80) ¾ÖÆß, ¯Ö.-92

८१) उषा प्रियंवदा : फिर बसंत आया, पृ.-12

८२) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-101
८३) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-112
८४) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-39
85) ¾ÖÆß, ¯Ö.-26
८६) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-51
८७) उषा प्रियंवदा : फिर बसंत आया, पृ.-105
88) ¾ÖÆß, ¯Ö.-113, 114
८९) उषा प्रियंवदा : एक कोई दूसरा, पृ.-40
९०) उषा प्रियंवदा : कितना बड़ा –ÖŠ, ¯Ö.-45
९१) उषा प्रियंवदा : ज़िंदगी और गुलाब के फूल, पृ.-40
९२) उषा प्रियंवदा : फिर बसंत आया, पृ.-84
९३) उषा प्रियंवदा : फिर बसंत आया, पृ.-58
९४) उषा प्रियंवदा : मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ.-1
95) ›Ö.»क्ष्मणदत्त गौतम : आधुनिक हिंदी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना,पृ.-435,445
96) ¸»±ü ±üÖŒÃÖ - अनु.नरोत्तमनागर : उपन्यास और लोकजीवन, पृ.-28
९७) हजारी प्रसाद द्विवेदी : विचार और वितर्क -(हिंदी उपन्यास में यथार्थवाद का आतंक लेख ÃÖ), ¯Ö.-105
९८) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-116
९९) उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ.-62
१००) उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ.-39
१०१) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-43
१०२) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-15
१०३) उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ.-103
१०४) उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ.-61
१०५) उषा प्रियंवदा : पचपन ख´³Ö »ÖÖ»Ö ¤ß¾ÖÖ¸ë, ¯Ö.-99
१०६) उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ.-122
१०७) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-60

१०८) उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ.-92

१०९) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-26,27

११०) उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, - ¯Öé.-79

111) ¾ÖÆß, ¯Öé.-13

११२) उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ.-12

११३) उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ.-35

११४) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-143

115) ¾ÖÆß, ¯Öé.-29

११६) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-22

११७) उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ.-41

११८) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-26

119) ¾ÖÆß, ¯Öé.-9

१२०) उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवार, ¯Öé.-74

१२१) हिंदी साहित्य कोश, भाग - 1, ¯Öé.-515

१२२) ममता शुक्ल : मन्नू भंडारी के कथा साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ.-303

१२३) डॉ.सुशीला शर्मा : हिंदी उपन्यासों में प्रतीकात्मक शिल्प

124) ˆÂÖÖ प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ.-114

125) ¾ÖÆß, ¯Öé.-102

१२६) उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ.-106

१२७) उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ.-42

128) ¾ÖÆß, ¯Öé.-57

129) ¾ÖÆß, ¯Öé.-57

१३०) डॉ.परमानन्द श्रीवास्तव : हिंदी कहानी की रचना प्रक्रिया, पृ.-297

१३१) उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ.-155

१३२) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-53

१३३) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-184

134) ¾ÖÆß, ¯Öé.-43

135) ^ÂÖÖ ×प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ.-18
१३६) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-70
१३७) उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ.-58
१३८) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-28
१३९) उषा प्रियंवदा : †ŸÖ¾Ö¿ÖÖß, ¯Ö.-219
१४०) उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ.-7
१४१) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-32
१४२) उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ.-17
१४३) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-15
144) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-106
१४५) उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ.-111, 112
१४६) हिंदी साहित्य कोश, भाग - 1, ¯Ö.-773
147) Edward : The New Dictionary of thaughts, page 617
148) ¾ÖÆß, ¯Ö.617
149) ¾ÖÆß, ¯Ö.617
1५०) हिंदी साहित्य कोश, भाग - 1, ¯Ö.-773
१५१) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-237
१५२) उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ.-107
१५३) उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ.-114
१५४) उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवÖ¸, ¯Ö.-89
१५५) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-16
१५६) उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ.-22
१५७) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-28
158) ¾ÖÆß, ¯Ö.-160
१५९) उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ.-29
160) ¾ÖÆß, ¯Ö.-89
161) उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ.-65

१६२) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-123

163) ¾ÖÆß, ¯Ö.-214

१६४) उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ.-16

१६५) उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ.-74

१६६) उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ.-18

१६७) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-136

१६८) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-92

१६९) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-77

170) ¾ÖÆß, ¯Ö.-209

१७१) उषा प्रियंवदा : भया कबीर उदास, पृ.-181

172) ¾ÖÆß, ¯Ö.-162

१७३) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-36

१७४) उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, पृ.-88

१७५) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-31

१७६) उषा प्रियंवदा : अंतर्वंशी, पृ.-83

१७७) उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ.-66

^¯ÖÄÖÆÖ¸ü

आधुनिकता वर्तमान के -ररोखे से अतीत को निहारने और भविष्य को संवारने का विवेकशील रवैया है। आधुनिकता का बोध वि-ाान, औद्योगिक क्रांति, टेक्ना»ÖÖ•Öß ŸÖ£ÖÖ महायुद्धों आदि के परिणामों से प्रभावित है। यह विश्व-स्तर पर घटित सांस्कृतिक रुग्णता, वै-ाानिक, यांत्रिक सभ्यता, भौतिकवाद की विजय तथा मूल्य-विघटन की उपज है। आज का साहित्यकार दुनिया में किसी भी जगह हो, आधुनिकता के इस बोध से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। क्योंकि आधुनिक दृष्टि रचनाकार की आत्म-सजगता की परिचायक है तथा उसे वर्तमान संदर्भों से जोड़ती है। अपनी परिस्थिति और परिवेश से सम्पृक्ति का भाव ही रचनाकार की अनुभूति को प्रामाणिक बनाने में सक्षम है।

आधुनिकता का संबंध उस प्रश्नाकुल मनोवृत्ति से है जो यथार्थ जीवन की संगति पर बड़ी गहराई से विचार करती है, जीवन स्थितियों की छान-बीन करती है। वर्तमान जीवन स्थितियों में मनुष्य ही आधुनिकता का सबसे पहला 'कन्सर्न' है। प्रजातांत्रिक आदर्शों और मूल्यों में विश्वास के कारण, आज की समूची व्यवस्था, मानव जीवन को अधिक से अधिक सुख-सुविधामय और अनुकूल बनाने के लिए कृतसंकल्प है। मनुष्य ही जीवन के केंद्र में है। इस मनोवृत्ति के कारण जहाँ मानवतावाद को नया आयाम मिला है, वहाँ दूसरी ओर व्यक्तिवाद और अहम् का बोध भी जागृत हुआ है। स्पष्टत: आधुनिकता-बोध अपने समाज या परिवेश के यथार्थ के विश्लेषण-चित्रण तक सीमित न होकर, सार्वभौम जीवन-दृष्टि का पर्याय बन गय़ÖÖ Æî |

उषा प्रियंवदा उन लेखिकाओं में से हैं जिन्होंने ईमानदारी से आधुनिकता को स्वीकारा है। जीवन के यथार्थ और अनुभूत सत्यों को अभिव्यक्त करने में उन्होंने जिस साहस का परिचय दिया है वह सहज नहीं है। उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक कुरूपताओं, विसंगतियों, कट्टर मान्यताओं व इन्हीं से जुड़ी तमाम विडम्बनापरक स्थितियों की पूरी गहराई से छान-बीन कर तथ्यात्मक निष्कर्षों द्वारा पुरानी मान्यताओं और घिसट रहे मानवीय संबंधों का यथार्थ चित्रण किया है तो कहीं युगीन मूल्यों के विघटन पर तर्कसंगत सूक्ष्म दृष्टिकोण द्वारा सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में परम्परागत जीवन-मूल्यों के विघटन व नवीन पैदा हो रहे जीवन-मूल्यों के बीच टकरावों व द्वन्द्वों का ज़िक्र सर्वत्र नज़र आता है। कहानियों में परिवेश की भिन्नता के बावजूद उन्होंने अपनी बौद्धिक पहचान द्वारा सभी

परम्परागत जीवन-मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए नये जीवन-मूल्यों की वकालत की है। इस प्रकार सामाजिक व पारिवारिक स्थितियों में हो रहे परिवर्तनों की बेबाक समीक्षापरक दृष्टि «Ö¸Ö संबंधों के बनते और बिगड़ते रूपों को भी उषा प्रियंवदा ने सामयिक जीवन-बोध से अपना गहरा सरोकार जोड़ते हुए स्वर दिया है। जिससे उनकी बौद्धिक सजगता और सक्रियता का आभास स्वत: ही होने लगता है।

वास्तव में उषा प्रियंवदा की कहानियाँ वैयक्तिक और सामाजिक दोनों प्रकार के मूल्यों से संबंधित हैं और आज के कुछ कहानीकारों की तरह उनके लेखन की धारा भी समष्टिगत चिंतन से व्यष्टि चिंतन की ओर मुड़ी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी के जीवन में तमाम परिवर्तन हुए हैं। आज की नारी नये मूल्यों को अपनाना चाहती है। वह पुराने मूल्यों को अस्वीकार करने के लिए उद्यत है। इस स्वीकार-अस्वीकार में विवेक का प्रयोग कम है और मानव तथा आधुनिकता का असंतुलित आकर्षण ज़्यादा है। उसके परिणामस्वरूप आज की नारी का चुनाव सदा संतोषजनक ही नहीं होता। इसी प्रकार उसकी उपर्युक्त प्रवृत्ति के क्या-क्या नतीजे हैं इसका बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण उषा प्रियंवदा ने किया है। आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार दुविधा की स्थिति में हैं। उनकी मान्यताएँ बदल रही हैं। उनकी आस्थाएँ, विषमताओं और विकृतियों के कारण टूट रही हैं, ऐसे परिवेश में आधुनिकता से आकर्षित शिक्षित नारी अपने को अजनबी पाती है। इन सबका भी उषा प्रियंवदा की कहानियों में यथार्थपूर्ण और प्रभावकारी चित्रण हुआ Æ।

उनका प्रयास जीवन को सुखदतम एवं सुन्दर से सुन्दरतम बनाने का रहा है। परन्तु यथार्थ इतना तिक्त है कि वह अपना विष घोल जीवन को पिलाता रहता है। उषा जी ने इसी तिक्त यथार्थ को अपनी कहानियों द्वारा अभिव्यक्त किया है। वास्तव में वे नारी को जागरूक बनाना चाहती हैं; जिसके लिए उन्होंने नारी को नारी की वास्तविक स्थिति में उपस्थित कर, यथार्थ का संस्पर्श करा कर, वैचारिकता एवं बौद्धिकता प्रदान कर, व्यर्थ की भावुकता एवं आदर्शवादिता से बचा लिया है। इसे बचाने में उन्होंने विदेशीपन का भी सहारा लिया है। इनकी अभिव्यक्ति संयमित एवं मार्मिक है तथा अनुभूति प्रामाणिक एवं यथार्थपरक Æ, •ÖÖ अपने आप में सराहनीय है। रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास साहसपूर्ण है। लगभग सभी कहानियों में एक ऐसा विवेकपूर्ण वातावरण बना रहता है, जहाँ उच्छृंखलता या उद्दंडता, अतिरिक्त आक्रामकता या अतिरिक्त साहस का बोध नहीं होता। अत: इनकी बौद्धिक

मानसिकता या संयत आत्म-चेतना दृष्टि को विश्रृंखलित नहीं होने देती। यथार्थ इतना स्थिर होकर उपस्थित होता है जिससे चिंतन प्रक्रिया पुष्ट होती है। हम जहाँ खड़े होते हैं; उसी स्थान पर रुक कर चार दिशाओं का अवलोकन करते हैं और इसी अवलोकन में कोई कल्पनात्मक प्रासाद नहीं खड़ा करते; क्योंकि कल्पना का प्रासाद बनाना स्वत्व की ओर से आँख मूँदना है और जागृत अवस्था में स्वत्व की ओर से आँख मूँदना एक मूढ़ प्रकृति है जो आज के लेखक, पाठक तथा भोक्ता को स्वीकार्य नहीं है। इनकी कहानियों में व्यक्ति यथार्थ से टकराता है, राŸÖÖ Æü, सिसकता है; परंतु संयत होने का साहस, अपनी ही अन्तर प्रेरणाओं के बल पर जुटा लेता है तथा परिस्थितियों के साथ सम-ौता कर लेता है। निराशापूर्ण स्थितियों में भी आज का मनुष्य अपने को साहसी और अपराजित देखना चाहता है - हताश और दीन नहीं। उषा प्रियंवदा में इस प्रवृत्ति का चित्रण विदेशी प्रभावस्वरूप हुआ है।

आधुनिकता बोध से युक्त होने के बावजूद भारतीय मान-मर्यादाओं से लेखिका भली-भाँति परिचित है। पुराने से किंचिद् जुड़े होने के कारण उन परम्पराओं पर वज्राघात भी नहीं करतीं; इतना अवश्य है कि उन्हें नवीनीकृत कर आधुनिकता का जामा पहना देती हैं। यह विकासयुक्त एवं विवेकयुक्त दृष्टिकोण है जो इन्हें समर्थ लेखिका बनाता है। तथा इनकी कहानियों को आधुनिक परिवेश में ढालकर जीवन से जोड़ता है। चिंतन क्षमता को एक ऐसी गति मिलती है जिससे आत्म के प्रति सचेत होने की प्रेरणा प्रबल होती है। सत्य के प्रति अगाध निष्ठा, भावनाओं की गहराई के प्रति वैचारिक मोह तथा आत्मबल संचयन यथार्थ के धरातल को दृढ़ बनाता है।

सारांशत: उषा प्रियंवदा की कहानियों में नैतिक मूल्यों के ह्रास के कारण पारिवारिक रिश्तों में आये टूटन एवं उसके दर्द को अभिव्यक्ति मिली है। विशेषकर पति-पत्नी संबंधों में बढ़ रही दूरियों को भी इन्होंने लक्ष्य किया है। आर्थिक समस्याएँ भी इसके मूल में हैं। धीरे-¬Ößøü आज की नारी इस पुरुषप्रधान भारतीय समाज में आर्थिक स्वावलम्बन की ओर उन्मुख हो रही है और अपनी स्वतंत्रता का उद्घोष कर रही है। किंतु आधुनिका होने के बावजूद अपने प्राचीन मूल्यों को तिरोहित कर पाने में वह स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रही है। अत: उसके मन में आधुनिक एवं प्राचीन मूल्यों की कशमकश जारी है। साथ ही अजनबीपन, अकेलापन, निरर्थकता बोध, घुटन, निराशा ये सब आज के जीवन की विडम्बनाएँ बनती चली जा रही हैं। औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण समाज में अमानवीयता आ गयी है। इसी

अमानवीयता के कारण प्रेम जैसे पवित्र क्षेत्र में भी मोहभंग के बादल मँडरा रहे हैं। प्रेम एवं यौन दृष्टिकोण में आज परिवर्तन आ गया है। आज बे–Ö–ाक निर्बाध यौन जीवन को स्वीकृति दी जा रही है और किसी के भी मन में अपराध-²ÖÖ¬Ö नहीं है। व्यक्ति की परिधि ‘ÃÖ¾Ö’ से सीमित होकर ‘Ã¾Ö’ तक केंद्रित हो गई है। सर्वत्र वैयक्तिकता व्याप्त हो गई है और व्यक्ति अस्मिता की खोज में भटक रहा है। इसके कारण आधुनिक मनुष्य की संपूर्ण दृÂ™ü †Ö¸ü ×¾Ö“ÖÖ¸ü प्रक्रिया में परिवर्तन आया है। फलस्वरूप उसकी नीति विषयक धारणाओं में भी परिवर्तन आया है। अत: विवाह की ओर देखने का दृष्टिकोण भी बदल रहा है। विवाह आज ‘एक मीनिंगलेस रस्म’ मात्र बनकर रह गया है। इन सारी आधुनिक स्थितियों का बोध हमें उषा प्रियंवदा की कहानियों में होता है।

उषा प्रियंवदा का उपन्यास-साहित्य भी आधुनिक भाव-बोध से युक्त है। आज के मानव जीवन की समग्रता एवं उसके परिवेश को उपन्यास के विराट केनवास पर कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास उषा जी ने अपने पाँचों उपन्यासों के माध्यम से किया है। उन्होंने समसामयिक युग-बोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में पकड़ने और ईमानदारी पूर्वक अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। आज के नारी जीवन की विसंगतियों को आत्मसात करके उन्हें आधुनिक रूप प्रदान करने का श्रेय उन्हीं को जाता हैं। स्वातंत्र्योत्तर परिवर्तित संदर्भ, परिस्थितियाँ, मन:स्थितियाँ उनके द्वारा गहराई से आँकी गई हैं। उनके उपन्यासों में चित्रित नारियाँ स्वतंत्र प्रवृत्तियों से अपनी समस्याओं से जू–ाकर आत्मसम्मान और गौरव प्राप्त करना चाहती हैं। उनके उपन्यासों में नारी की व्यक्तिगत तथा परिवेशगत, मानसिक एवं शारीरिक समस्याओं को व्यापक अभिव्यक्ति देकर युग-युग से उपेक्षित नारी के अस्तित्व का मौलिक अन्वेषण करने का प्रामाणिक प्रयत्न किया गया है। हिंदी उपन्यास साहित्य में यह एक सर्वथा नई चेतना का प्रमाण है। उन्होंने सामाजिक स्थितियों में आने वाले बदलाव और उनके रिश्तों पर पड़नेवाले प्रभाव को नये सिरे से परिभाषित करने का प्रयास किया है। साथ ही बदलते जीवन मूल्यों और परिवर्तित युग-चेतना के कारण व्यक्ति में उत्पन्न अकेलेपन, अजनबीपन, घुटन, संत्रास, निराशा आदि भावों का यथार्थ चित्रण भी उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है।

उन्होंने पति-पत्नी संबंध में आई असहजता, संबंधों का खोखलापन, दिखावे की संस्कृति, पति का स्वार्थी होना, पत्नी का अति महत्वाकांक्षी होना आदि से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण 3ÖÖß अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से किया है। वे विवाहसंस्था के एकपक्षीय दायित्व का अस्वीकार करते हुए

अपनी नायिकाओं को अपना जीवनसाथी स्वयं चुनने का अधिकार प्रदान करती हैं। उनके लिए काम-भावना मानव की एक जैवीय एवं स्वाभाविक आवश्यकता है। अत: अपने उपन्यासों में काम-संबंधों का वह स्वच्छंद चित्रण करती हैं। किंतु कहीं भी यह चित्रण विकृति को स्पर्श नहीं करता। साथ ही प्रवासी भारतीय परिवारों की ज़िंदगी को, उनके आपसी संबंधों और संघर्षों को उन्होंने गहरी अंतर्दृष्टि और पर्यवेक्षण-सामर्थ्य से उद्घाटित किया है। इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स †Ö¸ ¤¿Ö-विदेश के कल्चरल शॉक का यथार्थ-चित्रण भी उन्होंने किया है। उनकी नायिकाएँ परम्परागत स्त्री-जीवन को तिलांजलि देते हुए आधुनिक जीवन का वरण करती हैं। ये नायिकाएँ किसी भी प्रकार की दासता अथवा बंधन अस्वीकार करती हैं और अपनी व्यक्ति-चेतना का स्वच्छंद बहाव चाहती हैं; इसीलिए वे आत्मनिर्भर रहना चाहती हैं। अत: वे अपने कैरियर के प्रति अत्यंत सजग हैं। समग्रत: कहा जा सकता है कि विषम वैश्विक परिस्थितियों से घिरे शताब्दी के इस कठिन काल में उषा प्रियंवदा का उपन्यास-साहित्य युगीन नव-बोध के स्पर्श से महत्वपूर्ण हो उठता है। निश्चित ही यह साहित्य नई संवेदना का सशक्त संवाहक है।

उषा प्रियंवदा का शिल्प भी परम्परा का निर्वाहक नहीं है। इन्होंने शिल्प के स्तर पर पुराने प्रतिमानों को नकारते हुए कुछ नये प्रयोग किए हैं। क्योंकि पारम्परिक शिल्प-विधान आधुनिक भाव-चेतना के अनुकूल न था। इन्होंने कथ्य को विशेष महत्व दिया है जिससे इनका कथा-साहित्य रचनात्मक स्तर पर जीवन से जुड़ गया है। इनके कथा-साहित्य में बदलती मन:स्थितियों, संघर्षों एवं समय के परिवर्तन को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने के लिए नवीन प्रयोग हुए हैं। इन्होंने बिम्ब-विधान के द्वारा गहरी अनुभूतियों को अधिक अर्थ-संदर्भ प्रदान किया है। प्रतीकों के प्रयोग एवं शब्द-चित्र द्वारा दो विभिन्न अनुभूतियों अथवा विचारों को समन्वित रूप में प्रस्तुत किया है। विविध संबंधों को कलात्मक स्तर पर निभाने के लिए उन्होंने अलग-अलग शैलियों का प्रयोग किया है। विभिन्न शैलियों के आवश्यकतानुसार प्रयोग के कारण इनकी रचनाएँ अधिक सार्थक और सुंदर बनी हैं। इन्होंने चरित्र-चित्रण की सभी पद्धतियों का सफल निर्वाह किया है।

उषा जी की भाषा भी नवीनता से युक्त है। जब विषय आधुनिक है, तो भाषा को आधुनिक होना ही था। सच्चे अर्थों में इनकी भाषा आधुनिक है। जो बात कहनी है, वह मन में बहुत साफ़ है, इसीलिए भाषा में गज़ब की सफाई है। भाषा इतनी सहज सक्षम है कि बात ÃÖß¬Ö-सीधे संप्रेषित होती है। इनकी रचनाओं को पढ़ना भाषा की एक समतल, शान्त और

कÖ“Ö-सी पारदर्शी सतह पर चलना है। यह सतह अपनी स्वच्छता से हमें आश्वस्ति देती है। लेकिन यह सब भाषा तक ही सीमित है; भाषा के भीतर जो कथा होती है, वह बेहद बेचैन कर देने वाली होती है। इस कथा को पढ़ते हुए हम एक ऐसे पाठ से गुज़रते हैं जो हमें लगातार सम्पूर्ण का आभास कराता हुआ, एक अधूरी, अतृप्त ज़िन्दगी की कसक साथ-ÃÖÖ£Ö ¤ÖŸÖ “Ö»ÖŸÖÖ Æ ।

कुल मिलाकर उषा प्रियंवदा का कथा-साहित्य आधुनिक जीवन को जीने, उसे विभिन्न ÃÖŸÖ¸Ö ¯Ö¸ ÃÖ´Ö-नने, उसके अर्थ तलाश करने, सार्थकता-निरर्थकता खोजने की कहानी है। उनका शिल्प कला के बो-ा से आक्रान्त न होकर सहज एवं स्वाभाविक है। अर्थात् उनका शिल्प-विधान विशिष्ट न होकर सरल है, जटिल न होकर स्वाभाविक है, अंतिरंजित न होकर सारगर्भित है, आरोपित न होकर सहज है, अलंकारिक न होकर अलंकरित है। परंतु आत्मिकता की अभिव्यक्ति के प्रति ये पूर्ण प्रतिबद्ध एवं तटस्थ है। अत: कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से यह कथा-साहित्य किसी पूर्वनियोजित विन्यास में बँधा नहीं है। यही कारण है कि इसमें जीवन, उसके आपसी संबंधों, शिल्प, भाषा, हर दृष्टि से अनेक रूपों और छायाओं को वाणी मिली है। लिहाज़ा उषा प्रियंवदा का कथा-साहित्य युग-सापेक्ष अभिव्यंजना है जिसके अंतरंग में आधुनिकता बोध समाहित है।

ÃÖ¤ü र्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ :

	लेखक	रचना	प्रकाशन

कहानी संग्रह :

1)	उषा प्रियंवदा	फिर बसन्त आया	विश्व विजय प्रा.लि., नई दिल्ली.
2)	उषा प्रियंवदा	ज़िन्दगी और गुलाब के फूल	भारतीय -ानपीठ नई दिल्ली, सं.-2004
3)	उषा प्रियंवदा	एक कोई दूसरा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.२०००
4)	उषा प्रियंवदा	कितना बड़ा –ÖŠ	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.१९७६
5)	ˆÂÖÖ x¯Öयंवदा	मेरी प्रिय कहानियाँ	राजपाल एण्ड सन्स, x¤»»Öß, ÃÖ.1974
6)	उषा प्रियंवदा	शून्य तथा अन्य रचनाएँ	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.२००७.

उपन्यास :

1)	उषा प्रियंवदा	पचपन खम्भे लाल ¤ß¾ÖÖ¸	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.२००६
2)	उषा प्रियंवदा	रुकोगी नहीं राधिका	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.२००६
3)	उषा प्रियंवदा	शेष यात्रा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ÃÖ.1999
4)	उषा प्रियंवदा	†ÿÖ¾Ö¿Öß	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.२००४
5)	उषा प्रियंवदा	भया कबीर उदास	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.२००७

सहायक ग्रंथ :

1)	†ÿÖ»Ö¾Öß¸ †¸Ö›Ö	आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिंदी उपन्यास	पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, सं.-1974
2)	इन्द्रनाथ मदान	आधुनिकता और हिंदी	राजकमल प्रकाशन,

		साहित्य	नई दिल्ली, सं.-1977
3)	इन्द्रनाथ मदान (सं)	कविता और कविता	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.-1966
4)	इन्द्रनाथ मदान (सं.)	निबंध और निबंध	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.-1966
5)	^Ü´Ö»ÖÖ ×´ÖÁÖÖ	आधुनिकता अÖ¸¡ मोहन राकेश	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
6)	कमलेश्वर	नई कहानी की भूमिका	अक्षर प्रकाशन, ×¤»»Öß, ÃÖ.-1969
7)	कैलाश वाजपेयी	आधुनिक हिंदी कविता में ×¿Ö»¯Ö	आत्माराम एण्ड सन्स्, नई दिल्ली, सं.-1963
8)	गंगाप्रसाद विमल	आधुनिकता साहित्य के ÃÖ¤³Ö ´Ö	द.मैकमिलन क.ऑफ इंडिया,दिल्ली,सं.१९७८
9)	डॉ.गोरधनसिंह शेखावत	नई कहानी: उपलब्धि †Ö¸¡ ÃÖÖß´ÖÖ‹	रामा पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, सं.-1979
10)	गिरिजाकुमार ´ÖÖ£Ö¸¡	नई कविता की सीमायें और संभावनाएँ	नेशनल पब्लिशिंग ÆÖ‰ÃÖ, ×¤»»Öß, ÃÖ.1973
11)	डॉ.छायादेवी ‘ÖÖ¸¯Ö›	साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में परिवर्तित नारी जीवन मूल्य	विद्या प्रकाशन, कानपुर, सं.-2008
12)	जयसिंग नीरद	दिनकर के काव्य में परम्परा एवं आधुनिकता	अनुराधा प्रकाशन, ´Ö¸š, ÃÖ.-1984
13)	गार्डन चार्ल्स ¸Ö›¸´Ö»Ö	हिंदी कहानी अलगाव का दर्शन	अक्षर प्रकाशन, ×¤»»Öß, ÃÖ.-1982
14)	डॉ.दंगल –ÖÖ»™	नये उपन्यासों में नये प्रयोग	प्रभात प्रकाशन, ×¤»»Öß, ÃÖ.-1986
15)	›Ö.¤¾Ö¸Ö•Ö	प्रतिक्रियाएँ	राजकमल प्रकाशन, नई ×¤»»Öß, ÃÖ.-1966
16)	डॉ.देवीशंकर अवस्थी (सं.)	नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.-1973
17)	धनंजय वर्मा	आधुनिकता के बारे में	विद्या प्रकाशन मंदिर,

		तीन अध्याय	¤Ö‡ ×¤»»Öß, ÃÖ.-1984
18)	डॉ.नगेन्द्र	हिंदी साहित्य का इतिहास	मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, सं.-2001
19)	नरेन्द्र मोहन	आधुनिकता और	आदर्श साहित्य
प्रकाशन,			
		समकालीन रचना संदर्भ	×¤»»Öß, ÃÖ.-1973
20)	डॉ.नामवर सिंह	कहानी : नई कहानी	लोकभारती प्रकाशन, ‡»ÖÖÆÖ²ÖÖ¤, ÃÖ.-2005
२१)	नेमिचन्द्र जैन	दृश्य अदृश्य	वाणी प्रकाशन, नई
×¤»»Öß,			ÃÖ.1993
22)	डॉ.परमानन्द श्रीवास्तव	हिंदी कहानी की रचना प्रक्रिया	ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर, सं.-1965
23)	डॉ.पारुकान्त देसाई	आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास	चिन्मय प्रकाशन, कानपुर, सं.-1994
24)	›Ö.¯ÖÂ¯Ö¯ÖÖ»Ö ØÃÖÆ	समकालीन कहानी :	नेशनल पब्लिशिंग
ÆÖ‰ÃÖ,			
		युगबोध का संदर्भ	×¤»»Öß.
25)	डॉ.प्रदीपकुमार शर्मा	हिंदी उपन्यासों का शिल्प विधान	अभय प्रकाशन, कानपुर, सं.-1990
26)	डॉ.कु.प्रेमपाल	नई कहानी में वैयक्तिक चेतना	चानना प्रेस, नई दिल्ली, सं.-1980
27)	²Ö»Ö¤¾Ö ¾ÖÓ¿Öß	आधुनिक हिंदी कविता ´Ö ×¾Ö“ÖÖ¸	मॅकमिलन, दिल्ली, ÃÖ.-1982
28)	भीष्म साहनी, रामदरश मिश्र, भगवती प्रसाद निदारिया	आधुनिक हिंदी उपन्यास	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.-1980
29)	›Ö.´Ö¬Ö ÃÖ¬Ö	कहानीकार निर्मल वर्मा	दिनमान प्रकाशन, ×¤»»Öß, ÃÖ.-1981
30)	›Ö.´Ö¬Ö ÃÖ¬Ö	साठोत्तर महिला कथाकार	सन्मार्ग प्रकाशन, ×¤»»Öß
31)	रमेशकुंतल मेघ	आधुनिकता बोध और	अक्षर प्रकाशन, नई
×¤»»Öß			
		आधुनिकीकरण	ÃÖ.-1969
32)	रमेशकुंतल मेघ	क्योंकि समय एक शब्द है	लोकभारती प्रकाशन, ‡»ÖÖÆÖ²ÖÖ¤, ÃÖ.-1975

33) ¸Öजेन्द्र यादव कहानी : स्वरूप नेशनल पब्लिशिंग हाऊस,
और संवेदना ×¤»»Öß, ÃÖ.-1968

34) राजेन्द्र यादव एक दुनिया समानान्तर अक्षर प्रकाशन,
×¤»»Öß, ÃÖ.-1974

35) रामचन्द्र तिवारी हिन्दी उपन्यास विश्वविद्यालय प्रकाशन,
वाराणसी, सं.-2006

36) रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय उदयाचल प्रकाशन,
पटना, सं.-1962

37) ¸Ö´ÖÃÖ¾Öºþ¯Ö “ÖŸÖã¾Öê¤üß हिंदी नवलेखन भारतीय -ानपीठ प्रकाशन,
×¤»»Öß, ÃÖ.-1960

38) ¸»±ú ±úÖŒÃÖ उपन्यास और लोकजीवन पीपुल्स पब्लिशिंग ÆüÖ‰úÃÖ,
(अनु.नरोत्तम नागर) नई दिल्ली, सं.-1957

39) डॉ.लक्ष्मणदत्त गौतम आधुनिक हिंदी कहानी कोणार्क प्रकाशन,
साहित्य में प्रगति चेतना ×¤»»Öß, ÃÖ.-1972

40) लक्ष्मीकांत वर्मा नई कविता के प्रतिमान भारती प्रेस, प्रयाग,
ÃÖ.-1959

41) लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक कहानी का साहित्य भवन, ‡»ÖÖÆÖ²ÖÖ¤ü,
¯Ö×¸ü¯ÖÖÀ¾Ö ÃÖ.-1966

42) लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय हिंदी उपन्यास उपलब्धियाँ राधाकृष्ण प्रकाशन,
नई दिल्ली, सं.-1989

43) डॉ.विजयेन्द्र स्नातक चिंतन के क्षण नेशनल पब्लिशिंग ÆüÖ‰úÃÖ,
×¤»»Öß, ÃÖ.-1966

44) ›üÖ.×वद्याशंकर राय हिंदी उपन्यास और सरस्वती प्रकाशन ´ÖÓ×¤ü¸ü,
अजनबीपन ‡»ÖÖÆÖ²ÖÖ¤ü, ÃÖ.-1981

45) डॉ.विश्वनाथ नरवणे आधुनिक भारतीय चिंतन राजकमल प्रकाशन,
नई दिल्ली, सं.१९६६

46) ›üÖ.×¾Ö¿Ö¿Ö ´Ö‘ानानी आधुनिक हिंदी उपन्यास के विजय प्रकाशन मंदिर,

		विकास में लेखिकाओं की भूमिका	वाराणसी, सं.-2005
47)	डॉ.शिवकुमार शर्मा	हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	अशोक प्रकाशन, ×¤»»ÖßÖ, ÃÖ.2003
48)	›Ö.¿ÖßÖ»ÖÖ ¸•Ö¾ÖÖ¸	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य में नारी के बदलते ÃÖ¤³Ö	इस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली.
४९)	डॉ.श्यामसुंदर मिश्र	अस्तित्ववाद और द्वितीय ÃÖ´Ö¸ÖÖ¢Ö¸ Ãााहित्य	विद्या प्रकाशन, ×¤»»ÖßÖ, ÃÖ.1971
50)	›Ö.ÃÖÖÿÖ²ÖŒ¿Ö ØÃÖÆ प्रकाशन,	नई कहानी : कथ्य †Ö¸ ×¿Ö»¯Ö	अभिनव भारती ‡»ÖÖÆÖ²ÖÖ¤
51)	सत्यप्रकाश मिलिंद (सं.)	हिंदी की महिला साहित्यकार	रूपकमल प्रकाशन, ×¤»»ÖßÖ, ÃÖ.1960
52)	स.ही.वात्स्यायन प्रकाशन,	हिंदी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य	राधाकृष्ण नई दिल्ली, सं.१९६७
53)	स.ही.वात्स्यायन	आत्मनेपद	भारतीय -ाानपीठ, काशी
54)	सरिता कुमार	महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का Ã¾Ö©¯Ö-विकास	¸Ö-Öाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.१९८३
55)	साधना अग्रवाल	वर्तमान हिंदी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.-1995
56)	डॉ.साधना शाÆ	नई कहानी में आधुनिकता बोध	पुस्तक संस्थान, कानपुर, सं.-1978
57)	ÃÖßÖÖ¸Ö´Ö ¿Ö´ÖÖ	स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य	युगबोध प्रकाशन, कोलकता, सं.१९६४
58)	सूर्यप्रकाश विद्यालंकार	सप्तकत्रय : आधुनिकता ‹¾Ö ¯Ö¸´¯Ö¸Ö	शालाब बुक हाऊस, ´Ö¸š, ÃÖ.-1980
59)	सुरेन्द्र चौधरी (सं.)	नई कहानी प्रकृति †Ö¸ ¯ÖÖš	भारती भवन, पटना, सं.-1968
60)	ÃÖ¿ÖßÖ»ÖÖ ¿Ö´ÖÖ	हिंदी उपन्यासों में प्रतिकात्मक शिल्प	×ÃÖ¨¸Ö´Ö ¯Öकाशन, ×¤»»ÖßÖ, ÃÖ.1982

61) हुकुमचन्द राजपाल — x¾Öx¾Ö¬Ö ²ÖÖ¬Ö : नये हस्ताक्षर — स्मृति प्रकाशन, ‡»ÖÖÆÖ²ÖÖ¤, ÃÖ.-1976

62) आधुनिक साहित्य बोध : एक परिसंवाद (२,२९,३० नवं.१९५९ को आयाx•ÖŸÖ)
प्र.शिक्षायतन कॉलेज, ११, लार्ड सिन्हा रोड, कलकत्ता - 16.

क¾Ö¿Ö :

63) हिन्दी साहित्य कोश- — भाग -१, प्रधान सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा ÃÖ.-ानमण्डल लिमिटेड वाराणसी

64) The New Dictionary-of Thoughts — Ed.Tryon Edwards, First Publishe, 1955, Standard Book Company, New York.

65) Encyclopaedia - Britanica — 1768, Encyclopaedia Britanica Ltd; Chicago, London, Toronto.

66) Websters Third New - International Dictionary — By Amerriam Webster-14th Ed.1961-G, Bell & Sons Ltd; Springfield, Mass, G & C, Merriam Co.London.

अंग्रेज़ी ग्रंथ :

67) Boris Ford Ed. — The Modern Age — England Pengiun Books, 1976

68) C.G.Jung — Modern Man In Search Of Soul — Pengiun Books, Melbourne, 1954

69) Robert M. Fischer — Metropolies in Modern Life — Doubleday & Company, New York, 1959

70) Yogendra Singh — Modernisation of Indian Tradition — Thomson Press, (India) Ltd; Delhi-1973

71) The Problems of Modern Aesthetics, Collection of Articles, Progressive Publishers, Moscow, 1969.

पत्रिकाएँ :

1) आलोचना : •Ö»ÖÖ‡ - 1966, •Ö»ÖÖ‡ - 1967, †ŒŸÖ²Ö¸ü - 1978,
जनवरी - 1984

2) कल्पना : अंक - 132, 157, 174, 191

3) -ानोदय : जनवरी - 1967, ´Ö‡ - 1967

4) ŸÖ£ÖÖ×¯Ö : ×¤ÃÖ´²Ö¸ü - 1961

5) धर्मयुग

6) नई कविता : अंक - 7

7) नई कहानियाँ : ´Ö‡ - 1963

8) ´Ö¬Ö´ÖÖ×ŸÖ : जनवरी - 1981, ±ú¸ü¾Ö¸üß - 2000

9) राष्ट्रवाणी : ×ÃÖŸÖ²Ö¸ü - 1968

10) संचेतना : †¯ÖÏî»Ö - 1971, ´ÖÖ“ÖÔ - 1973, ×¤ÃÖ´²Ö¸ü - 1978

11) सारिकÖ : †ŒŸÖ²Ö¸ü - 1974